उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जुलाई-सितंबर, 2015

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **बनाम** अनिल कुमार शर्मा और एक अन्य	133
उपेन्द्र प्रधान **बनाम** उड़ीसा राज्य	73
कृष्णा टेक्सपोर्ट एंड केपिटल मार्किट्स लि. **बनाम** ईला ए. अग्रवाल और अन्य	87
घुसाभाई रायसंगभाई चौरसिया **बनाम** गुजरात राज्य	44
दरगा राम **उर्फ** गूंगा **बनाम** राजस्थान राज्य	1
पुरुषोत्तम दशरथ बोराटे और एक अन्य **बनाम** महाराष्ट्र राज्य	105
मद्रास बार एसोसिएशन **बनाम** भारत संघ	149
मध्य प्रदेश राज्य **बनाम** मेहताब	37
रमाकांत मिश्र **उर्फ** लालू आदि **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य	57
शरद कुमार सांघी **बनाम** संगीता राणे	29
संजीव **बनाम** हरियाणा राज्य	16

संसद् के अधिनियम

सूचना प्रदाता संरक्षण अधिनियम, 2011 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (23)

जुलाई-सितंबर, 2015 [संयुक्तांक]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
डा. एम. सी. पांडेय

महत्वपूर्ण निर्णय

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304क और 337 – उपेक्षापूर्ण कार्य – मृत्यु – अभिलेख पर साक्ष्य से यह साबित होता है कि अभियुक्त द्वारा अधिक वोल्टेज वाला बिजली का खुला तार खेत में छोड़ कर उपेक्षापूर्ण कार्य किया गया जिससे मृतका की मृत्यु हो गई, अतः अभियुक्त अपनी उपेक्षा से मृत्यु कारित करने का दोषी है और मृतका के वारिसों को प्रतिकर देने का दायी है ।

मध्य प्रदेश राज्य बनाम **मेहताब** 37

संसद् के अधिनियम

सूचना प्रदाता संरक्षण अधिनियम, 2011 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (23)

पृष्ठ संख्या 1 – 195 **[2015] 3 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – जुलाई-सितंबर, 2015 [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या 1 – 195]

संपादक-मंडल

डा. संजय सिंह,
सचिव, विधायी विभाग

श्री एन. आर. बट्टू, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

प्रो. डा. वैभव गोयल,
सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ
विधि विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

श्री विनोद कुमार आर्य,
संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री अविनाश शुक्ला, असलम खान, पुण्डरीक शर्मा और जगमाल सिंह

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 57

वार्षिक : ₹ 225

© 2015 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आर्काक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाा : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

कंपनी अधिनियम, 2013 (2013 का 48)

– धारा 408 और 410 – राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण और राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण की संवैधानिक विधिमान्यता – उच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को नहीं छीना गया है और राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण के आदेश के विरुद्ध विधि के प्रश्न पर अपील की जा सकती है क्योंकि किसी अपीली मंच के समक्ष अपील करने का एक अधिकार सुस्वीकृत मान है जिसे स्वस्थ्य परंपरा समझा जाता है – राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण और राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण का गठन संवैधानिकतः विधिमान्य है ।

मद्रास बार एसोसिएशन बनाम **भारत संघ** 149

– धारा 409 और 411 – अर्हताएं – राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण के अध्यक्ष और सदस्यों तथा राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण के सभापति और सदस्यों की अर्हताएं – अधिकरण के न्यायिक सदस्य की नियुक्ति केवल न्यायाधीशों और अधिवक्ताओं में से ही की जानी चाहिए और तकनीकी सदस्यों की नियुक्ति विज्ञान, तकनीक, अर्थशास्त्र, बैंकिंग, उद्योग और औद्योगिक वित्त, औद्योगिक प्रबंध, औद्योगिक पुनर्रचना विनिधान और लेखा कर्म में 20 वर्ष का अनुभव रखने वाले ऐसे व्यक्तियों में से, जो सचिव और अपर सचिव हैं, जो भारतीय विधिक सेवा या भारतीय कंपनी विधि सेवा के सदस्य हैं, किया जाना चाहिए ।

मद्रास बार एसोसिएशन बनाम **भारत संघ** 149

– धारा 412 – चयन समिति का गठन – राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण और राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण के सदस्यों के चयन के लिए गठन समिति – चयन

पृष्ठ संख्या

समिति का गठन भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उसके नामनिर्देशिती, उच्चतम न्यायालय का वरिष्ठ न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, वित्त और कंपनी कार्य मंत्रालय का सचिव और विधि और न्याय मंत्रालय के सचिव से मिलकर गठित चार सदस्यों वाली समिति होनी चाहिए ।

मद्रास बार एसोसिएशन बनाम **भारत संघ** 149

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 173(2) और 207 – न्यायिक अधिकारिता का प्रयोग – दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन अन्वेषक अधिकारी के लिए आरोप पत्र के साथ अभियुक्त को पेश करने की कोई अपेक्षा नहीं है इसलिए उच्च न्यायालय ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित करने के लिए फाइल की गई रिट याचिका को लोक हित वाद मानकर विधि की गलती की और पर्याप्त आंकड़े और सामग्री के बिना व्यापक निदेश जारी किए ।

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम **अनिल कुमार शर्मा और एक अन्य** 133

– धारा 354 – दंडादेशात्मक नीति – मृत्यु दंडादेश – गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियां – योजनाबद्ध और सोची-समझी रीति में सामूहिक बलात्संग और निर्दयतापूर्वक हत्या जैसे जघन्य अपराध के मामले में केवल अभियुक्त की आयु, आपराधिक पूर्ववृत्त का अभाव और पारिवारिक पृष्ठभूमि न्यूनकारी परिस्थितियों के रूप में नहीं मानी जा सकती हैं ।

पुरुषोत्तम दशरथ बोराटे और एक अन्य बनाम **महाराष्ट्र राज्य** 105

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 300 और 376(2)(छ) – हत्या और सामूहिक बलात्संग – मृत्यु दंडादेश – मृतका को उसकी कंपनी की

पृष्ठ संख्या

कैब के ड्राइवर द्वारा उसे कंपनी ले जाने के लिए उसके निवास से लिया जाना और एकांत स्थान में ले जाकर अपने एक साथी सहित उसके साथ सामूहिक बलात्संग और निर्ममतापूर्वक हत्या किया जाना – अपराध की शिकार मृतका के साथ अभियुक्त द्वारा, जिसका उस पर भरोसा और विश्वास था, अपने साथी सहित बलात्संग का जघन्य अपराध करने और उसके पश्चात् गला घोंटकर निर्ममतापूर्वक उसकी हत्या करने तथा अभियुक्तों के पश्चात्वर्ती आचरण से समाज और न्यायालय की सामूहिक अंतश्चेतना को गहरा सदमा पहुंचने और कोई न्यूनकारी परिस्थिति न होने से यह मामला विरल से विरलतम कोटि के अंतर्गत आता है और अभियुक्तों पर अधिरोपित मृत्यु दंडादेश की पुष्टि की जानी उचित है ।

पुरुषोत्तम दशरथ बोराटे और एक अन्य बनाम **महाराष्ट्र राज्य** 105

– धारा 302, अपवाद 4 और धारा 304 भाग I – हत्या की कोटि में न आने वाला मानव वध – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट, अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य और न्यायिकेतर संस्वीकृति के परिशीलन से यह साबित होता है कि अभियुक्त ने पूर्वचिंतन बिना और अचानक झगड़ाजनित आवेश की तीव्रता में शराब पीने के पश्चात् मृतक के मस्तक और वक्ष पर क्षतियां कारित कीं जिसके परिणामस्वरूप मृतक की मृत्यु हो गई, अतः अभियुक्त धारा 302 के अधीन अपराध से दंडित होने के बजाय धारा 304 भाग I के अधीन दोषसिद्ध और दंडित होने का दायी है ।

संजीव बनाम **हरियाणा राज्य** 16

– धारा 302/34 और 307 – हत्या और हत्या का प्रयत्न – तीन बालकों की हत्या और उनके पिता की हत्या के प्रयत्न के लिए अपीलार्थी का अन्य अभियुक्तों के साथ

पृष्ठ संख्या

विचारण किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा साक्षियों के साक्ष्य के आधार पर अन्य अभियुक्तों को दोषसिद्ध किंतु अपीलार्थी को दोषमुक्त किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया जाना – यदि साक्ष्य के परिशीलन और विधि के उपयोजन के आधार पर दो मत संभव हों, तो वह मत अपनाया जाना चाहिए जो अभियुक्त का समर्थन करता हो और चूंकि विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को संदेह का फायदा देते हुए किया गया विनिश्चय स्पष्ट रूप से अवैध, अनुचित नहीं था और न्याय की हानि नहीं हुई, इसलिए उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था ।

उपेन्द्र प्रधान बनाम **उड़ीसा राज्य** 73

– धारा 304क और 337 – उपेक्षापूर्ण कार्य – मृत्यु – अभिलेख पर साक्ष्य से यह साबित होता है कि अभियुक्त द्वारा अधिक वोल्टेज वाला बिजली का खुला तार खेत में छोड़ कर उपेक्षापूर्ण कार्य किया गया जिससे मृतका की मृत्यु हो गई, अतः अभियुक्त अपनी उपेक्षा से मृत्यु कारित करने का दोषी है और मृतका के वारिसों को प्रतिकर देने का दायी है ।

मध्य प्रदेश राज्य बनाम **मेहताब** 37

– धारा 376 और 302 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 3 और किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) नियम, 2007 – नियम 12(3)(ख)] – बलात्संग और हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का परिशीलन करने पर यह सिद्ध होता है कि अभियुक्त ने बलात्संग और हत्या का जघन्य अपराध किया किंतु अभियुक्त की आयु का कोई अभिलेखीय प्रमाण न होने के कारण चिकित्सीय प्रमाण के आधार पर वह अपराध कारित करने के समय किशोर था, अतः, किशोर द्वारा 14 वर्ष जेल में बिताई गई अवधि को

पृष्ठ संख्या

ध्यान में रखते हुए, अब उसे छोड़ दिया जाए ।

दरगा राम उर्फ **गूंगा** बनाम **राजस्थान राज्य** 1

– धारा 420 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 और धारा 200] – छल – अपीलार्थी और उसकी कंपनी के विरुद्ध छल कारित किए जाने की शिकायत – कंपनी को पक्षकार न बनाना – अपीलार्थी के विरुद्ध विशिष्ट अभिकथन न किया जाना – अपीलार्थी ने कंपनी के प्रबंध निदेशक के रूप में कार्य किया है इसलिए कंपनी को पक्षकार न बनाए जाने तथा अपीलार्थी के विरुद्ध कोई स्पष्ट अभिकथन न किए जाने के कारण उसे प्रतिनिधिक दायित्व के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता, अतः अपीलार्थी के विरुद्ध छल कारित करने की शिकायत चलने योग्य नहीं है ।

शरद कुमार सांघी बनाम **संगीता राणे** 29

– धारा 498क और 306 – क्रूरता और आत्महत्या का दुष्प्रेरण – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से यह साबित होने पर कि अभियुक्त विवाहेत्तर संबंध रखता था, महिला को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की क्रूरता की श्रेणी में नहीं आता, अतः, धारा 498क का स्पष्टीकरण लागू नहीं होता, इसलिए अभियुक्त को धारा 498क और 306 के अधीन दोषसिद्ध नहीं ठहराया जा सकता ।

घुसाभाई रायसंगभाई चौरसिया बनाम **गुजरात राज्य** 44

– धारा 498क और 304ख [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 32(1)] – दहेज मृत्यु – मृत्युकालिक कथन – जहां अभियोजन अधिसंभाव्यता की प्रबलता द्वारा यह साबित करने में सफल रहा है कि दहेज मृत्यु कारित की गई वहां मृत्युकालिक कथन या अन्यथा द्वारा निर्दोषिता साबित करने का भार अभियुक्त पर है चूंकि मामले के

पृष्ठ संख्या

घटनाओं के क्रम और मृत्युकालिक कथन से युक्तियुक्त संदेह से परे यह साबित नहीं होता है कि मृत्युकालिक कथन संदेहास्पद और अनभिशंसी है अतः, अभियुक्त दहेज मृत्यु के अपराध के दोषी ठहराए जाने के पात्र हैं ।

रमाकांत मिश्र उर्फ **लालू आदि** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 57

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26)

– धारा 138 और 141 – चैक का अनादरण – कंपनी द्वारा अपराध – अपीलार्थी-परिवादी द्वारा कंपनी को मांग सूचना जारी किया जाना – निदेशकों को व्यक्तिगत तौर पर अलग से सूचना जारी न किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा कंपनी को दोषसिद्ध किया जाना किंतु निदेशकों को अलग से सूचना जारी न किए जाने के कारण दोषमुक्त किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अपील के लिए इजाजत न दिया जाना – धारा 138 के अधीन चैक के लेखीवाल के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को सूचना जारी किया जाना अनुध्यात नहीं है और कंपनी को जारी की गई मांग की सूचना से कंपनी के कार्यकलापों के भारसाधक और उत्तरदायी व्यक्ति स्वाभाविक तौर पर ऐसी सूचना से अभिज्ञ होंगे और इसलिए सभी निदेशकों को व्यक्तिगत तौर पर अलग-अलग सूचना जारी किया जाना अपेक्षित नहीं है ।

कृष्णा टेक्सपोर्ट एंड केपिटल मार्किट्स लि. बनाम **ईला ए. अग्रवाल और अन्य** 87

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2015] 3 उम. नि. प.

जुलाई-सितम्बर, 2015

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.		ए. आई. आर. (एस. सी.)		एस. सी. सी.	
1	2	3		4		5	
1.	दरगा राम **उर्फ** गूंगा **बनाम** राजस्थान राज्य (8.1.2015)	[2015] 3	1	2015	1016	(2015) 2	775
2.	संजीव **बनाम** हरियाणा राज्य (9.2.2015)		16		-	4	387
3.	शरद कुमार सांघी **बनाम** संगीता राणे (10.2.2015)		29		-	12	781
4.	मध्य प्रदेश राज्य **बनाम** मेहताब (13.2.2015)		37		-	5	197
5.	घुसाभाई रायसंगभाई चौरसिया **बनाम** गुजरात राज्य (18.2.2015)		44		2670	11	753
6.	रमाकांत मिश्र **उर्फ** लालू आदि **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (27.2.2015)		57		-	8	299

1	2	3			4		5	
7.	उपेन्द्र प्रधान **बनाम** उड़ीसा राज्य (28.4.2015)	[2015] 3	73	2015	-		(2015) 11	124
8.	कृष्णा टेक्सपोर्ट एंड केपिटल मार्किट्स लि. **बनाम** ईला ए. अग्रवाल और अन्य (6.5.2015)		87		2091		8	28
9.	पुरुषोत्तम दशरथ बोराटे और एक अन्य **बनाम** महाराष्ट्र राज्य (8.5.2015)		105		2170		6	652
10.	उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **बनाम** अनिल कुमार शर्मा और एक अन्य (14.5.2015)		133		-		6	716
11.	मद्रास बार एसोसिएशन **बनाम** भारत संघ (14.5.2015)		149		-		8	583

[2015] 3 उम. नि. प. 1

दरगा राम उर्फ **गूंगा**

बनाम

राजस्थान राज्य

8 जनवरी, 2015

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर और न्यायमूर्ति आर. बानुमती

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 376 और 302 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 3 और किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) नियम, 2007 – नियम 12(3)(ख)] – बलात्संग और हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का परिशीलन करने पर यह सिद्ध होता है कि अभियुक्त ने बलात्संग और हत्या का जघन्य अपराध किया किंतु अभियुक्त की आयु का कोई अभिलेखीय प्रमाण न होने के कारण चिकित्सीय प्रमाण के आधार पर वह अपराध कारित करने के समय किशोर था, अतः, किशोर द्वारा 14 वर्ष जेल में बिताई गई अवधि को ध्यान में रखते हुए, अब उसे छोड़ दिया जाए ।

तारीख 11 अप्रैल, 1988 को अन्य बातों के साथ पुलिस थाना रानी में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई जिसमें यह कथन किया गया कि तारीख 9 अप्रैल, 1998 को शिकायतकर्ता ने मग्गा राम के कुंए के निकट जागरण का आयोजन किया था । शिकायतकर्ता और अन्य नातेदारों सहित कुल मिलाकर 50 व्यक्ति जागरण में सम्मिलित हुए जो देर रात्रि तक चलता रहा । इस जागरण में शिकायतकर्ता की सात वर्ष की पुत्री कमला भी गई थी जो जागरण के निकट एक स्थान पर अन्य बच्चों के साथ सोने चली गई । जब शिकायतकर्ता अपने घर वापस आया तो उसने देखा कि कमला मौजूद नहीं है । उसने यह मानकर कि कमला किसी नातेदार के साथ चली गई है, अपने नातेदारों के घरों में जाकर तलाश किया किन्तु कमला का पता नहीं चल सका । इसके पश्चात् पड़ोस के मोहल्लों में भी तलाश किया गया जहां पर मग्गा राम और पुरा राम को कमला का शव मिला । इस सूचना को प्राप्त करके वह और नैना राम उस स्थान पर गए और उन्होंने पाया कि कमला के साथ बलात्संग किया गया और उसका

सिर पत्थर से कुचला गया है । रिपोर्ट के अनुसार, कमला का शव घटनास्थल पर पड़ा हुआ पाया गया । दंड संहिता की धारा 302 और 376 के अधीन उपर्युक्त सूचना के आधार पर मामला दर्ज कराया गया और अन्वेषण आरंभ किया गया जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया और उसके पश्चात् उस क्षेत्र की अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया और मजिस्ट्रेट ने मामले को अपर सेशन न्यायाधीश (त्वरित न्यायालय), बाली को सुपुर्द कर दिया । अपीलार्थी ने सेशन न्यायालय के समक्ष दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण की मांग की । विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष ने अनेक दस्तावेजों का अवलंब लेने के अतिरिक्त 19 साक्षियों की परीक्षा की । तथापि, अपीलार्थी द्वारा प्रतिरक्षा में किसी भी साक्षी की परीक्षा नहीं कराई गई । विचारण न्यायालय ने अपने तारीख 27 जनवरी, 2004 के निर्णय और आदेश द्वारा अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित किया और तदनुसार उसे उपरोक्त रूप में दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया । विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने 2004 की दांडिक अपील सं. 604 प्रस्तुत की, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अपील खारिज कर दी और अभियुक्त के विरुद्ध अभिलिखित दोषसिद्धि और दोनों अपराधों के लिए अधिनिर्णीत दंडादेश की पुष्टि की । अभियुक्त द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय की राय में, परिस्थितियों से साक्ष्य की पूर्ण शृंखला बन जाती है और यही अकाट्य निष्कर्ष निकलता है कि अपीलार्थी ही असहाय कन्या अर्थात् कमला के साथ बलात्संग करने और उसकी हत्या करने का जिम्मेदार है और यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने कमला को उस स्थान से उठाया था जहां पर वह अन्य बच्चों के साथ सो रही थी और वह उसे वहां से बलात्संग करने और परिणामस्वरूप उसकी हत्या करने के लिए दूर स्थान पर ले गया । विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और सावधानीपूर्वक किए गए विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष ठीक ही निकाला है कि अपीलार्थी मृतका की हत्या का दोषी है । इस निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का न्यायालय को किसी प्रकार का कोई भी कारण दिखाई नहीं देता है । अब विचार के लिए यह प्रश्न रहता है कि अपीलार्थी ने इस न्यायालय में यह अभिवाक् करते हुए आवेदन फाइल

किया है कि अपीलार्थी अपराध कारित किए जाने के समय किशोर था इसलिए वह किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 का लाभ पाने का हकदार है । चूंकि अपीलार्थी के पास उपर्युक्त अधिनियम में निर्दिष्ट स्कूल प्रमाणपत्र या अन्य जैसा कोई भी दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है, इसलिए इस न्यायालय ने सरकारी चिकित्सा विद्यालय, जोधपुर के प्रधानाचार्य को निदेश दिया है कि वे अपीलार्थी की विकिरण परीक्षा सहित चिकित्सा परीक्षा कराए जाने के लिए चिकित्सकों का बोर्ड गठित करे ताकि अप्रैल, 1998 में अर्थात् प्रश्नगत अपराध कारित किए जाने के समय पर अपीलार्थी की आयु सुनिश्चित की जा सके । केन्द्रीय कारागार के अधीक्षक को यह निदेश दिया गया कि वे चिकित्सा बोर्ड के समक्ष अपीलार्थी को प्रस्तुत करेंगे ताकि जांच और परीक्षण द्वारा उसकी आयु सुनिश्चित की जा सके । उक्त निदेश के अनुपालन में, प्रधानाचार्य ने अपीलार्थी की आयु तय करने के लिए चिकित्सा बोर्ड गठित किया और तारीख 4 फरवरी, 2014 की एक रिपोर्ट प्रस्तुत की । बोर्ड द्वारा प्रस्तुत की गई राय से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपीलार्थी की आयु 30 से 36 वर्ष के बीच है । ऐसा प्रतीत होता है कि बोर्ड ने अधिकतम और न्यूनतम आयु का औसत लिया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि चिकित्सा परीक्षा के दिन अपीलार्थी की आयु लगभग 33 वर्ष होगी । इस गणना के आधार पर श्री पंजवाणी ने यह दलील दी है कि यदि चिकित्सा परीक्षा के दिन अपीलार्थी की आयु 30 वर्ष है तब घटना के समय अपीलार्थी की आयु लगभग 14 वर्ष, 2 मास और 7 दिन होनी चाहिए । यदि चिकित्सा परीक्षा के दिन अपीलार्थी की आयु 33 वर्ष है तब घटना के समय उसकी आयु 17 वर्ष, 2 मास और 7 दिन होनी चाहिए और यदि अपीलार्थी की आयु चिकित्सा परीक्षा के दिन 36 वर्ष है तब उसकी आयु घटना के समय 20 वर्ष, 2 मास और 7 दिन होनी चाहिए । यह दलील दी गई है कि यदि कोई व्यक्ति चिकित्सा बोर्ड द्वारा गणना की गई 30-36 वर्ष की आयु सीमा का औसत निकालकर स्वीकार कर ले तब अपीलार्थी घटना के दिन किशोर माना जाएगा क्योंकि उसकी आयु केवल 17 वर्ष, 2 मास होगी इसलिए वह किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के उपबंधों का लाभ पाने का हकदार होगा । सम्यक् रूप से गठित किए गए चिकित्सा बोर्ड, जिसमें शल्य चिकित्सा विज्ञान, रेडियोडायग्नोसिस और न्यायालयिक ओषधि विज्ञान के प्रोफेसर भी शामिल हैं, द्वारा दी गई चिकित्सीय राय के अनुसार अपीलार्थी की आयु चिकित्सा परीक्षा के समय लगभग 33 वर्ष तय की गई है । बोर्ड चिकित्सा परीक्षा के आधार पर

अपीलार्थी की सटीक आयु नहीं बता सका है । ऐसा होने पर, नियम 12 (3)(ख) के निबंधनों में यदि न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में ऐसा करना आवश्यक समझता है तब अपीलार्थी एक वर्ष का अन्तर लेकर आयु की न्यूनतम सीमा का लाभ पाने का हकदार है । तथापि, ऐसी किसी कानूनी रियायत की आवश्यकता नहीं हो सकती क्योंकि यदि चिकित्सा बोर्ड द्वारा तय की गई अनुमानित आयु अपीलार्थी की ठीक/उचित आयु मानी जाती है, तब भी घटना के समय उसकी आयु लगभग 17 वर्ष, 2 मास थी और इस प्रकार ऊपर उल्लिखित अधिनियम में प्रयोग की गई अभिव्यक्ति के अर्थांतर्गत वह किशोर कहलाएगा । इस आधार पर न्यायालय को यह मत व्यक्त करना होगा कि हम अपीलार्थी की चिकित्सा परीक्षा के दिन चिकित्सा द्वारा अनुमानित की गई 30 से 36 वर्ष की आयु सीमा से अधिक सहमत नहीं हैं । आयु निर्धारण के संबंध में सामान्य नियम यह है कि निर्धारित आयु वास्तविक आयु से 2 वर्ष कम या अधिक हो सकती है किन्तु चिकित्सा बोर्ड ने अधिकतम और न्यूनतम सीमा का अंतर 6 वर्ष रखा है और इस प्रकार दोनों सीमाओं का मध्यक 33 वर्ष निकाला है । न्यायालय निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता है कि अपीलार्थी की आयु का अनुमान करने का सही तरीका क्या है । आयु का अनुमान करने के संबंध में न्यायालय को यह तथ्य महत्वपूर्ण दिखाई देता है कि यह अनुमान ऐसे चिकित्सा बोर्ड द्वारा किया गया है जिसके सदस्य शरीर-रचना विज्ञान, विकिरण-रोग-निदान और न्यायालयिक ओषधि विज्ञान के प्रोफेसर हैं और उनकी राय सम्मानजनक है । इसके अतिरिक्त यदि अपीलार्थी की आयु अधिकतम सीमा तक अर्थात् 36 वर्ष मान ली जाए तब भी उसमें न्यूनतम सीमा के लिए 2 वर्ष का अंतर माना जाएगा जिसका यह अर्थ हुआ कि परीक्षा के समय अपीलार्थी की आयु 34 वर्ष थी । न्यायालय में परीक्षा कराए जाने के समय पर अपीलार्थी की आयु 34 वर्ष मानने पर घटना के समय उसकी आयु 18 वर्ष, 2 मास और 7 दिन होती किंतु ऐसा अनुमान केवल एक अनुमान ही है और अपीलार्थी नियम 12(3)(ख) के निबंधनों में अपनी आयु 1 वर्ष कम करने का अतिरिक्त लाभ पाने का हकदार होगा जिसके अनुसार उसकी आयु 17 वर्ष, 2 मास होगी, अतः वह किशोर कहलाएगा । परिस्थितियों पर पूर्ण रूप से विचार करने पर न्यायालय चिकित्सा बोर्ड द्वारा अनुमान की गई आयु से सहमत है और अपीलार्थी को किशोर घोषित किए जाने से भी सहमत है, भले ही उसने जघन्य अपराध कारित किया है किंतु अधिनियम के अधीन उपलब्ध सुरक्षा के साथ अपीलार्थी के साथ विधि के अधीन अनुज्ञेय कठोरतम दंड दिया जाना

चाहिए । इस तथ्य से न्यायालय का समाधान हो गया है कि अपीलार्थी जिसे एक निर्दोष बालिका के साथ बलात्संग करने और उसकी हत्या करने का दोषी पाया गया है, लगभग 14 वर्षों से जेल में है, अब उसे जेल से मुक्त कर देना चाहिए । (पैरा 11, 12, 13, 15 और 16)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2008 की दांडिक अपील सं. 513.

2004 की जेल अपील सं. 604 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर की खंड न्यायपीठ के तारीख 20 अगस्त, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री विजय पंजवाणी

प्रत्यर्थी की ओर से मिलिंद कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर ने दिया ।

न्या. ठाकुर – अपीलार्थी का विचारण भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है), की धारा 376 और 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए किया गया और उसे दोषसिद्ध किया गया । बलात्संग के अपराध के लिए धारा 376 के अधीन उसे एक हजार रुपए के जुर्माने के अतिरिक्त 10 वर्ष का कठोर कारावास भोगने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त एक मास का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया । इसी प्रकार, दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय हत्या के अपराध के लिए उसे तीन हजार रुपए के जुर्माने के अतिरिक्त आजीवन कारावास भोगने तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त तीन मास का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया । दोनों दंडादेशों को साथ-साथ चलाए जाने का निदेश दिया गया । अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई 2004 की दांडिक अपील सं. 604 की सुनवाई की गई जिसे राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर की खंड न्यायपीठ द्वारा खारिज कर दिया गया । वर्तमान अपील में आक्षेपित निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है ।

2. तारीख 11 अप्रैल, 1988 को अन्य बातों के साथ पुलिस थाना रानी में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई जिसमें यह कथन किया गया कि तारीख 9 अप्रैल, 1998 को शिकायतकर्ता ने मग्गा राम के कुंए के निकट जागरण का आयोजन किया । शिकायतकर्ता और अन्य नातेदारों सहित कुल मिलाकर 50 व्यक्ति जागरण में सम्मिलित हुए जो देर रात्रि

तक चलता रहा । इस जागरण में शिकायतकर्ता की सात वर्ष की पुत्री कमला भी गई थी जो जागरण के निकट एक स्थान पर अन्य बच्चों के साथ सोने चली गई । जब शिकायतकर्ता अपने घर वापस आया तो उसने देखा कि कमला मौजूद नहीं है । उसने यह मानकर कि कमला किसी नातेदार के साथ चली गई है, अपने नातेदारों के घरों में जाकर तलाश किया किन्तु कमला का पता नहीं चल सका । इसके पश्चात् पड़ोस के मोहल्लों में भी तलाश किया गया जहां पर मग्गा राम (अभि. सा. 5) और पुरा राम को कमला का शव मिला । इस सूचना को प्राप्त करके वह और नैना राम (अभि. सा. 2) उस स्थान पर गए और उन्होंने पाया कि कमला के साथ बलात्संग किया गया और उसका सिर पत्थर से कुचला गया है । रिपोर्ट के अनुसार, कमला का शव घटनास्थल पर पड़ा हुआ पाया गया ।

3. दंड संहिता की धारा 302 और 376 के अधीन उपर्युक्त सूचना के आधार पर मामला दर्ज कराया गया और अन्वेषण आरंभ किया गया जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया और उसके पश्चात् उस क्षेत्र की अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया और मजिस्ट्रेट ने मामले को अपर सेशन न्यायाधीश (त्वरित न्यायालय), बाली को सुपुर्द कर दिया ।

4. अपीलार्थी ने सेशन न्यायालय के समक्ष दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण की मांग की । विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष ने अनेक दस्तावेजों का अवलंब लेने के अतिरिक्त 19 साक्षियों की परीक्षा की । तथापि, अपीलार्थी द्वारा प्रतिरक्षा में किसी भी साक्षी की परीक्षा नहीं कराई गई है । विचारण न्यायालय ने अपने तारीख 27 जनवरी, 2004 के निर्णय और आदेश द्वारा अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित किया और तदनुसार उसे उपरोक्त रूप में दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया । विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने 2004 की दांडिक अपील सं. 604 प्रस्तुत की, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अपील खारिज कर दी और अभियुक्त के विरुद्ध अभिलिखित दोषसिद्धि और दोनों अपराधों के लिए अधिनिर्णीत दंडादेश की पुष्टि की ।

5. हमने पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को विस्तार से सुना है । अभियोजन पक्षकथन पूर्णतया पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है क्योंकि इस घटना का कोई भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है जिसे

न्यायालय में प्रस्तुत किया गया हो । तथापि, निचले दोनों न्यायालयों ने अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए पारिस्थितिक साक्ष्य को यह निष्कर्ष अभिलिखित करने के लिए पर्याप्त पाया है कि अपीलार्थी उस अपराध का दोषी है जिसका उस पर आरोप लगाया गया था । हम संक्षेप में, दोषसिद्धि का समर्थन करने वाली परिस्थितियों और साक्ष्य को निर्दिष्ट करेंगे ।

6. सर्वप्रथम ओटा राम (अभि. सा. 4) का अभिसाक्ष्य है जिससे स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि अपीलार्थी जागरण में भाग लेने वाले ग्रामवासियों में से एक था । इसी संबंध में मग्गा राम (अभि. सा. 5) का कथन है और इस साक्षी ने भी यह साक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी जागरण में मौजूद था । उसने रात्रि में लगभग 10.00 बजे कमला को देखा था । इन दोनों साक्षियों के अभिसाक्ष्य से यह साबित होता है कि अपीलार्थी और अन्य ग्रामवासियों के अतिरिक्त मृतका कमला भी अन्य बच्चों के साथ जागरण में मौजूद थी और रात्रि भोज के पश्चात् सोने चली गई थी । इस साक्ष्य का समर्थन नैना (अभि. सा. 1) द्वारा भी किया गया है जिसने यह कथन किया है कि लगभग मध्य रात्रि में अपीलार्थी जागरण में उस समय मौजूद था जब अपीलार्थी सहित जागरण में मौजूद व्यक्तियों को चाय पिलाई जा रही थी । इस साक्षी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि उसका पुत्र और पुत्री कमला जागरण के निकट ही सो रहे थे किन्तु प्रातःकाल में कमला वहां मौजूद नहीं थी । हमारी राय में, इन साक्षियों के साक्ष्य पर विश्वास न करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है जबकि उन्होंने कहा है कि शिकायतकर्ता द्वारा जागरण का आयोजन किया गया था जिसमें उसकी पुत्री कमला मौजूद थी और बाद में सोने चली गई थी, इस वृत्तांत को भी अविश्वसनीय ठहराने का कोई कारण नहीं दिखाई देता है कि अपीलार्थी भी जागरण में मौजूद था और उसने मध्य रात्रि में अन्य साक्षियों के साथ चाय पी थी ।

7. इस तथ्य पर कि कमला की मृत्यु मानव वध है निचले न्यायालयों के समक्ष गंभीर रूप से विवाद नहीं किया गया है और न ही हमारे समक्ष कोई विवाद किया गया है और इसका कारण यह है कि शव-परीक्षा करने वाले और उसकी रिपोर्ट तैयार करने वाले डा. ओम प्रकाश कुलदीप (अभि. सा. 18) के कथन से स्पष्ट रूप से यह पता चलता है कि कमला की मृत्यु उसके सिर पर कारित हुई क्षति के परिणामस्वरूप मानव वध है । चिकित्सक ने अपने अभिसाक्ष्य में यह प्रमाणित किया है कि मृतका के गुप्तांगों पर भी क्षतियां कारित हुई थीं । शव-परीक्षा रिपोर्ट से मृतक के शरीर पर निम्न

क्षतियां प्रमाणित होती हैं :–

"1. चेहरा सम्मर्दित है ।

2. ऊपरी होंठ कटा हुआ है । दाएं कान से रक्तस्राव हुआ है, दाईं और बाईं जंघा पर वीर्य के धब्बे हैं ।

3. नासास्थि पिचकी हुई है जिसमें अस्थिभंग है ।

4. बाएं नेत्र-गुहा के किनारे पर अस्थिभंग है ।

5. बाईं कपोलास्थि में अस्थिभंग है ।

6. बाएं ऊपरी जबड़े में अस्थिभंग है ।

7. बाईं पार्श्व कपालास्थि और अनुकपालास्थि में अस्थिभंग है जो करोटि तक फैला हुआ है ।

8. निचले और ऊपरी जबड़े के सम्मुख दांत टूटे हुए हैं ।

9. भगौष्ठ पर गुमटे मौजूद हैं ।

10. भगाञ्जलिका और उपजंघिका पर सम्मर्दित घाव है ।

11. योनिच्छद संकुलित है ।"

8. राजेन्द्र सिंह (अभि. सा. 9) ने जिसने मामले में अन्वेषण किया था और घटनास्थल का साक्षी है, मृतका के रक्तरंजित कपड़े अभिगृहीत किए साथ ही मृतका के गुप्तांग से दो बाल भी बरामद किए । इस साक्षी ने अपीलार्थी के प्रकटीकरण कथन के आधार पर उसके रक्तरंजित कपड़े भी अभिगृहीत किए । यह परिस्थिति भी उतनी ही महत्वपूर्ण है कि न्यायालयिक रिपोर्ट के अनुसार अपीलार्थी के पाजामे और कमीज पर "ए" ग्रुप वाला मानवरक्त लगा हुआ था और मृतका का रक्त ग्रुप भी "ए" ही था । जिस पत्थर से मृतका का सिर कुचला गया था उस पत्थर पर भी "ए" ग्रुप वाला मानवरक्त लगा हुआ था ।

9. अभियोजन पक्षकथन के समर्थन में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अपीलार्थी के गुप्तांगों पर अनेक क्षतियां पहुंची थीं । तारीख 13 अप्रैल, 1998 की चिकित्सा परीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श पी-38) के अनुसार अपीलार्थी के शरीर पर निम्न क्षतियां पाई गई हैं :–

(i) रगड़ - आकार 1 x 0.5 से. मी. - दाईं कोहनी के जोड़ के अनुप्रस्थ भाग में

(ii) रगड़ - आकार 3 x 2 से. मी. - बाईं कोहनी के जोड़ के मध्यवर्ती भाग में

(iii) रगड़ - विभिन्न आकार - बाईं कोहनी के जोड़ के अनुप्रस्थ भाग में

(iv) रगड़ - आकार 7.5 x 1 से. मी. - दाएं घुटने के जोड़ के ठीक नीचे की ओर अग्रवर्ती भाग में

(v) रगड़ - आकार 1.5 x 1 से. मी. - बाएं घुटने के जोड़ के अग्रवर्ती भाग में

(vi) रगड़ - आकार 1 x 0.5 से. मी. - बाएं घुटने के जोड़ के अग्रवर्ती भाग के मध्य में

(vii) रगड़ - आकार 1 x 1 से. मी. - बाएं घुटने के जोड़ के अग्रवर्ती भाग में

(viii) रगड़ - आकार 1 x 0.5 से. मी. - शिश्न चर्म के अनुप्रस्थ भाग में

(ix) रगड़ - आकार 2 x 0.25 से. मी. - शिश्न चर्म के दाईं ओर के पार्श्विक भाग में

(x) रगड़ - आकार 0.25 x 0.25 से. मी. - शिश्न मुण्ड के अनुप्रस्थ भाग में

(xi) रगड़ - आकार 2 x 0.25 से. मी. - दाईं जंघा के पार्श्विक भाग में

(xii) रगड़ - आकार 2 x 0.25 से. मी. - दाएं नितंब पर

(xiii) रगड़ - आकार 2 x 1 से. मी. - बाईं हथेली पर

क्रम सं. (i) से (xiii) तक की क्षतियों की अवधि 3 से 5 दिन है ।

10. तथापि, अपीलार्थी द्वारा, क्षतियां पहुंचने के संबंध में, कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है जबकि एक क्षति अपीलार्थी के शिश्न पर

भी पहुंची है । संक्षेप में, अभियोजन पक्ष ने स्पष्ट रूप से यह सिद्ध किया है कि :–

"1. ग्राम के बाहर की ओर कुंए के निकट शिकायतकर्ता द्वारा जागरण का आयोजन किया गया था जिसमें मृतका कमला सहित लगभग 50 व्यक्तियों ने भाग लिया था ।

2. मृतका कमला लगभग रात्रि में भोजन के पश्चात् सो गई थी ।

3. अपीलार्थी ने भी जागरण में भाग लिया था और उसे कुछ अभियोजन साक्षियों के साथ बैठा हुआ देखा गया था ।

4. मृतका कमला अगले दिन प्रातःकाल में लापता पाई गई किन्तु तलाश किए जाने पर ग्राम से कुछ दूर नग्न अवस्था में उसका शव पाया गया और उसके गुप्तांगों पर क्षतियां आई हुई थीं तथा उसका सिर पत्थर से कुचला हुआ था और वह पत्थर भी निकट ही पड़ा हुआ था ।

5. अपीलार्थी के प्रकटीकरण कथन के आधार पर उसके रक्तरंजित कपड़े बरामद किए गए ।

6. जो रक्त पाया गया है वह मानवरक्त है और उसका ग्रुप "ए" है और यही रक्त ग्रुप मृतका कमला का भी है ।

7. चिकित्सा परीक्षा किए जाने पर अपीलार्थी के शरीर पर अनेक क्षतियां पाई गईं, साथ ही उसके शिश्न पर भी क्षति पाई गईं ।

8. जो क्षतियां अपीलार्थी के शरीर पर पाई गई हैं वे 3 से 5 दिन पुरानी हैं ।

9. अपीलार्थी ने उसके शरीर पर आई क्षतियों के संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया है ।"

11. हमारी राय में, उपर्युक्त परिस्थितियों से साक्ष्य की पूर्ण शृंखला बन जाती है और यही अकाट्य निष्कर्ष निकलता है कि अपीलार्थी ही असहाय कन्या अर्थात् कमला के साथ बलात्संग करने और उसकी हत्या करने का जिम्मेदार है और यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने कमला को उस स्थान से उठाया था जहां पर वह अन्य बच्चों के साथ सो रही थी और वह उसे वहां से बलात्संग करने और परिणामस्वरूप उसकी हत्या करने के लिए दूर स्थान पर ले गया । विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत

साक्ष्य और सावधानीपूर्वक किए गए विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष ठीक ही निकाला है कि अपीलार्थी मृतका की हत्या का दोषी है । हमें इस निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का किसी प्रकार का कोई भी कारण दिखाई नहीं देता है ।

12. अब विचार के लिए यह प्रश्न रहता है कि अपीलार्थी ने इस न्यायालय में यह अभिवाक् करते हुए आवेदन फाइल किया है कि अपीलार्थी अपराध कारित किए जाने के समय किशोर था इसलिए वह किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 का लाभ पाने का हकदार है । चूंकि अपीलार्थी के पास उपर्युक्त अधिनियम में निर्दिष्ट स्कूल प्रमाणपत्र या अन्य जैसा कोई भी दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है, इसलिए इस न्यायालय ने सरकारी चिकित्सा विद्यालय, जोधपुर के प्रधानाचार्य को निदेश दिया है कि वे अपीलार्थी की विकिरण परीक्षा सहित चिकित्सा परीक्षा कराए जाने के लिए चिकित्सकों का बोर्ड गठित करे ताकि अप्रैल, 1998 में अर्थात् प्रश्नगत अपराध कारित किए जाने के समय पर अपीलार्थी की आयु सुनिश्चित की जा सके । केन्द्रीय कारागार के अधीक्षक को यह निदेश दिया गया कि वे चिकित्सा बोर्ड के समक्ष अपीलार्थी को प्रस्तुत करेंगे ताकि जांच और परीक्षण द्वारा उसकी आयु सुनिश्चित की जा सके । उक्त निदेश के अनुपालन में, प्रधानाचार्य ने अपीलार्थी की आयु तय करने के लिए चिकित्सा बोर्ड गठित किया और तारीख 4 फरवरी, 2014 की एक रिपोर्ट प्रस्तुत की । इस रिपोर्ट के अन्तर्गत निम्न निष्कर्ष और परिणाम निकाले गए हैं :–

> "दरगा राम **उर्फ** गूंगा पुत्र हीरा की आयु का अनुमान कोहनी, कलाई, श्रोणि, उरोस्थि, हंसुली के मध्य-अंत, करोटि और बाएं कंधे के जोड़ के एक्सरे (जिसकी फिल्म सं. 10252 है और उसकी तारीख 4 फरवरी, 2014 है और इसमें कुल मिलाकर 8 फिल्में हैं) और करोटि तथा अधोहनु के सी. टी. स्केन (जिसकी फिल्म सं. 56013 है और तारीख 4 फरवरी, 2014 है और इसमें कुल मिलाकर 4 फिल्में हैं) के आधार पर निम्न प्रकार किया गया है –
>
> 1. कोहनी के जोड़, बहिप्रकोष्ठिका और अंतःप्रकोष्ठिका का निचला छोर, आंत्रांतिक गुच्छा, नितम्बीय गंडक और हंसुली का मध्यांतर 7 स्थानों पर संगलित है, इससे यह पता चलता है कि उसकी आयु 22 वर्ष से अधिक है ।

2. उरोस्थि के सभी अंग एक-दूसरे के साथ संगलित हैं किंतु जायफाइड प्ररोह मेनुब्रियम उरोस्थि के साथ संगलित नहीं है जिससे यह पता चलता है कि उसकी आयु 25 वर्ष से अधिक किंतु 40 वर्ष से कम है ।

3. शराकार संधि का एक-तिहाई पश्च भाग संगलित है, इससे यह पता चलता है कि दरगा राम की आयु 30 वर्ष से अधिक और 40 वर्ष से कम है ।

4. जघन तंतुपास्थि के अनुधैर्य-अनुप्रस्थ किनारे पूर्णतया 7वीं श्रेणी के प्रतीत होते हैं जिनकी छवि दानेदार नहीं है, इससे पता चलता है कि अभियुक्त की आयु 36 वर्ष से कम है ।

राय – विकीर्ण संबंधी, दन्त्य और रोग-जांच संबंधी उपरोक्त सभी निष्कर्षों के आधार पर दरगा राम **उर्फ** गूंगा पुत्र हीरा की आयु 30 से 36 वर्ष के बीच है और परीक्षण की तारीख को दरगा राम की औसत आयु लगभग 33 वर्ष है ।

संलग्नक – एक्सरे (8 पत्रक) और सी. टी. स्केन (4 पत्रक) जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है ।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(डा. एल. रायचन्दानी)	(डा. ए. एल. चौहान)	(डा. पी. सी. व्यास)
आचार्य, शरीर-रचना विज्ञान,	आचार्य, विभागाध्यक्ष विकिरण-रोग निदान,	आचार्य, विभागाध्यक्ष न्यायालयिक आयुर्विज्ञान,
डा. एस. एन. मेडिकल कालेज, जोधपुर	डा. एस. एन. मेडिकल कालेज, जोधपुर	डा. एस. एन. मेडिकल कालेज, जोधपुर"

13. बोर्ड द्वारा प्रस्तुत की गई राय से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपीलार्थी की आयु 30 से 36 वर्ष के बीच है । ऐसा प्रतीत होता है कि बोर्ड ने अधिकतम और न्यूनतम आयु का औसत लिया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि चिकित्सा परीक्षा के दिन अपीलार्थी की आयु लगभग 33 वर्ष होगी । इस गणना के आधार पर श्री पंजवाणी ने यह दलील दी है कि यदि चिकित्सा परीक्षा के दिन अपीलार्थी की आयु 30 वर्ष है तब घटना के समय अपीलार्थी की आयु लगभग 14 वर्ष, 2 मास और 7 दिन होनी चाहिए । यदि चिकित्सा परीक्षा के दिन अपीलार्थी की आयु 33 वर्ष है तब

घटना के समय उसकी आयु 17 वर्ष, 2 मास और 7 दिन होनी चाहिए और यदि अपीलार्थी की आयु चिकित्सा परीक्षा के दिन 36 वर्ष है तब उसकी आयु घटना के समय 20 वर्ष, 2 मास और 7 दिन होनी चाहिए । यह दलील दी गई है कि यदि कोई व्यक्ति चिकित्सा बोर्ड द्वारा गणना की गई 30-36 वर्ष की आयु सीमा का औसत निकालकर स्वीकार कर ले तब अपीलार्थी घटना के दिन किशोर माना जाएगा क्योंकि उसकी आयु केवल 17 वर्ष, 2 मास होगी इसलिए वह किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के उपबंधों का लाभ पाने का हकदार होगा ।

14. यह बताया गया है कि अपीलार्थी मूक और वधिर (गूंगा और बहरा) है । वह कभी किसी स्कूल में पढ़ने नहीं गया । अतः उसकी जन्म-तिथि के संबंध में कोई भी औपचारिक रूप से तैयार किया गया अभिलेख नहीं है । अतः घटना के समय उसकी आयु तय किया जाना केवल चिकित्सीय राय द्वारा ही संभव है जो किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) नियम, 2007 के नियम 12(3)(ख) के निबंधनों में सम्यक् रूप से गठित किए गए चिकित्सा बोर्ड द्वारा दी गई है । नियम 12(3)(ख) निम्न प्रकार है :–

> "12. आयु का निर्धारण करने में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया –
>
> (1) * * * * *
>
> (2) * * * * *
>
> (3)
>
> (ख) और केवल या तो उपरोक्त खंड क के उपखंड (i), (ii) या (iii) के अभाव में सम्यक् रूप से गठित किए गए चिकित्सा बोर्ड से चिकित्सीय राय मांगी जाएगी जो किशोर बालक की आयु घोषित करेगी । यदि आयु का सटीक निर्धारण नहीं किया जा सकता हो, तब न्यायालय, बोर्ड या समिति, जैसी भी स्थिति हो, उनके द्वारा अभिलिखित कारणों के आधार पर वह न्यायालय, बोर्ड या समिति, यदि आवश्यक समझे, उस बालक या किशोर को एक वर्ष के अंतर के भीतर आयु की न्यूनतम सीमा स्वीकार करते हुए लाभ दे सकते हैं,
>
> और ऐसे मामलों में आदेश पारित करते समय उपलब्ध साक्ष्य या चिकित्सीय राय, जो भी हो, पर विचार करने के पश्चात्, जैसी भी स्थिति हो उसकी आयु के संबंध में निष्कर्ष अभिलिखित करेंगे और

खंड (क)(i), (ii), (iii) या उनके अभाव में खंड (ख) में विनिर्दिष्ट कोई भी साक्ष्य ऐसे बालक या किशोर के संबंध में विधि के प्रतिकूल होने पर आयु का निश्चायक सबूत होगा ।'

15. सम्यक् रूप से गठित किए गए चिकित्सा बोर्ड, जिसमें शल्य चिकित्सा विज्ञान, रेडियोडायग्नोसिस और न्यायालयिक ओषधि विज्ञान के प्रोफेसर भी शामिल हैं, द्वारा दी गई चिकित्सीय राय के अनुसार अपीलार्थी की आयु चिकित्सा परीक्षा के समय लगभग 33 वर्ष तय की गई है । बोर्ड चिकित्सा परीक्षा के आधार पर अपीलार्थी की सटीक आयु नहीं बता सका है । ऐसा होने पर, नियम 12(3)(ख) के निबंधनों में यदि न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में ऐसा करना आवश्यक समझता है तब अपीलार्थी एक वर्ष का अन्तर लेकर आयु की न्यूनतम सीमा का लाभ पाने का हकदार है । तथापि, ऐसी किसी कानूनी रियायत की आवश्यकता नहीं हो सकती क्योंकि यदि चिकित्सा बोर्ड द्वारा तय की गई अनुमानित आयु अपीलार्थी की ठीक/उचित आयु मानी जाती है, तब भी घटना के समय उसकी आयु लगभग 17 वर्ष और 2 मास थी और इस प्रकार ऊपर उल्लिखित अधिनियम में प्रयोग की गई अभिव्यक्ति के अर्थांतर्गत वह किशोर कहलाएगा । इस आधार पर हमें यह मत व्यक्त करना होगा कि हम अपीलार्थी की चिकित्सा परीक्षा के दिन चिकित्सा द्वारा अनुमानित की गई 30 से 36 वर्ष की आयु सीमा से अधिक सहमत नहीं हैं । आयु निर्धारण के संबंध में सामान्य नियम यह है कि निर्धारित आयु वास्तविक आयु से 2 वर्ष कम या अधिक हो सकती है किन्तु चिकित्सा बोर्ड ने अधिकतम और न्यूनतम सीमा का अंतर 6 वर्ष रखा है और इस प्रकार दोनों सीमाओं का मध्यक 33 वर्ष निकाला है । हम निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते हैं कि अपीलार्थी की आयु का अनुमान करने का सही तरीका क्या है । आयु का अनुमान करने के संबंध में हमें यह तथ्य महत्वपूर्ण दिखाई देता है कि यह अनुमान ऐसे चिकित्सा बोर्ड द्वारा किया गया है जिसके सदस्य शरीर-रचना विज्ञान, विकिरण-रोग-निदान और न्यायालयिक ओषधि विज्ञान के प्रोफेसर हैं और उनकी राय सम्मानजनक है । इसके अतिरिक्त यदि अपीलार्थी की आयु अधिकतम सीमा तक अर्थात् 36 वर्ष मान ली जाए तब भी उसमें न्यूनतम सीमा के लिए 2 वर्ष का अंतर माना जाएगा जिसका यह अर्थ हुआ कि परीक्षा के समय अपीलार्थी की आयु 34 वर्ष थी । न्यायालय में परीक्षा कराए जाने के समय पर अपीलार्थी की आयु 34 वर्ष मानने पर घटना के समय उसकी आयु 18 वर्ष, 2 मास और 7 दिन होती किंतु ऐसा

अनुमान केवल एक अनुमान ही है और अपीलार्थी नियम 12(3)(ख) के निबंधनों में अपनी आयु 1 वर्ष कम करने का अतिरिक्त लाभ पाने का हकदार होगा जिसके अनुसार उसकी आयु 17 वर्ष और 2 मास होगी, अतः वह किशोर कहलाएगा ।

16. परिस्थितियों पर पूर्ण रूप से विचार करने पर हम चिकित्सा बोर्ड द्वारा अनुमान की गई आयु से सहमत हैं और अपीलार्थी को किशोर घोषित किए जाने से भी सहमत हैं, भले ही उसने जघन्य अपराध कारित किया है किंतु अधिनियम के अधीन उपलब्ध सुरक्षा के साथ अपीलार्थी के साथ विधि के अधीन अनुज्ञेय कठोरतम दंड दिया जाना चाहिए । इस तथ्य से हमारा समाधान हो गया है कि अपीलार्थी जिसे एक निर्दोष बालिका के साथ बलात्संग करने और उसकी हत्या करने का दोषी पाया गया है, लगभग 14 वर्षों से जेल में है, अब उसे जेल से मुक्त कर देना चाहिए ।

17. परिणामतः, यह अपील भागतः और इस सीमा तक सफल होती है कि दंड संहिता की धारा 302 और 376 के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है किंतु उसे अधिनिर्णीत दंडादेश इस निदेश के साथ अपास्त किया जाता है कि अपीलार्थी यदि अन्य किसी मामले में वांछित नहीं है तब उसे कारागार से तत्काल छोड़ा जाए ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

अस./पा.

[2015] 3 उम. नि. प. 16

संजीव

बनाम

हरियाणा राज्य

9 फरवरी, 2015

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर, न्यायमूर्ति रोहिन्टन फाली नारीमन और न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302, अपवाद 4 और धारा 304 भाग I – हत्या की कोटि में न आने वाला मानव वध – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट, अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य और न्यायिकेतर संस्वीकृति के परिशीलन से यह साबित होता है कि अभियुक्त ने पूर्वचिंतन बिना और अचानक झगड़ाजनित आवेश की तीव्रता में शराब पीने के पश्चात् मृतक के मस्तक और वक्ष पर क्षतियां कारित कीं जिसके परिणामस्वरूप मृतक की मृत्यु हो गई, अतः अभियुक्त धारा 302 के अधीन अपराध से दंडित होने के बजाय धारा 304 भाग I के अधीन दोषसिद्ध और दंडित होने का दायी है ।

अभियोजन वृत्तांत इस प्रकार है कि राज सिंह निवासी ग्राम हसनपुर के 3 भाई थे । राज पाल **उर्फ** पाले (मृतक) उसका छोटा भाई था । चारों भाई अलग-अलग रहते थे । तारीख 11 जनवरी, 2000 को राज सिंह अपने भाई राज पाल के साथ किसी निजी कार्य से सोनीपत गया । राज सिंह किसी कार्य से सोनीपत में रुक गया और राज पाल ग्राम के लिए रवाना हो गया । इसके पश्चात्, राज सिंह भी सोनीपत से ग्राम के लिए चल दिया । लगभग 10.00 बजे अपराह्न में जब राज सिंह ग्राम हसनपुर के रास्ते में था, वह जी. टी. रोड के चौराहे पर थ्री-व्हीलर से उतरा, उसने संजीव **उर्फ** गजा (अपीलार्थी) को सरकारी नलकूप की ओर से मुस्थल बस अड्डे की ओर रक्त-रंजित कपड़ों में भागते हुए देखा । राज सिंह ने वाहनों की रोशनी में पहचान लिया किंतु वह यह नहीं समझ सका कि उसके भाई राज पाल की हत्या कर दी गई है । भोजन करने के पश्चात् वह सोने चला गया । अगले दिन प्रातःकाल शकुन्तला (राज पाल की पत्नी) उसके पास आई और उसने कहा कि राज पाल घर नहीं पहुंचा है । इस पर राज सिंह और उसके एक अन्य भाई राम कुमार ने अपने लापता भाई को तलाश किया ।

लगभग 9.00 बजे पूर्वाह्न में वे नलकूप के निकट पहुंचे और एक व्यक्ति को पड़ा हुआ पाया जिसके शरीर पर केवल पायजामा था । वे उस व्यक्ति के निकट गए और उन्होंने देखा कि वह उनका भाई राज पाल है जिसकी हत्या कर दी गई है और वह रक्त से लथपथ पड़ा हुआ था । उसके माथे, नाक और भौंह पर घाव थे । मृतक की कमीज, स्वैटर, चप्पलें आदि थोड़ी ही दूर पर पड़े हुए थे । यह संदेह करते हुए कि संजीव **उर्फ** गजा ने राज पाल की हत्या की है या किसी से हत्या करवाई है, वह पुलिस चौकी गया और उसने तारीख 12 जनवरी, 2000 को 10.40 बजे पूर्वाह्न में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई । सहायक पुलिस उप निरीक्षक जगत सिंह ने पुलिस चौकी सदर, सोनीपत में दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के संबंध में उपरोक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित की । पुलिस उप निरीक्षक यशपाल की अध्यक्षता में हेड कांस्टेबल महिन्दर सिंह, कांस्टेबल राजीव सिंह और इत्तिलाकर्ता को साथ लेकर एक दल बनाया गया जो उस स्थान की ओर रवाना हुआ जहां पर शव पड़ा हुआ था । मृतक के शव को कब्जे में लिया गया और उसे मुहरबंद किया गया । मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट तैयार की गई । मृतक की कमीज, स्वैटर, चप्पलें आदि तथा रक्त-रंजित ईंट को भी पुलिस द्वारा कब्जे में लिया गया और इस संबंध में एक ज्ञापन तैयार किया गया । राज पाल का मुहरबंद शव हेड कांस्टेबल महिन्दर सिंह को सौंप दिया गया और उसे कांस्टेबल रमेश कुमार और राजबीर द्वारा शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया । पुलिस उप निरीक्षक राम चन्दर ने अन्वेषण किया । साक्षियों की परीक्षा करने और अन्वेषण पूरा होने के पश्चात्, अन्वेषण अधिकारी ने अभियुक्त संजीव (अपीलार्थी) का विचारण दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए कराए जाने के संबंध में आरोप पत्र प्रस्तुत किया । अभियुक्त और मृतक के वस्त्रों पर पाए गए रक्त के धब्बों के रक्त-ग्रुप के संबंध में न्यायालयिक रिपोर्ट भी प्राप्त की गई । यह मामला मजिस्ट्रेट द्वारा सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 207 के अधीन यथा अपेक्षित आवश्यक प्रतियां अभियुक्त को उपलब्ध कराई गईं । आरोप विरचित किए जाने के प्रक्रम पर सुनवाई किए जाने के पश्चात्, सेशन न्यायाधीश ने तारीख 23 मई, 2000 को अभियुक्त संजीव के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप विरचित किया जिस पर अभियुक्त ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने की मांग की । अपर सेशन न्यायाधीश (त्वरित निपटान न्यायालय), सोनीपत ने पक्षकारों की

सुनवाई करने के पश्चात् अभियुक्त संजीव को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी पाया और तारीख 3 अक्तूबर, 2002 को उसे तद्नुसार दोषसिद्ध किया । तारीख 5 अक्तूबर, 2002 को दंड की मात्रा के मुद्दे पर पक्षकारों की सुनवाई की गई और दोषसिद्ध संजीव को आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया गया और 5,000/- रुपए के जुर्माने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर दो मास का अतिरिक्त कारावास भोगने का निदेश दिया गया । तारीख 3 अक्तूबर, 2000/5 अक्तूबर, 2002 के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर दोषसिद्ध संजीव ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष अपील प्रस्तुत की जो 2002 की दांडिक अपील सं. 827 के रूप में रजिस्ट्रीकृत की गई । उच्च न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत की पुष्टि की और अपील खारिज कर दी । इस प्रकार, विशेष इजाजत द्वारा यह अपील फाइल की गई है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील का निपटान करते हुए,

अभिनिर्धारित – परिस्थितियों का एक साथ परिशीलन करने पर यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि तारीख 11 और 12 जनवरी, 2000 की मध्यरात्रि में अपीलार्थी ही राज पाल की हत्या कर सकता है । जब अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक यह साबित कर दिया है कि अभियुक्त संजीव को ऊपर उल्लिखित रूप में क्षति पहुंची थी, वह भी लगभग उस समय जब मृतक को क्षतियां पहुंची थीं, तब प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से अभिलेख पर यह स्पष्टीकरण होना चाहिए था कि अभियुक्त को क्षति कैसे पहुंची और वह सरकारी अस्पताल क्यों गया जहां पर डा. सी. पी. अरोड़ा ने उसका चिकित्सीय उपचार करने के पूर्व उसके शरीर पर क्षति देखी थी । ऐसे साक्ष्य के अभाव में निचले न्यायालयों के पास परिस्थितियों की उपरोक्त शृंखला से संबंधित साक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराने का कोई कारण नहीं है और उन्होंने यह निष्कर्ष ठीक ही निकाला है कि अभियुक्त संजीव ने ही इस जानकारी के साथ मृत्यु कारित की है कि उसके द्वारा कारित किए गए कृत्य से उस व्यक्ति की हत्या हो सकती है जिस पर हमला किया गया है । यह सुस्थापित विधि है कि किसी अभियुक्त द्वारा हत्या कारित किए जाने को सिद्ध करने के लिए यह अपेक्षित नहीं है कि हेतु साबित किया जाए । हेतु ऐसी परिस्थिति है जो किसी व्यक्ति को आशय गठित करने के लिए प्रेरित करती है । आशय घटनास्थल पर अपराध कारित किए जाने के समय पर भी बन सकता है । आपराधिक

मानव वध के अपराध के संबंध में जिस परिस्थिति पर विचार किया जाना चाहिए वह या तो अभियुक्त का आशय है या कृत्य की जानकारी है । आशय या जानकारी पर विचार करने के लिए न्यायालयों को परिस्थितियों पर विचार करना पड़ता है क्योंकि ऐसा कोई भी प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं हो सकता जिससे अभियुक्त की मानसिक स्थिति का पता चल सके । वर्तमान मामले में, ओम प्रकाश के साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि न्यायिकेतर संस्वीकृति करते समय अपीलार्थी ने यह वर्णन किया है कि दोनों अर्थात् वह और राज पाल के शराब पीने के पश्चात्, उन दोनों के बीच कहा-सुनी हो गई जिसके पश्चात् दोनों आपस में भिड़ गए और अपीलार्थी ने मृतक के माथे और वक्ष पर क्षतियां कारित कीं । इस तथ्य की सम्पुष्टि डा. सी. पी. अरोड़ा के कथन से होती है जिन्होंने घटना के तुरंत पश्चात् तैयार की गई चिकित्सा रिपोर्ट में अपीलार्थी के शरीर पर पाई गई क्षति को अभिलिखित किया था जिसकी माप 22 से. मी. × 2 से. मी. और गहराई 0.2 से. मी. से 0.5 से. मी. पाई गई थी । दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि आपराधिक मानव वध हत्या नहीं है, यदि वह मानव वध अचानक झगड़ा जनित आवेश की तीव्रता में हुई अचानक लड़ाई में पूर्वचिन्तन बिना और अपराधी द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूरतापूर्ण या अप्रायिक रीति से कार्य किए बिना किया गया हो । इस धारा के अपवाद 4 के स्पष्टीकरण के अधीन यह भी उपबंध किया गया है कि ऐसी दशाओं में यह तत्वहीन है कि कौन पक्ष प्रकोपन देता या पहला हमला करता है । न्यायालय की राय में, जब ओम प्रकाश के समक्ष किए गए न्यायिकेतर संस्वीकृति कथन के संबंध में अभियोजन साक्ष्य पर निचले न्यायालयों द्वारा इस पर विचार करने के लिए विश्वास किया गया है कि क्या अभियुक्त द्वारा कारित किए गए कृत्य से हत्या की कोटि में आने वाला मानव वध का अपराध गठित होता है या नहीं, तब न्यायालयों को संपूर्ण कथन और उन परिस्थितियों का परिशीलन करना चाहिए था जिनमें अपीलार्थी द्वारा मृतक को क्षतियां कारित की गई थीं और उन्हें अनदेखा नहीं करना चाहिए था । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की दलीलों पर विचार करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि वर्तमान मामले में अपीलार्थी द्वारा कारित किया गया कृत्य दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 अर्थात् हत्या की कोटि में न आने वाले मानव वध के अंतर्गत आता है, इस प्रकार यह अपराध दंड संहिता की धारा 304, भाग I के अधीन दंडनीय होगा । चर्चा किए गए कारणों के आधार पर,

न्यायालय आक्षेपित आदेशों में भागतः हस्तक्षेप करने के लिए आनत है । अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धि और दंडादेश को, जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है, अपास्त किया जाता है । इसके बजाय अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 304, भाग I के अधीन दोषसिद्ध किया जाता है और 10 वर्ष की अवधि का कारावास भोगने तथा 5,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर 2 मास की अवधि का अतिरिक्त कारावास भोगने का दंडादेश दिया जाता है । निचले न्यायालयों के आदेशों के अनुपालन में यदि जुर्माने की रकम जमा की गई है तो उसे इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त रूप में दिए गए निदेश के अनुपालन में माना जाएगा । हमें यह बताया गया है कि अपीलार्थी जेल में है, वह इस न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश पूरा करेगा । (पैरा 13, 15, 16, 17, 18 और 19)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2013 की दांडिक अपील सं. 1149.

2002 की दांडिक अपील सं. 827 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ की खंड न्यायपीठ के तारीख 24 मई, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री जे. पी. तिवारी, संजीव बंसल और प्रकाश कुमार सिंह
प्रत्यर्थी की ओर से	सुश्री नुपुर चौधरी (कमल मोहन गुप्ता की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत ने दिया ।

न्या. पंत – यह अपील 2002 की दांडिक अपील सं. 827 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित किए गए तारीख 24 मई, 2011 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है जिसके अनुसार भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302 के अधीन अपर सेशन न्यायाधीश (त्वरित निपटान न्यायालय), सोनीपत द्वारा अपीलार्थी की अभिलिखित दोषसिद्धि और दंडादेश की पुष्टि की गई है ।

2. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना है और अभिलेख का परिशीलन किया है ।

3. संक्षेप में अभियोजन वृत्तांत इस प्रकार है कि राज सिंह (अभि. सा. 9) निवासी ग्राम हसनपुर के 3 भाई थे । राज पाल **उर्फ** पाले (मृतक) उसका छोटा भाई था । चारों भाई अलग-अलग रहते थे । तारीख 11 जनवरी, 2000 को राज सिंह अपने भाई राज पाल के साथ किसी निजी कार्य से सोनीपत गया । राज सिंह किसी कार्य से सोनीपत में रुक गया और राज पाल ग्राम के लिए रवाना हो गया । इसके पश्चात्, राज सिंह भी सोनीपत से ग्राम के लिए चल दिया । लगभग 10.00 बजे अपराह्न में जब राज सिंह ग्राम हसनपुर के रास्ते में था, वह जी. टी. रोड के चौराहे पर थ्री-व्हीलर से उतरा, उसने संजीव **उर्फ** गजा (अपीलार्थी) को सरकारी नलकूप की ओर से मुरथल बस अड्डे की ओर रक्त-रंजित कपड़ों में भागते हुए देखा । राज सिंह ने वाहनों की रोशनी में पहचान लिया किंतु वह यह नहीं समझ सका कि उसके भाई राज पाल की हत्या कर दी गई है । भोजन करने के पश्चात् वह सोने चला गया । अगले दिन प्रातःकाल शकुन्तला (राज पाल की पत्नी) उसके पास आई और उसने कहा कि राज पाल घर नहीं पहुंचा है । इस पर राज सिंह और उसके एक अन्य भाई राम कुमार ने अपने लापता भाई को तलाश किया । लगभग 9.00 बजे पूर्वाह्न में वे नलकूप के निकट पहुंचे और एक व्यक्ति को पड़ा हुआ पाया जिसके शरीर पर केवल पायजामा था । वे उस व्यक्ति के निकट गए और उन्होंने देखा कि वह उनका भाई राज पाल है जिसकी हत्या कर दी गई है और वह रक्त से लथपथ पड़ा हुआ था । उसके माथे, नाक और भौंह पर घाव थे । मृतक की कमीज, स्वैटर, चप्पलें आदि थोड़ी ही दूर पर पड़े हुए थे । यह संदेह करते हुए कि संजीव **उर्फ** गजा ने राज पाल की हत्या की है या किसी से हत्या करवाई है, वह पुलिस चौकी गया और उसने तारीख 12 जनवरी, 2000 को 10.40 बजे पूर्वाह्न में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी. जी./1) दर्ज कराई ।

4. सहायक पुलिस उप निरीक्षक जगत सिंह (अभि. सा. 6) ने पुलिस चौकी सदर, सोनीपत में दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के संबंध में उपरोक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित की । पुलिस उप निरीक्षक यशपाल की अध्यक्षता में हेड कांस्टेबल महिन्दर सिंह (अभि. सा. 8), कांस्टेबल राजीव सिंह और इत्तिलाकर्ता को साथ लेकर एक दल बनाया गया जो उस स्थान की ओर रवाना हुआ जहां पर शव पड़ा हुआ था । मृतक के शव को कब्जे में लिया गया और उसे मुहरबंद किया गया । मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श पी. ई./2) तैयार की गई । मृतक की कमीज,

स्वैटर, चप्पलें आदि तथा रक्त-रंजित ईंट को भी पुलिस द्वारा कब्जे में लिया गया और इस संबंध में एक ज्ञापन तैयार किया गया । राज पाल का मुहरबंद शव हेड कांस्टेबल महिन्दर सिंह (अभि. सा. 8) को सौंप दिया गया और उसे कांस्टेबल रमेश कुमार और राजबीर द्वारा शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया । पुलिस उप निरीक्षक राम चन्दर (अभि. सा. 11) ने अन्वेषण किया ।

5. सरकारी अस्पताल की डा. पूर्णिमा आहूजा (अभि. सा. 3) ने उसी दिन अर्थात् 12 जनवरी, 2000 को अपने सहपाठी डा. आर. एन. तेहलन के साथ राज पाल के शव का शवपरीक्षण किया । चिकित्सा अधिकारियों के इस दल द्वारा मृत्यु पूर्व की जो क्षतियां अभिलिखित की गईं वे उनके द्वारा तैयार की गई शवपरीक्षण रिपोर्ट में इस प्रकार उल्लिखित हैं :–

> "1. सम्पूर्ण पीठ पर अनेक गुमटे हैं जिनके आकार इस प्रकार हैं – 5 से. मी. × 1 से. मी., 4 से. मी. × 3 से. मी., 2 से. मी. × 1 से. मी., 3 से. मी. × 1 से. मी., 3 से. मी. × 1 से. मी. और 1 से. मी. × 1 से. मी.; इन गुमटों की संख्या 10 से 12 है । अधस्त्वक ऊतक में जो कटाव है वहां रक्त मौजूद है ।
>
> 2. वक्ष के बाईं ओर से लेकर सामने की ओर तक 20 से. मी. × 10 से. मी. माप की विसरित सूजन है । जोड़ों को हिलाने पर चरचराने की ध्वनि सुनाई देती है । आगे और विच्छेदन करने पर अधस्त्वक ऊतक में अधिक मात्रा में रक्त दिखाई देता है जो वक्षीय भित्ति हृदयावरण और फुप्फुसावरण तक भरा हुआ है । तीसरी से नवीं पसली में कई स्थानों पर अस्थिभंग है । वक्षीय गुहा के बाईं ओर लगभग 2 लीटर रक्त भरा हुआ है, बाएं फेफड़े का दायां भाग अत्यधिक विदीर्ण है । तीसरी और छठी पसलियों के मध्य भाग में अस्थिभंग है और वक्षीय गुहा रक्त से भरी हुई है । फेफड़ा विदीर्ण है ।
>
> 3. ललाट के मध्य में 5 से. मी. × 2 से. मी. माप का विदीर्ण घाव है जिसकी दिशा ऊर्ध्वाधर है । साथ लगी हुई अस्थि में अस्थिभंग है । सी. वी. मौजूद है ।
>
> 4. दाएं नेत्र के दाईं ओर ठीक ऊपर की दिशा में 3 से. मी. × 2 से. मी. माप का विदीर्ण घाव है । सी. वी. मौजूद है ।

5. बाएं गाल पर 6 से. मी. × 5 से. मी. माप की विसरित सूजन मौजूद है ।

6. बाएं नेत्र पर विसरित सूजन है ।

7. बाएं कंधे के पीछे की ओर 6 से. मी. × 5 से. मी. माप का गुमटा मौजूद है ।"

शवपरीक्षण करने वाले इन दोनों चिकित्सकों द्वारा यह राय व्यक्त की गई है कि मृत्यु पूर्व की ऊपर उल्लिखित क्षतियां मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं ।

6. इसी दौरान, अभियुक्त संजीव जो 11 और 12 जनवरी, 2000 की मध्य रात्रि में लगभग 1.30 बजे पूर्वाह्न में सरकारी अस्पताल गया था, की भी जनरल अस्पताल, सोनीपत के डा. सी. पी. अरोड़ा (अभि. सा. 13) द्वारा चिकित्सा परीक्षा की गई और उन्होंने अभियुक्त के शरीर पर निम्न क्षतियां पाईं :–

"बाएं अग्र-बाहु के पश्च भाग में 22 से. मी. × 2 से. मी. माप का छिन्न घाव जिसकी गहराई 0.2 से. मी. से 0.5 से. मी. तक है । यह घाव उपरिष्ट है और इसकी गहराई केवल त्वचा तक है । इस घाव के समवर्ती एक कटाव अभियुक्त की कमीज में भी है ।"

7. साक्षियों की परीक्षा करने और अन्वेषण पूरा होने के पश्चात्, अन्वेषण अधिकारी ने अभियुक्त संजीव (अपीलार्थी) का विचारण दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए कराए जाने के संबंध में आरोप पत्र प्रस्तुत किया । अभियुक्त और मृतक के वस्त्रों पर पाए गए रक्त के धब्बों के रक्त-ग्रुप के संबंध में न्यायालयिक रिपोर्ट भी प्राप्त की गई । यह मामला मजिस्ट्रेट द्वारा सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 207 के अधीन यथा अपेक्षित आवश्यक प्रतियां अभियुक्त को उपलब्ध कराई गईं । आरोप विरचित किए जाने के प्रक्रम पर सुनवाई किए जाने के पश्चात्, सेशन न्यायाधीश ने तारीख 23 मई, 2000 को अभियुक्त संजीव के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप विरचित किया जिस पर अभियुक्त ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने की मांग की ।

8. इसके पश्चात्, अभियोजन पक्ष ने 15 साक्षियों की परीक्षा कराई

जो इस प्रकार हैं – सहायक पुलिस उप निरीक्षक, राजीव कुमार (अभि. सा. 1) जो अभियुक्त के रक्त-रंजित कपड़ों की बरामदगी के संबंध में किए गए प्रकटीकरण कथन का साक्षी है, कांस्टेबल महेश चन्दर (अभि. सा. 2) जो मृतक के रक्त-रंजित कपड़े कब्जे में लिए जाने और बरामदगी ज्ञापन प्रदर्श पी. बी. तैयार किए जाने का साक्षी है, डा. पूर्णिमा आहूजा (अभि. सा. 3) जिसने शवपरीक्षण किया है, जय पाल (अभि. सा. 4) जिसने राज पाल के शव को मुहरबंद करने के पूर्व फोटोचित्र लिए हैं, रामपाल पटवारी (अभि. सा. 5) जिसने स्थल नक्शा प्रदर्श पी. एफ. तैयार किया है, सहायक पुलिस उप निरीक्षक जगत सिंह (अभि. सा. 6) जिसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रदर्श पी. जी./1 अभिलिखित की है, पुलिस निरीक्षक राम कला (अभि. सा. 7) जिसने अभियुक्त को गिरफ्तार किया था, हेड कांस्टेबल महिन्दर सिंह (अभि. सा. 8) जिसे मुहरबंद करने के पश्चात् शव सुपुर्द किया गया था, राज सिंह (अभि. सा. 9) जो इत्तिलाकर्ता और मृतक का भाई है, पुलिस उप निरीक्षक राम चन्दर (अभि. सा. 11) जिसने एक पत्र प्रदर्श पी. ओ./1 प्रेषित किया था जिसमें सरकारी अस्पताल से शवपरीक्षण कराने का निवेदन किया गया था, ओम प्रकाश (अभि. सा. 12) जो न्यायिकेतर संस्वीकृति कथन का साक्षी है, डा. सी. पी. अरोड़ा (अभि. सा. 13) जिसने अभियुक्त के शरीर पर पाई गईं क्षतियों की परीक्षा की है, पुलिस उप निरीक्षक यशपाल सिंह (अभि. सा. 14) जो अन्य पुलिस कार्मिकों और इत्तिलाकर्ता के साथ प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने के पश्चात् घटनास्थल पर गया था और मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट तैयार की थी ; और आजाद सिंह (अभि. सा. 15) जो न्यायिकेतर संस्वीकृति कथन का एक अन्य साक्षी है ।

9. तारीख 16 जनवरी, 2000 को विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभियुक्त के समक्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य रखा गया जिसके संबंध में अभियुक्त ने यह अभिवाक् किया कि उसके विरुद्ध रखा गया साक्ष्य गलत है और उसने यह कथन किया कि उसे मिथ्या फंसाया गया है ।

10. अपर सेशन न्यायाधीश (त्वरित निपटान न्यायालय), सोनीपत ने पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् अभियुक्त संजीव को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी पाया और तारीख 3 अक्तूबर, 2002 को उसे तद्नुसार दोषसिद्ध किया । तारीख 5 अक्तूबर, 2002 को दंड की मात्रा के मुद्दे पर पक्षकारों की सुनवाई की गई और दोषसिद्ध संजीव को आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया गया और

5,000/- रुपए के जुर्माने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर दो मास का अतिरिक्त कारावास भोगने का निदेश दिया गया ।

11. तारीख 3 अक्तूबर, 2000/5 अक्तूबर, 2002 के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर दोषसिद्ध संजीव ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष अपील प्रस्तुत की जो 2002 की दांडिक अपील सं. 827 के रूप में रजिस्ट्रीकृत की गई । उच्च न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत की पुष्टि की और अपील खारिज कर दी । इस प्रकार, विशेष इजाजत द्वारा यह अपील फाइल की गई है ।

12. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने हमारे समक्ष तर्क दिया है कि यह पारिस्थितिक साक्ष्य का मामला है और किसी भी व्यक्ति ने अपीलार्थी को अपराध कारित करते हुए नहीं देखा है यह भी दलील दी है कि वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा दर्शाई गई परिस्थितियों से साक्ष्य की शृंखला पूर्ण नहीं होती है और निचले न्यायालयों ने अपीलार्थी को हत्या का दोषी अभिनिर्धारित करने में विधि की दृष्टि से त्रुटि की है । उपरोक्त दलील का मूल्यांकन करने के लिए हमें उन परिस्थितियों पर विचार करना होगा जो अपीलार्थी के विरुद्ध अभिलेख पर प्रस्तुत की गईं हैं । अभियोजन पक्ष ने इस मामले में अभियुक्त के विरुद्ध निम्न तथ्यों को सिद्ध किया है :–

> "(i) इत्तिलाकर्ता राज सिंह (अभि. सा. 9) ने तारीख 11 जनवरी, 2000 को लगभग 10.00 बजे अपराह्न में अभियुक्त को भागते हुए देखा था जिसके कपड़े रक्त-रंजित थे ।
>
> (ii) तारीख 12 जनवरी, 2000 को डा. सी. पी. अरोड़ा (अभि. सा. 13) ने अभियुक्त संजीव की दिन में ही चिकित्सा परीक्षा की थी, तब यह पाया गया कि अभियुक्त को उसकी बाईं अग्र बाहु के पश्च भाग में 22 से. मी. × 2 से. मी. माप की छिन्न क्षति पहुंची है जिसकी गहराई 0.2 से. मी. से 0.5 से. मी. है और उसकी कमीज में कटाव भी है । इस साक्षी (अभि. सा. 13) ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने के पूर्व एक रुक्का (ज्ञापन) प्रदर्श पी. पी./1 पुलिस चौकी, जनरल चिकित्सालय के भारसाधक को भेजा था ।
>
> (iii) ओम प्रकाश (अभि. सा. 12) ने यह कथन किया है कि तारीख 14 जनवरी, 2000 को अभियुक्त संजीव ने उसे यह बताया था कि तारीख 11 जनवरी, 2000 को शराब पीने के पश्चात् राज

पाल के साथ उसकी (अभियुक्त) कहा-सुनी हो गई थी जिसके परिणामस्वरूप उसने मृतक पर ईंट से हमला किया ।

(iv) सहायक पुलिस उप निरीक्षक राजीव कुमार (अभि. सा. 1) और पुलिस निरीक्षक राम कला (अभि. सा. 7) ने यह साक्ष्य दिया है कि तारीख 15 जनवरी, 2000 को अभियुक्त संजीव द्वारा दिए गए प्रकटीकरण कथन (प्रदर्श पी. ए.) के आधार पर उसके रक्त-रंजित कपड़े बरामद किए गए जो उसने अपने घर में रखे लकड़ी की संदूक में छिपाए हुए थे ।

(v) न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट से यह सिद्ध हो जाता है कि बरामद किए गए रक्त-रंजित कपड़ों पर पाए गए रक्त का रक्त ग्रुप वही अर्थात् 'O' पाया गया है जो मृतक का था ।"

13. उपरोक्त परिस्थितियों का एकसाथ परिशीलन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि तारीख 11 और 12 जनवरी, 2000 की मध्यरात्रि में अपीलार्थी ही राज पाल की हत्या कर सकता है । जब अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक यह साबित कर दिया है कि अभियुक्त संजीव को ऊपर उल्लिखित रूप में क्षति पहुंची थी, वह भी लगभग उस समय जब मृतक को क्षतियां पहुंची थीं, तब प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से अभिलेख पर यह स्पष्टीकरण होना चाहिए था कि अभियुक्त को क्षति कैसे पहुंची और वह सरकारी अस्पताल क्यों गया जहां पर डा. सी. पी. अरोड़ा (अभि. सा. 13) ने उसका चिकित्सीय उपचार करने के पूर्व उसके शरीर पर क्षति देखी थी । ऐसे साक्ष्य के अभाव में निचले न्यायालयों के पास परिस्थितियों की उपरोक्त शृंखला से संबंधित साक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराने का कोई कारण नहीं है और उन्होंने यह निष्कर्ष ठीक ही निकाला है कि अभियुक्त संजीव ने ही इस जानकारी के साथ मृत्यु कारित की है कि उसके द्वारा कारित किए गए कृत्य से उस व्यक्ति की हत्या हो सकती है जिस पर हमला किया गया है ।

14. अपीलार्थी की ओर से यह निवेदन किया गया है कि राज पाल की हत्या कारित करने के लिए अपीलार्थी का कोई हेतु नहीं था, इस प्रकार हेतु न होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता है कि वह अपीलार्थी ही है जिसने यह अपराध कारित किया है ।

15. यह सुस्थापित विधि है कि किसी अभियुक्त द्वारा हत्या कारित किए जाने को सिद्ध करने के लिए यह अपेक्षित नहीं है कि हेतु साबित

किया जाए । हेतु ऐसी परिस्थिति है जो किसी व्यक्ति को आशय गठित करने के लिए प्रेरित करती है । आशय घटनास्थल पर अपराध कारित किए जाने के समय पर भी बन सकता है । आपराधिक मानव वध के अपराध के संबंध में जिस परिस्थिति पर विचार किया जाना चाहिए वह या तो अभियुक्त का आशय है या कृत्य की जानकारी है । आशय या जानकारी पर विचार करने के लिए न्यायालयों को परिस्थितियों पर विचार करना पड़ता है क्योंकि ऐसा कोई भी प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं हो सकता जिससे अभियुक्त की मानसिक स्थिति का पता चल सके ।

16. वर्तमान मामले में, ओम प्रकाश (अभि. सा. 12) के साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि न्यायेतर संस्वीकृति करते समय अपीलार्थी ने यह वर्णन किया है कि दोनों अर्थात् वह और राज पाल के शराब पीने के पश्चात्, उन दोनों के बीच कहा-सुनी हो गई जिसके पश्चात् दोनों आपस में भिड़ गए और अपीलार्थी ने मृतक के माथे और वक्ष पर क्षतियां कारित कीं । इस तथ्य की सम्पुष्टि डा. सी. पी. अरोड़ा (अभि. सा. 13) के कथन से होती है जिन्होंने घटना के तुरंत पश्चात् तैयार की गई चिकित्सा रिपोर्ट में अपीलार्थी के शरीर पर पाई गई क्षति को अभिलिखित किया था जिसकी माप 22 से. मी. x 2 से. मी. और गहराई 0.2 से. मी. से 0.5 से. मी. पाई गई थी ।

17. दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि आपराधिक मानव वध हत्या नहीं है, यदि वह मानव वध अचानक झगड़ा जनित आवेश की तीव्रता में हुई अचानक लड़ाई में पूर्व-चिन्तन बिना और अपराधी द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूरतापूर्ण या अप्रायिक रीति से कार्य किए बिना किया गया हो । इस धारा के अपवाद 4 के स्पष्टीकरण के अधीन यह भी उपबंध किया गया है कि ऐसी दशाओं में यह तत्वहीन है कि कौन पक्ष प्रकोपन देता या पहला हमला करता है ।

18. हमारी राय में, जब ओम प्रकाश (अभि. सा. 12) के समक्ष किए गए न्यायेतर संस्वीकृति कथन के संबंध में अभियोजन साक्ष्य पर निचले न्यायालयों द्वारा इस पर विचार करने के लिए विश्वास किया गया है कि क्या अभियुक्त द्वारा कारित किए गए कृत्य से हत्या की कोटि में आने वाला मानव वध का अपराध गठित होता है या नहीं, तब न्यायालयों को संपूर्ण कथन और उन परिस्थितियों का परिशीलन करना चाहिए था जिनमें अपीलार्थी द्वारा मृतक को क्षतियां कारित की गई थीं और उन्हें अनदेखा

नहीं करना चाहिए था । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की दलीलों पर विचार करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि वर्तमान मामले में अपीलार्थी द्वारा कारित किया गया कृत्य दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 अर्थात् हत्या की कोटि में न आने वाले मानव वध के अंतर्गत आता है, इस प्रकार यह अपराध दंड संहिता की धारा 304, भाग I के अधीन दंडनीय होगा ।

19. ऊपर चर्चा किए गए कारणों के आधार पर, हम आक्षेपित आदेशों में भागतः हस्तक्षेप करने के लिए आनत हैं । अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धि और दंडादेश को, जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है, अपास्त किया जाता है । इसके बजाय अपीलार्थी के दंड संहिता की धारा 304, भाग I के अधीन दोषसिद्ध किया जाता है और 10 वर्ष की अवधि का कारावास भोगने तथा 5,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर 2 मास की अवधि का अतिरिक्त कारावास भोगने का दंडादेश दिया जाता है । निचले न्यायालयों के आदेशों के अनुपालन में यदि जुर्माने की रकम जमा की गई है तो उसे इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त रूप में दिए गए निदेश के अनुपालन में माना जाएगा । हमें यह बताया गया है कि अपीलार्थी जेल में है, वह इस न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश पूरा करेगा ।

20. तद्नुसार इस अपील का निपटारा किया जाता है ।

अपील का निपटारा किया गया ।

अस./पा.

शरद कुमार सांघी

बनाम

संगीता राणे

10 फरवरी, 2015

न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा और न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 420 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 और धारा 200] – छल – अपीलार्थी और उसकी कंपनी के विरुद्ध छल कारित किए जाने की शिकायत – कंपनी को पक्षकार न बनाना – अपीलार्थी के विरुद्ध विशिष्ट अभिकथन न किया जाना – अपीलार्थी ने कंपनी के प्रबंध निदेशक के रूप में कार्य किया है इसलिए कंपनी को पक्षकार न बनाए जाने तथा अपीलार्थी के विरुद्ध कोई स्पष्ट अभिकथन न किए जाने के कारण उसे प्रतिनिधिक दायित्व के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता, अतः अपीलार्थी के विरुद्ध छल कारित करने की शिकायत चलने योग्य नहीं है ।

इस मामले में शिकायतकर्ता अर्थात् प्रत्यर्थी संगीता राणे ने अपीलार्थी और उसकी कंपनी के विरुद्ध शिकायत फाइल की कि उसे नए यान के स्थान पर दुर्घटनाग्रस्त यान बेचा गया है और उसके साथ छल किया गया है । इस शिकायत के विरुद्ध अपीलार्थी ने मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिए जाने और समन जारी किए जाने के विरुद्ध सेशन न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया जिसे खारिज कर दिया गया । सेशन न्यायालय के इस आदेश के विरुद्ध अपीलार्थी ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन आवेदन किया और वह आवेदन भी खारिज कर दिया गया । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर अपील फाइल की । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में जैसा कि शिकायतकर्ता के आरंभिक कथन से प्रतीत होता है, कंपनी के विरुद्ध अभिकथन किए गए हैं किंतु इस कंपनी को पक्षकार नहीं बनाया गया है । अतः, जो अभिकथन किए गए हैं वे केवल प्रबंध निदेशक तक ही सीमित रहने चाहिए । प्रबंध निदेशक के विरुद्ध कोई भी विशिष्ट अभिकथन नहीं किया गया है । जब किसी कंपनी को पक्षकार नहीं बनाया जाता है, तब उसके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही आरंभ नहीं की जा सकती चाहे कतिपय कानूनों के आधार पर प्रतिनिधिक

दायित्व क्यों न बनता हो । इस समागम पर, यह उल्लेखनीय है, जैसाकि न्यायालय ने इसमें पूर्व भी कहा है, विद्वान् मजिस्ट्रेट ने तारीख 22 अक्तूबर, 2001 का आदेश पारित करते समय इस प्रकार मत व्यक्त किया कि शिकायतकर्ता द्वारा फाइल की गई शिकायत, दस्तावेज, साक्ष्य और दलीलों से प्रथमदृष्ट्या यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त कंपनी ने पुराना और दुर्घटनाग्रस्त यान नए यान के मूल्य पर वितरित करके शिकायतकर्ता के साथ छल किया है । तदनुसार, प्रथमदृष्ट्या अभियुक्त के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध के लिए शिकायत दर्ज किए जाने के पर्याप्त आधार हैं और तदनुसार शिकायत दर्ज की जाए । चूंकि कंपनी को अभियुक्त नहीं बनाया गया है, इसलिए ऐसा आदेश पारित नहीं किया जा सकता है । न्यायालय ने औपचारिकता किए जाने के लिए ऐसा कहा है । पूर्ण विश्लेषण के पश्चात् न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि उच्च न्यायालय को अपीलार्थी के विरुद्ध चल रही दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित कर देना चाहिए था जो कि नहीं किया गया है, यह आदेश दोषपूर्ण है और तदनुसार न्यायालय इसे अपास्त करता है और अपीलार्थी के विरुद्ध प्रत्यर्थी द्वारा चलाई गई दांडिक कार्यवाहियां अभिखंडित करता है । (पैरा 11, 12 और 13)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2012] (2012) 5 एस. सी. सी. 661 :
अनीता हाडा बनाम **गोड फादर ट्रैवल्स एण्ड टूर्स प्राइवेट लिमिटेड** । 11

निर्दिष्ट निर्णय

[2013] (2013) 4 एस. सी. सी. 505 :
जी. एच. सी. एल. एम्पलाइज स्टाक ऑप्शन ट्रस्ट बनाम **इंडिया इनफोलाइन लिमिटेड** ; 10

[2010] (2010) 10 एस. सी. सी. 479 :
महाराष्ट्र राज्य विद्युत वितरण कंपनी लिमिटेड बनाम **दतार स्विचगेयर लिमिटेड** ; 10

[2008] (2008) 5 एस. सी. सी. 668 :
मकसूद सजयाद बनाम **गुजरात राज्य** ; 9

[2008] (2008) 5 एस. सी. सी. 662 :
एस. के. अलघ बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 10

[2005] (2005) 8 एस. सी. सी. 89 :
एस. एम. एस. फार्मास्यूटिकल लिमिटेड बनाम
नीता भल्ला और एक अन्य । 9

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील सं. 1584.

2002 की दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 1922 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की जबलपुर न्यायपीठ के तारीख 30 नवंबर, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री सिद्धार्थ लूथरा (ज्येष्ठ अधिवक्ता), बडी ए. रंगन धान, ए. वी. रंगम और डी. वी. रघु वमसी

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री अक्षत श्रीवास्तव और सुश्री मनजीत कृपाल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – 2002 के प्रकीर्ण दांडिक आवेदन सं. 1922 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए तारीख 30 नवंबर, 2006 के आदेश द्वारा विद्वान् न्यायाधीश ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन, 2001 के दांडिक मामला सं. 895 में न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, बैतूल के समक्ष भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 420 के अधीन लंबित कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए शक्ति का प्रयोग करने से इनकार कर दिया था । उच्च न्यायालय के इसी आदेश की विधिमान्यता को चुनौती देते हुए विशेष इजाजत द्वारा यह अपील फाइल की गई है ।

2. अनावश्यक ब्यौरों को छोड़ते हुए मामले के मुख्य तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी मैसर्स सांघी ब्रदर्स (इंदौर) लिमिटेड, इंदौर का प्रबंध निदेशक है और यह कंपनी एक रजिस्ट्रीकृत कंपनी है जो कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन निगमित और रजिस्ट्रीकृत है और इस कंपनी के अंतर्गत मोटर वाहनों के विक्रय, वित्त और पोत परिवहन आदि का कारबार किया जाता है और इसकी शाखाएं भोपाल नगर सहित अन्य कई

स्थानों पर हैं । प्रत्यर्थी-शिकायतकर्ता ने अप्रैल 1998 में एक टाटा डीजल यान की खरीदारी के लिए कोटेशन प्राप्त की थी जिसका मोडल सं. एसएफसी 709/38 एलबी था और यह यान तारीख 1 मई, 1998 को प्रत्यर्थी को वितरित कर दिया गया और इसका संदाय किए जाने के लिए स्टेट बैंक आफ इंडिया, सरनी शाखा, बैतूल से जारी किया गया बैंक ड्राफ्ट भोपाल में जमा किया गया । प्रत्यर्थी को इस यान में आई कमियों का सामना करना पड़ा और परिणामस्वरूप उसे अगस्त, 2000 में यह पता चला कि इस वितरण के संबंध में जारी किए गए बीजक में जो इंजन नम्बर दिया गया था वह यान के ढांचे (पीठिका) के नम्बर से मेल नहीं खाता है । जांच किए जाने पर यह पता चला कि टाटा इंजीनियरिंग एण्ड लोकोमोटिव कंपनी (टेल्को) द्वारा तारीख 7 नवंबर, 2000 को एक पत्र जारी किया गया था कि उक्त यान दुर्घटनाग्रस्त हो गया था जिसके परिणामस्वरूप उसमें लगे इंजन के स्थान पर एक अन्य इंजन लगा दिया गया था । यह पता चलने पर प्रत्यर्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के अधीन यह अभिकथन करते हुए शिकायत फाइल की कि मैसर्स सांघी ब्रदर्स (इंदौर) लिमिटेड, इंदौर ने, जिसके प्रबंध निदेशक शरद कुमार सांघी हैं, इस जानकारी को छिपाया है और जानबूझकर प्रत्यर्थी के साथ छल किया गया है ।

3. विद्वान् मजिस्ट्रेट ने, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अधीन अनुध्यात प्रक्रिया का अनुपालन करने के पश्चात् इस अपराध का संज्ञान लिया जिस पर हम बाद में विचार करेंगे ।

4. संज्ञान लिए जाने और समन जारी किए जाने के पश्चात् अपीलार्थी ने विद्वान् सेशन न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया जो तारीख 27 फरवरी, 2002 को खारिज कर दिया गया ।

5. उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई कि विद्वान् मजिस्ट्रेट को कोई भी क्षेत्राधिकारिता नहीं है; प्रत्यर्थी द्वारा कोई भी धोखा-धड़ी नहीं की गई है; इस कंपनी को (फाइल की गई) शिकायत में अभियुक्त नहीं बनाया गया है और इसीलिए यह शिकायत चलने योग्य नहीं है; और इस मामले में कोई भी आपराधिक मनःस्थिति नहीं है । उच्च न्यायालय ने, जैसाकि आक्षेपित निर्णय से स्पष्ट है, अपीलार्थी की सभी दलीलों का विरोध करते हुए अभिखंडन के लिए फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया ।

6. हमने अपीलार्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री सिद्धार्थ लूथरा और प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री अक्षत श्रीवास्तव को सुना है ।

7. यह विवादित नहीं है कि यह यान तारीख 1 मई, 1998 को प्रत्यर्थी द्वारा क्रय किया गया था । बीजक में दिया गया इंजन नम्बर यान में लगे इंजन नम्बर से भिन्न है । प्रत्यर्थी ने तारीख 8 मई, 2001 को शिकायत दर्ज कराई । हमने अपने इस समाधान के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के अधीन फाइल की गई शिकायत का बारीकी से परिशीलन किया है कि अपीलार्थी के विरुद्ध कोई विशिष्ट अभिकथन किया गया है या नहीं । इस शिकायत का अंग्रेजी अनुवाद अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है । हिन्दी में तैयार की गई मूल शिकायत भी फाइल की गई है । अपीलार्थी के विरुद्ध किए गए अभिकथन निम्न प्रकार हैं :–

> "मैसर्स सांघी ब्रदर्स इंदौर के स्वत्वधारी अर्थात् अभियुक्त शरद पुत्र सोहन सांघी ने दुर्घटनाग्रस्त यान सं. 709 एलएम को उपेक्षापूर्वक तैयार किया था और उसे शिकायतकर्ता को नया बताकर वितरित किया था जिससे अभियुक्त को लाभ हुआ और शिकायतकर्ता को हानि पहुंची जो कि दंड संहिता की धारा 420 के अधीन दंडनीय है ।"

8. उपर्युक्त अभिकथन के सिवाय, अपीलार्थी के विरुद्ध कोई भी अभिकथन नहीं किया गया है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के अधीन किए गए आरंभिक कथन में शिकायतकर्ता ने तथ्यों का उल्लेख करने के पश्चात् इस प्रकार कथन किया है :–

> "ब्रदर्स लिमिटेड श्री शरद सांघी द्वारा चलाई जा रही कंपनी है जिसने अपीलार्थी को नए यान के स्थान पर दुर्घटनाग्रस्त यान वितरित करके उसके साथ छल किया है और उसे घोर वित्तीय हानि पहुंचाई है । अपीलार्थी ने इस यान का उपयोग करने के लिए बैंक से ऋण लिया है और यह यान उक्त कमियों के कारण चलाए जाने योग्य नहीं है । मैंने इस मामले में संबंधित दस्तावेजों की प्रतियां फाइल कर दी हैं ।"

9. प्रबंध निदेशक के विरुद्ध उसकी वैयक्तिक जिम्मेदारी ठहराते हुए जो अभिकथन किए गए हैं वे हमारे विचार से पूर्णतया निराधार हैं । जब कोई शिकायतकर्ता प्रबंध निदेशक के विरुद्ध या कंपनी के अन्य किसी अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही करता है, तब यह आवश्यक है कि उसके

प्रतिनिधिक दायित्व को गठित करने के लिए पर्याप्त अभिकथन किया जाना चाहिए । **मकसूद सजयाद** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) या धारा 200 के निबंधनों में फाइल की गई किसी शिकायत के संबंध में अधिकारिता का प्रयोग किया जाता है, तब मजिस्ट्रेट से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने विवेक का प्रयोग करे । जब कोई कंपनी अभियुक्त होती है, ऐसी स्थिति में इस संबंध में दंड संहिता में कंपनी के प्रबंध निदेशक या निदेशकों के प्रतिनिधिक दायित्व को लेकर कोई भी उपबंध नहीं किया गया है । विद्वान् मजिस्ट्रेट ऐसा उचित प्रश्न पूछने में असफल रहे कि शिकायत अर्जी को प्रथमदृष्ट्या पूर्णतया सही मान लेने पर भी इससे यह निष्कर्ष निकलता कि इस मामले में के प्रत्यर्थी किसी अपराध के लिए व्यक्तिगत रूप से दायी हैं । बैंक एक निगमित निकाय है । प्रबंध निदेशक और निदेशक का प्रतिनिधिक दायित्व बन जाएगा परंतु यह तब जबकि कानून में इस संबंध में कोई उपबंध विद्यमान हो । कानून में निर्विवाद रूप से ऐसा उपबंध होना चाहिए जिसमें ऐसे विधिक दायित्व को नियत किया जा सके । उक्त प्रयोजन के लिए भी शिकायतकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह सुसंगत अभिकथन करे जिनके आधार पर प्रतिनिधिक दायित्व गठित करने वाले उपबंध लागू होते हों ।"

इस संबंध में, **एस. एम. एस. फार्मास्यूटिकल लिमिटेड** बनाम **नीता भल्ला और एक अन्य**[2] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय को निर्दिष्ट करना समुचित होगा । परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन अपराध पर विचार करते हुए न्यायालय ने प्रक्रिया जारी किए जाने और धारा 203 के अधीन प्रक्रिया जारी किए बिना भी शिकायत खारिज करने की शक्ति के संबंध में मजिस्ट्रेट के कर्तव्य का वर्णन करते हुए इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> " ..... शिकायत में ऐसी सामग्री होनी चाहिए जिससे मजिस्ट्रेट प्रक्रिया जारी करने का विनिश्चय कर ले । यदि यह अपेक्षा नहीं की जाती, तब परिणाम निकलना कठिन हो सकता था । यदि किसी

---

[1] (2008) 5 एस. सी. सी. 668.

[2] (2005) 8 एस. सी. सी. 89.

> मजिस्ट्रेट को प्रत्येक मामले में प्रक्रिया जारी करनी पड़ती तब मजिस्ट्रेट पर पड़ने वाला कार्यभार तथा उन प्रत्यर्थियों को कारित होने वाला प्रपीड़न अत्यधिक होता जिनके विरुद्ध प्रक्रिया जारी की जाती है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 204 के अधीन भी आरंभ में यह उल्लेख है, 'यदि किसी अपराध का संज्ञान लेने वाले मजिस्ट्रेट की राय में प्रक्रिया की कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है ।' 'कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार' जैसे शब्दों से पुनः यह अर्थ निकलता है कि शिकायत में ऐसे आधारों का उल्लेख होना चाहिए कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध कार्यवाही की जा सके । इस संबंध में सुस्थापित विधि है कि प्रक्रिया जारी किए जाने के समय पर मजिस्ट्रेट से यह अपेक्षा की जाती है कि वह शिकायत में केवल अभिकथनों पर विचार करे और यदि शिकायत में किए गए अभिकथनों या आरोप पत्र से किसी व्यक्ति के विरुद्ध अपराध गठित नहीं होता हो, तब शिकायत खारिज की जानी चाहिए ।"

ऐसा मत व्यक्त किए जाने के पश्चात्, न्यायालय ने अधिनियम की धारा 141 का विश्लेषण किया और कतिपय निर्णयज विधि निर्दिष्ट करते हुए उत्तर दिया जिसका सुसंगत भाग निम्न प्रकार है :–

> "धारा 141 के अधीन की गई शिकायत में विशिष्ट रूप से प्रकथन करना आवश्यक है कि अपराध कारित किए जाने के समय पर अभियुक्त पर कंपनी का कारबार चलाने का प्रभार था और वही उसके लिए जिम्मेदार है । यह प्रकथन धारा 141 की अपेक्षा को पूरा करने के लिए आवश्यक है और ऐसा प्रकथन शिकायत में किया जाना चाहिए । शिकायत में ऐसा प्रकथन न किए जाने की स्थिति में, धारा 141 की अपेक्षाओं का समाधान नहीं किया जा सकता ।"

10. ऐसा ही सिद्धांत **एस. के. अलघ** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1]; **महाराष्ट्र राज्य विद्युत वितरण कंपनी लिमिटेड** बनाम **दतार स्विचगेयर लिमिटेड**[2] और **जी. एच. सी. एल. एम्पलाइज स्टाक ऑप्शन ट्रस्ट** बनाम **इंडिया इनफोलाइन लिमिटेड**[3] वाले मामलों में भी दोहराया गया है ।

11. वर्तमान मामले में जैसा कि शिकायतकर्ता के आरंभिक कथन से प्रतीत होता है, कंपनी के विरुद्ध अभिकथन किए गए हैं किंतु इस कंपनी

---

[1] (2008) 5 एस. सी. सी. 662.

[2] (2010) 10 एस. सी. सी. 479.

[3] (2013) 4 एस. सी. सी. 505.

को पक्षकार नहीं बनाया गया है । अतः, जो अभिकथन किए गए हैं वे केवल प्रबंध निदेशक तक ही सीमित रहने चाहिए । प्रबंध निदेशक के विरुद्ध कोई भी विशिष्ट अभिकथन नहीं किया गया है । जब किसी कंपनी को पक्षकार नहीं बनाया जाता है, तब उसके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही आरंभ नहीं की जा सकती चाहे कतिपय कानूनों के आधार पर प्रतिनिधिक दायित्व क्यों न बनता हो । परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 के संदर्भ में **अनीता हाडा** बनाम **गोड फादर ट्रैवल्स एण्ड टूर्स प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा इसी प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है ।

12. इस समागम पर, यह उल्लेखनीय है, जैसाकि हमने इसमें पूर्व भी कहा है, विद्वान् मजिस्ट्रेट ने तारीख 22 अक्तूबर, 2001 का आदेश पारित करते समय इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "शिकायतकर्ता द्वारा फाइल की गई शिकायत, दस्तावेज, साक्ष्य और दलीलों से प्रथमदृष्ट्या यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त कंपनी ने पुराना और दुर्घटनाग्रस्त यान नए यान के मूल्य पर वितरित करके शिकायतकर्ता के साथ छल किया है । तदनुसार, प्रथमदृष्ट्या अभियुक्त के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध के लिए शिकायत दर्ज किए जाने के पर्याप्त आधार हैं और तदनुसार शिकायत दर्ज की जाए ।"

13. चूंकि कंपनी को अभियुक्त नहीं बनाया गया है, इसलिए ऐसा आदेश पारित नहीं किया जा सकता है । हमने औपचारिकता किए जाने के लिए ऐसा कहा है । पूर्ण विश्लेषण के पश्चात् हमारी यह सुविचारित राय है कि उच्च न्यायालय को अपीलार्थी के विरुद्ध चल रही दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित कर देना चाहिए था जो कि नहीं किया गया है, यह आदेश दोषपूर्ण है और तदनुसार हम इसे अपास्त करते हैं और अपीलार्थी के विरुद्ध प्रत्यर्थी द्वारा चलाई गई दांडिक कार्यवाहियां अभिखंडित करते हैं ।

14. तदनुसार अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./पा.

---

[1] (2012) 5 एस. सी. सी. 661.

[2015] 3 उम. नि. प. 37

मध्य प्रदेश राज्य

बनाम

मेहताब

13 फरवरी, 2015

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर और न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304क और 337 – उपेक्षापूर्ण कार्य – मृत्यु – अभिलेख पर साक्ष्य से यह साबित होता है कि अभियुक्त द्वारा अधिक वोल्टेज वाला बिजली का खुला तार खेत में छोड़ कर उपेक्षापूर्ण कार्य किया गया जिससे मृतका की मृत्यु हो गई, अतः अभियुक्त अपनी उपेक्षा से मृत्यु कारित करने का दोषी है और मृतका के वारिसों को प्रतिकर देने का दायी है ।

तारीख 22 नवंबर, 1997 को मृतका सुशीला बाई पत्नी राम चरन अपने पति के साथ ग्राम राघो गढ़ से वापस ग्राम कुधाईढेर स्थित अपने घर आ रही थी । प्रत्यर्थी/अभियुक्त ने बिजली के खम्भे से अपने खेत तक तार खींचा हुआ था जो अंधेरे में दिखाई नहीं दे रहा था । राम चरन तार से टकरा गया और अचेत हो गया । तार हटाने की इसी प्रक्रिया में मृतका सुशीला बाई को बिजली का झटका लगा । मृतका के भाई मिश्री लाल और कल्लू सूचना प्राप्त होने पर गोवर्धन और सोमलाल के साथ घटनास्थल पर पहुंचे । वहां पहुंच कर यह पाया गया कि सुशीला बाई की मृत्यु हो गई है और राम चरन क्षतिग्रस्त है किंतु जीवित है । राम चरन को अस्पताल ले जाया गया । मृतका के शव का शवपरीक्षण किया गया और अन्वेषण के पश्चात् प्रत्यर्थी/अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 304क/337 के अधीन विचारण के लिए भेज दिया गया । अभियोजन पक्ष ने डा. एन. के. शर्मा की परीक्षा कराई जिन्होंने यह स्पष्ट किया कि राम चरन को बिजली (विद्युत धारा) से क्षतियां पहुंची हैं और यह कि सुशीला बाई की मृत्यु बिजली से झटका लगने के कारण हुई है । कल्लू तथा राम चरन ने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि यह तार बिजली के खम्भे से खेत तक मेहताब द्वारा खींचा गया था जिस पर विद्युत धारा से बचने के लिए कोई भी कुचालक नहीं लगा हुआ था और इसी के परिणामस्वरूप सुशीला बाई की मृत्यु हो गई । यह कृत्य स्पष्ट रूप से अभिकथित अपराध की कोटि में आता है । इस साक्ष्य की सम्पुष्टि अन्य साक्षियों द्वारा भी होती है ।

तदनुसार, विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी/अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 304क और 337 के अधीन दोषसिद्ध किया तथा उसे दंड संहिता की धारा 304क के अधीन एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 500/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर एक मास का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने तथा धारा 337 के अधीन तीन मास का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया । सेशन न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखे जाने पर, प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन प्रस्तुत किया । प्रत्यर्थी ने अपनी दोषसिद्धि को चुनौती नहीं दी किंतु उसने कारावास के दंड में कमी किए जाने की ईप्सा की । उक्त प्रार्थना स्वीकार की गई और दंड की अवधि को घटाकर पहले से भोगे गए कारावास जितना कर दिया गया । उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर मध्य प्रदेश राज्य ने यह अपील प्रस्तुत की है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह ऐसे दोषसिद्ध व्यक्ति को उचित दंडादेश अधिनिर्णीत करे जिसके विरुद्ध आरोप साबित किया गया है । जब प्रत्येक न्यूनकारी या गुरुतरकारी परिस्थितियों को सम्यक् रूप से महत्व दिया जाए, तब बिना सोचे-समझे कारावास कम करके पहले से भोगे गए कारावास की अवधि जितना कर देना उचित नहीं कहा जा सकता । दंडादेश केवल अभियुक्त के लिए ही उचित नहीं होना चाहिए अपितु आहत और समाज के लिए भी सही होना चाहिए । न्यायालय का यह भी कर्तव्य है कि वह आहत का पुनर्वास किए जाने के पहलू पर भी सम्यक् रूप से विचार करे । दुर्भाग्यवश, ये संघटक आक्षेपित निर्णय में नहीं हैं । 10 दिन का दंडादेश अधिरोपित करने के लिए कोई भी ठोस कारण समनुदेशित नहीं किया गया है जबकि एक निर्दोष व्यक्ति की मृत्यु हुई है । अयुक्तियुक्त प्रतिकर अधिनिर्णीत किए जाने पर भी विचार नहीं किया गया है । दंडादेश और अभियुक्त द्वारा संदाय किए गए जुर्माने/प्रतिकर के अतिरिक्त, न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357क के अधीन ऐसी स्थिति में राज्य द्वारा प्रतिकर दिए जाने का निदेश करना चाहिए जब अभियुक्त उचित प्रतिकर का संदाय करने की स्थिति में न हो । जैसाकि पहले ही विचार किया गया है, प्रत्यर्थी को उसकी उपेक्षा द्वारा मृत्यु कारित किए जाने का दोषी पाया गया है, उच्च न्यायालय ने मृतका के वारिसों को कोई भी प्रतिकर अधिनिर्णीत किए बिना, प्रत्यर्थी के कारावास को कम करके 10 दिन नियत करने में न्यायोचित नहीं किया है । न्यायालय का यह मत है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, उच्च न्यायालय के

आदेश को केवल इस उपांतरण के साथ ही कायम रखा जा सकता है कि अभियुक्त 6 मास के भीतर मृतका के वारिसों को 2,00,000/- रुपए के प्रतिकर का संदाय करेगा । इस संदाय का व्यतिक्रम किए जाने पर वह 6 मास का कठोर कारावास भोगेगा । 2,00,000/- रुपए का यह प्रतिकर अभियुक्त के सीमित वित्तीय साधनों को ध्यान में रखकर ही नियत किया गया है किंतु उक्त प्रतिकर मृतका के वारिसों के लिए उचित रकम नहीं है । ऐसी स्थिति में, अभियुक्त द्वारा संदाय किए जाने वाले प्रतिकर के अतिरिक्त, राज्य से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357क के अधीन प्रतिकर का संदाय करे । (पैरा 8 और 10)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2012] 2012 क्रिमिनल अपील सं. 420 :
सुरेश बनाम **हरियाणा राज्य** । 8

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2015 की दांडिक अपील सं. 290.

2007 की दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 72 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर की जबलपुर न्यायपीठ के तारीख 6 नवंबर, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री सी. डी. सिंह और सुश्री साक्षी कक्कड़

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री प्रगति नीखरा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल ने दिया ।

न्या. गोयल – इजाजत प्रदान की जाती है ।

2. यह अपील 2007 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 72 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर द्वारा पारित किए गए तारीख 6 नवंबर, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 304क के अधीन प्रत्यर्थी को अधिनिर्णीत कारावास को कम करके एक वर्ष का कठोर कारावास किया गया और धारा 337 के अधीन अधिनिर्णीत तीन मास के कारावास को कम करके 10 दिन का कठोर कारावास किया गया जो कि अपीलार्थी द्वारा पहले से भोगे गए कारावास जितना था ।

3. तारीख 22 नवंबर, 1997 को मृतका सुशीला बाई पत्नी राम चरन (अभि. सा. 4) अपने पति के साथ ग्राम राघो गढ़ से वापस ग्राम कुधाईढेर स्थित अपने घर आ रही थी । प्रत्यर्थी/अभियुक्त ने बिजली के खम्भे से अपने खेत तक तार खींचा हुआ था जो अंधेरे में दिखाई नहीं दे रहा था । राम चरन तार से टकरा गया और अचेत हो गया । तार हटाने की इसी प्रक्रिया में मृतका सुशीला बाई को बिजली का झटका लगा । मृतका के भाई मिश्री लाल (अभि. सा. 5) और कल्लू (अभि. सा. 1) सूचना प्राप्त होने पर गोवर्धन (अभि. सा. 3) और सोमलाल (अभि. सा. 2) के साथ घटनास्थल पर पहुंचे । वहां पहुंच कर यह पाया गया कि सुशीला बाई की मृत्यु हो गई है और राम चरन क्षतिग्रस्त है किंतु जीवित है । राम चरन को अस्पताल ले जाया गया । मृतका के शव का शवपरीक्षण किया गया और अन्वेषण के पश्चात् प्रत्यर्थी/अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 304क/337 के अधीन विचारण के लिए भेज दिया गया ।

4. अभियोजन पक्ष ने डा. एन. के. शर्मा (अभि. सा. 6) की परीक्षा कराई जिन्होंने यह स्पष्ट किया कि राम चरन को बिजली (विद्युत धारा) से क्षतियां पहुंची हैं और यह कि सुशीला बाई की मृत्यु बिजली से झटका लगने के कारण हुई है । कल्लू (अभि. सा. 1) तथा राम चरन (अभि. सा. 4) ने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि यह तार बिजली के खम्भे से खेत तक मेहताब द्वारा खींचा गया था जिस पर विद्युत धारा से बचने के लिए कोई भी कुचालक नहीं लगा हुआ था और इसी के परिणामस्वरूप सुशीला बाई की मृत्यु हो गई । यह कृत्य स्पष्ट रूप से अभिकथित अपराध की कोटि में आता है । इस साक्ष्य की सम्पुष्टि अन्य साक्षियों द्वारा भी होती है । तदनुसार, विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी/अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 304क और 337 के अधीन दोषसिद्ध किया तथा उसे दंड संहिता की धारा 304क के अधीन एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 500/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर एक मास का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने तथा धारा 337 के अधीन तीन मास का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया । सेशन न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखे जाने पर, प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन प्रस्तुत किया । प्रत्यर्थी ने अपनी दोषसिद्धि को चुनौती नहीं दी किंतु उसने कारावास के दंड में कमी किए जाने की ईप्सा की । उक्त प्रार्थना स्वीकार की गई और दंड की अवधि को घटाकर पहले से भोगे गए कारावास जितना कर दिया गया ।

5. उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर मध्य प्रदेश राज्य ने यह अपील प्रस्तुत की है ।

6. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना है ।

7. राज्य के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया है कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी ने अपने खेत में एक ट्रांसफार्मर लगाया था और उसने बिजली के तार नंगे छोड़ दिए जो एक उपेक्षापूर्ण कार्य था । मृतका सुशीला बाई की उक्त नंगे तार के कारण मृत्यु हुई जिसमें अत्यधिक वोल्टेज वाली विद्युत धारा बह रही थी और वह तार अंधेरे में दिखाई नहीं दे रहा था । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य द्वारा अपराध पूर्णतया साबित किए जाने पर, उच्च न्यायालय ने दंडादेश में कमी करके उसे 10 दिन नियत कर दिया जो कि न तो न्यायोचित था और न ही निष्पक्ष था । यदि कारावास के दंडादेश के मुद्दे पर रियायती दृष्टिकोण अपनाया जाता तब भी उच्च न्यायालय को जुर्माने में वृद्धि करनी चाहिए थी और दंडादेश में कमी के लिए बनाई गई शर्त के रूप में युक्तियुक्त प्रतिकर अधिनिर्णीत करना चाहिए था ।

8. हमें इस दलील में बल दिखाई देता है । यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह ऐसे दोषसिद्ध व्यक्ति को उचित दंडादेश अधिनिर्णीत करे जिसके विरुद्ध आरोप साबित किया गया है । जब प्रत्येक न्यूनकारी या गुरुतरकारी परिस्थितियों को सम्यक् रूप से महत्व दिया जाए, तब बिना सोचे-समझे कारावास कम करके पहले से भोगे गए कारावास की अवधि जितना कर देना उचित नहीं कहा जा सकता । दंडादेश केवल अभियुक्त के लिए ही उचित नहीं होना चाहिए अपितु आहत और समाज के लिए भी सही होना चाहिए । न्यायालय का यह भी कर्तव्य है कि वह आहत का पुनर्वास किए जाने के पहलू पर भी सम्यक् रूप से विचार करे । दुर्भाग्यवश, ये संघटक आक्षेपित निर्णय में नहीं हैं । 10 दिन का दंडादेश अधिरोपित करने के लिए कोई भी ठोस कारण समनुदेशित नहीं किया गया है जबकि एक निर्दोष व्यक्ति की मृत्यु हुई है । अयुक्तियुक्त प्रतिकर अधिनिर्णीत किए जाने पर भी विचार नहीं किया गया है । दंडादेश और अभियुक्त द्वारा संदाय किए गए जुर्माने/प्रतिकर के अतिरिक्त, न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357क के अधीन ऐसी स्थिति में राज्य द्वारा प्रतिकर दिए जाने का निदेश करना चाहिए जब अभियुक्त उचित प्रतिकर का संदाय करने की

स्थिति में न हो जैसाकि इस न्यायालय द्वारा **सुरेश** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में अधिकथित किया गया है । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

> "14. हमारा यह मत है कि न्यायालय का यह कर्तव्य है कि दंडनीय अपराध का संज्ञान लेने पर यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अपराध कारित किए जाने को दर्शाने के लिए तर्कसम्मत सामग्री है कि या नहीं, आहत शनाख्त किए जाने योग्य है या नहीं और आहत को तत्काल वित्तीय अनुतोष की आवश्यकता है या नहीं । आवेदन फाइल किए जाने के पश्चात् न्यायालय का समाधान होने पर या न्यायालय को स्वयमेव अंतरिम प्रतिकर प्रदान किए जाने का निदेश देना चाहिए जो अंतिम रूप से विनिश्चित किए गए प्रतिकर के अध्यधीन होगा । आपराधिक मामले के प्रत्येक प्रक्रम पर न्यायालय का ऐसा कर्तव्य बना रहेगा जहां प्रतिकर दिया जाना चाहिए और वास्तव में नहीं दिया गया हो, इस संबंध में आहत ने चाहे आवेदन किया हो या नहीं । अंतिम सुनवाई के प्रक्रम पर न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह उपबंधों पर विचार करे और इस निष्कर्ष को अभिलिखित करे कि प्रतिकर दिए जाने का मामला बनता है या नहीं और यदि मामला बनता है तब यह विनिश्चित किया जाना चाहिए कि प्रतिकर का हकदार कौन है और उसे कितना प्रतिकर दिया जाना चाहिए । ऐसे प्रतिकर का अधिनिर्णय अंतरिम हो सकता है । किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से सुसंगत अन्य संघटकों के अतिरिक्त, अपराध की गंभीरता और आहत की आवश्यकता को मार्गदर्शक संघटक के रूप में ध्यान में रखना चाहिए । हमारा यह भी मत है कि प्रतिकर के मामले में वृद्धि किए जाने पर विचार किया जाना आवश्यक है और केरल राज्य द्वारा बनाई गई योजना में अधिसूचित मानदंड अपनाए जाने पर भी विचार किया जाना चाहिए जब तक कि अन्य राज्य या संघ राज्यक्षेत्र द्वारा अधिनिर्णीत मानदंड उससे अधिक न हो । आंध्र प्रदेश राज्य, मध्य प्रदेश राज्य, मेघालय राज्य और तेलंगाना राज्य को निदेश दिया जाता है कि वे इस आदेश की एक प्रति प्राप्त होने के एक मास के भीतर अपनी योजनाओं को अधिसूचित करें । हम यह भी निदेश देते हैं कि इस निर्णय की एक प्रति राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी को अग्रप्रेषित की जाए ताकि देश के सभी न्यायिक अधिकारी आवश्यक

---

[1] 2012 की क्रिमिनल अपील सं. 420, दिनांक 28 नवम्बर, 2014 को विनिश्चित ।

प्रशिक्षण में भाग ले सकें और उपबंध प्रवृत्त और अर्थपूर्ण बन सके ।"

9. राज्य के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई सूचना के अनुसार, अभियुक्त मेहताब के तीन पुत्र हैं और उसके पास 10-12 बीघा भूमि है और उसकी वार्षिक आय 35 से 40 हजार रुपए है । इसी प्रकार उसके पुत्रों की वार्षिक आय 25 से 30 हजार रुपए है । सेशन न्यायालय ने वर्ष 1997 में मृतका की मृत्यु के समय उसकी आयु 30 वर्ष उल्लिखित की है । राज्य के विद्वान् काउंसेल द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार, मृतका की मृत्यु के पश्चात् उसके परिवार में उसका पति राम चरन, दो पुत्र अर्थात् बुन्देल सिंह और सूरज लाल तथा दो पुत्रियां अर्थात् दुर्गेशबाई और बबीताबाई थे ।

10. जैसाकि पहले ही विचार किया गया है, प्रत्यर्थी को उसकी उपेक्षा द्वारा मृत्यु कारित किए जाने का दोषी पाया गया है, उच्च न्यायालय ने मृतका के वारिसों को कोई भी प्रतिकर अधिनिर्णीत किए बिना, प्रत्यर्थी के कारावास को कम करके 10 दिन नियत करने में न्यायोचित नहीं किया है । हमारा यह मत है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, उच्च न्यायालय के आदेश को केवल इस उपांतरण के साथ ही कायम रखा जा सकता है कि अभियुक्त 6 मास के भीतर मृतका के वारिसों को 2,00,000/- रुपए के प्रतिकर का संदाय करेगा । इस संदाय का व्यतिक्रम किए जाने पर वह 6 मास का कठोर कारावास भोगेगा । 2,00,000/- रुपए का यह प्रतिकर अभियुक्त के सीमित वित्तीय साधनों को ध्यान में रखकर ही नियत किया गया है किंतु उक्त प्रतिकर मृतका के वारिसों के लिए उचित रकम नहीं है । ऐसी स्थिति में, अभियुक्त द्वारा संदाय किए जाने वाले प्रतिकर के अतिरिक्त, राज्य से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357क के अधीन प्रतिकर का संदाय करे । **सुरेश** (उपरोक्त) वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार केरल राज्य द्वारा अपनाई गई योजना सभी राज्यों को लागू होगी और उक्त योजना के अंतर्गत मृत्यु के मामले में 5,00,000/- रुपए तक प्रतिकर दिए जाने का उपबंध किया गया है । वर्तमान मामले में, न्याय के हित में यह समुचित होगा कि धारा 357क के अधीन 3,00,000/- रुपए का अंतरिम प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जाए जो कि मध्य प्रदेश राज्य द्वारा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, गूना के माध्यम से उपलब्ध कोष से या उपलब्ध कराए गए कोष से संदाय किया जाएगा । यदि अभियुक्त ऊपर अधिनिर्णीत प्रतिकर का संदाय नहीं करता है, तब मध्य प्रदेश राज्य अभियुक्त को दिए गए समय की समाप्ति के पश्चात् 3 मास के भीतर

5,00,000/- रुपए के प्रतिकर की सम्पूर्ण रकम का संदाय करेगा ।

11. तद्नुसार उपरोक्त सीमा तक यह अपील मंजूर की जाती है ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

अस./पा.

[2015] 3 उम. नि. प. 44

घुसाभाई रायसंगभाई चौरसिया

बनाम

गुजरात राज्य

18 फरवरी, 2015

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति दीपक मिश्र

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 498क और 306 – क्रूरता और आत्महत्या का दुष्प्रेरण – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से यह साबित होने पर कि अभियुक्त विवाहेत्तर संबंध रखता था, महिला को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की क्रूरता की श्रेणी में नहीं आता, अतः, धारा 498क का स्पष्टीकरण लागू नहीं होता, इसलिए अभियुक्त को धारा 498क और 306 के अधीन दोषसिद्ध नहीं ठहराया जा सकता ।

अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि मृतका बिनिबेन और राकेश का विवाह घटना की तारीख अर्थात् 4 मार्च, 2004 के लगभग 8 वर्ष पूर्व हुआ था । जैसाकि अभियोजन पक्ष द्वारा पक्षकथन किया गया है, राकेश अर्थात् मृतका के पति के अनैतिक संबंध विवाह विच्छिन्न स्त्री अर्थात् जासुबेन के साथ थे । उक्त स्थिति के बावजूद इस विवाह बंधन से दो बच्चों ने जन्म लिया किंतु पति और पत्नी के बीच सौहार्द संबंध नहीं रह सके और परिवार में सौम्य वातावरण भी नहीं बन सका । जब पहला बच्चा तीन मास का था, मृतका को उसके पति द्वारा घर से बाहर कर दिया गया था और वह अपने मायके चली गई थी और कुछ समय के लिए वहां रही । बुजुर्गों और नातेदारों द्वारा हस्तक्षेप किए जाने पर एक समझौता कराया गया और उसके पश्चात् मृतका अपने वैवाहिक गृह पर रहने के लिए आ गई । अभियोजन का यह भी पक्षकथन है कि पति अपने विवाहेत्तर प्रेम

प्रसंग में अधिक रुचि लेता था और इसके परिणामस्वरूप वैवाहिक संबंधों में और अधिक विकार आ गया । जैसाकि अभिकथन किया गया है, मृतका के ससुराल वाले मृतका द्वारा कमाई गई आय छीन लिया करते थे । एक समय ऐसा भी आया जब मृतका को मकान की छत पर रहने के लिए विवश किया गया और उसने वहीं पर तारीख 4 मार्च, 2004 को आत्महत्या कर ली । अभियोजन पक्षकथन से यह तथ्य भी सामने आता है कि मृतका के शव का दाह संस्कार उसके माता-पिता को सूचना दिए बिना ही कर दिया गया था और मृत्यु के इस तथ्य की रिपोर्ट 14 मार्च, 2004 को मृतका के श्वसुर द्वारा की गई थी और मृतका की माता को उसकी मृत्यु की जानकारी तारीख 17 मार्च, 2004 को मिली थी और इसके पश्चात् मामला पुलिस थाना, जामनगर में दर्ज कराया गया । दांडिक विधि का अनुपालन करने के पश्चात्, अन्वेषण अभिक्रम ने अन्वेषण आरंभ किया और 25 साक्षियों के कथन अभिलिखित किए और अंत में सक्षम न्यायालय के समक्ष दंड संहिता की धारा 498क, 306 और धारा 114 के साथ पठित धारा 201 के अधीन आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया । आरोप पत्र प्रस्तुत किए जाने के पश्चात्, विद्वान् मजिस्ट्रेट ने इस मामले को सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने प्रत्यक्ष तथा दस्तावेजी साक्ष्य का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि 4 अभियुक्त अर्थात् श्वसुर, पति, सास और वह स्त्री (अभियुक्त-4) जिसके साथ पति के अनैतिक संबंध थे अपराधों के दोषी हैं । तथापि, विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने पति के बड़े भाई और उसकी पत्नी को साक्ष्य के अभाव के कारण दोषमुक्त कर दिया । उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन करते हुए राज्य द्वारा प्रस्तुत की गई अपीलों में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया और परिणामस्वरूप सभी अपीलें खारिज कर दी गईं । अभियुक्त व्यक्तियों ने उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् विचारण न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने पर यह स्पष्ट होता है कि निचले दोनों न्यायालयों ने यह पाया है कि क्रूरता, जैसाकि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिकथन किया गया है, दंड संहिता की धारा 498क के अधीन सिद्ध होती है जिसके परिणामस्वरूप मृतका ने आत्महत्या की है । निकाले गए निष्कर्षों और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि दहेज की कोई भी मांग नहीं की गई थी । विद्वान् विचारण न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय ने इस आधार पर कार्यवाही की है कि दंड संहिता की धारा 498क के प्रथम भाग के अनुसार

क्रूरता की गई थी । संवीक्षा किए जाने के लिए एकमात्र मुद्दा यह है कि क्या पति या उसके नातेदारों द्वारा ऐसी क्रूरता कारित की गई थी जिसके कारण मृतका ने आत्महत्या की । अभियुक्तों का पक्षकथन, जैसाकि इसमें इसके ऊपर उपदर्शित किया गया है, यह है कि पति ने मृतका से पहले ही विवाह-विच्छेद कर लिया था और वह मकान की छत पर रह रही थी । अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का समुचित रूप से मूल्यांकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अभियोजन पक्ष ने विवाह-विच्छेद साबित करने के लिए अभिलेख पर तीन दस्तावेज प्रदर्श 65 से 67 प्रस्तुत किए हैं । मृतका की बहिन मीराबेन देवसिंहभाई ने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने मृतका की मृत्यु के पूर्व टेलीफोन पर उससे बात की थी और मृतका ने उसे यह बताया था कि उसके पति और उसके बीच विवाह-विच्छेद हो गया है और यह कि मृतका मकान की छत पर रहती है और होली के त्यौहार के पश्चात् वह अपने मायके चली जाएगी । इस समागम पर, यह उल्लेख करना उचित होगा कि उक्त वर्ष में होली का त्यौहार 6 मार्च, 2004 को पड़ा था और यह घटना 4 मार्च, 2004 को घटित हुई थी । यह भी विचारणीय है कि मृतका की बहिन ने विवाह-विच्छेद के संबंध में बताया है । दस्तावेज से यह दर्शित होता है कि रीति-रिवाज के अनुसार विवाह-विच्छेद हुआ था । अभिलेख पर ऐसी सामग्री उपलब्ध है जिससे यह दर्शित होता है कि मृतका मकान की छत पर रहती थी । इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में इस पर विचार किया जाना चाहिए कि मृतका के साथ क्रूरता की गई है जिसके कारण उसे आत्महत्या करनी पड़ी । निर्णय विधि से यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 498क के प्रथम भाग का, जो कि क्रूरता को निर्दिष्ट करता है, दहेज की मांग से कोई लेना-देना नहीं है । वर्तमान मामले में, वास्तव में, दहेज की कोई भी मांग नहीं की गई है । यदि साक्ष्य का समुचित रूप से मूल्यांकन किया जाए तो यह पता चलता है कि मृतका के साथ अपने पति के अवैध संबंधों के कारण पीड़ा और कष्ट भोग रही थी । अब इस पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या ऐसी स्थिति दंड संहिता की धारा 498क के प्रथम भाग में उल्लिखित "क्रूरता" की कोटि में आएगी । मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए यह दिखाई पड़ता है कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश और उच्च न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद के तथ्य पर विश्वास नहीं किया गया है । किंतु वास्तविकता यह है कि पति और पत्नी एक ही घर में अलग-अलग रहने लगे थे और मृतका ने अपनी बहिन को बताया था कि पति-पत्नी का संबंध समाप्त हो गया है और वह होली के त्यौहार के पश्चात् अपने मायके चली जाएगी । यह बात सत्य है कि अवैध संबंध के कुछ साक्ष्य थे और यदि यह साबित हो जाए तब भी न्यायालय की यह सुविचारित राय होगी कि क्रूरता, जैसाकि दंड संहिता की धारा 498क

के प्रथम भाग के अधीन परिकल्पित है, गठित नहीं होती है । यह अभिनिर्धारित करना कठिन होगा कि मानसिक क्रूरता उस कोटि की थी कि पत्नी को आत्महत्या करनी पड़ी । मात्र विवाहेत्तर संबंध, भले ही साबित हो जाएं, अवैध और अनैतिक माने जाएंगे जैसाकि पिनाकिन महिपात्रे रावल वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है किंतु इसका भिन्न अर्थ भी लगाया जा सकता है यदि अभियोजन पक्ष अभिलेख पर यह साबित करने के लिए कुछ साक्ष्य प्रस्तुत करे कि अभियुक्त ने मृतका के साथ ऐसा व्यवहार किया है कि उसे आत्महत्या करनी पड़ी । मामले में, अभियुक्त के अपीलार्थी सं. 4 के साथ अवैध संबंध हो सकते हैं किंतु अभिलेख पर ऐसा कोई अन्य स्वीकार्य साक्ष्य न होने पर जिससे उच्च कोटि की मानसिक क्रूरता सिद्ध की जा सके, दंड संहिता की धारा 498क का वह स्पष्टीकरण लागू नहीं होगा जिसके अंतर्गत क्रूरता के कारण महिला द्वारा आत्महत्या किए जाने का उल्लेख है । अब अन्य अभियुक्तों अर्थात् अपीलार्थी सं. 1, 3 और 4 के अपराध में आलिप्त होने के संबंध में न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि शारीरिक यातना दिए जाने का कोई भी अभिकथन नहीं किया गया है । क्रूरता के संबंध में अपीलार्थियों के विरुद्ध अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया साक्ष्य पूर्णतया बनावटी है न कि तर्कसम्मत । यह अभिकथन किया गया है कि मृतका की सास उसकी कमाई हुई रकम छीन लिया करती थी । वास्तव में उक्त तथ्य भी सिद्ध नहीं किया गया है । जहां तक अपीलार्थी सं. 4 अर्थात् जासुबेन का संबंध है, केवल एक अभिकथन किया गया है कि एक सार्वजनिक स्थान अर्थात् मेले में जासुबेन ने मृतका को धमकी दी थी कि मृतका का पति मृतका को तलाक दे देगा । उक्त साक्ष्य के आधार पर दंड संहिता की धारा 306 और 498क के अधीन दोषसिद्धि कायम नहीं रखी जा सकती । चूंकि न्यायालय यह अभिनिर्धारित कर रहा है कि अभियुक्त-अपीलार्थी दंड संहिता की धारा 306 और 498क के अधीन अपराध के दोषी नहीं हैं, इसलिए दंड संहिता की धारा 201 के अधीन भी दोषसिद्ध कायम रखे जाने योग्य नहीं है । (पैरा 12, 13, 15, 18, 20 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2013] (2013) 10 एस. सी. सी. 48 :
पिनाकिन महिपात्रे रावल बनाम **गुजरात राज्य** ; 18

[2013] (2013) 7 एस. सी. सी. 108 :
गुरनायब सिंह बनाम **पंजाब राज्य** ; 17

[2002] (2002) 5 एस. सी. सी. 177 :
गिरधर शंकर तवाडे बनाम **महाराष्ट्र राज्य** । 16

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 262.

2005 की दांडिक अपील सं. 444 में गुजरात उच्च न्यायालय के तारीख 9 जुलाई, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री हरेश रायचूरा, (सुश्री) सरोज रायचूरा, कल्प रायचूरा और रजत वत्स

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अनुराग अहलुवालिया, (सुश्री) हेमन्तिकावाही और (सुश्री) पूजा सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्र ने दिया ।

न्या. मिश्र – वर्तमान अपील विशेष इजाजत द्वारा 2005 की दांडिक अपील सं. 444 में गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है जिसके अनुसार उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, जामनगर द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धि के उस आदेश की पुष्टि की है जिसके अनुसार विद्वान् न्यायाधीश, जामनगर ने अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 498क, 306, 201 और 114 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी पाया था और घुसाभाई रायसिंहभाई चौरसिया (अपीलार्थी सं. 1) को 5 वर्ष का कारावास भोगने, राकेश घुसाभाई चौरसिया (अपीलार्थी सं. 2) को 7 वर्ष का कारावास भोगने और 500/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त कारावास भोगने और दंड संहिता की धारा 306 के अधीन अन्य अभियुक्तों अर्थात् बाकूबेन पत्नी घुसाभाई चौरसिया और जासुबेन **उर्फ** गादूबेन राकेशभाई (इस मामले में के अपीलार्थी सं. 3 और 4) को 3 वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 250/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त कारावास भोगने का दंडादेश दिया । इसके अतिरिक्त दंड संहिता की धारा 498क और 201 के अधीन दंडादेश अलग-अलग अधिरोपित किए गए किंतु सभी दंडादेश साथ-साथ चलाए जाने का निदेश दिया गया । यह उल्लेखनीय है कि अपीलार्थियों का विचारण, अन्य दो अभियुक्तों अर्थात् संगीताबेन पत्नी विजयभाई और विजय घुसाभाई चौरसिया जिन्हें विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था, के विचारण के साथ

किया गया । यह उल्लेख करना भी उचित होगा कि राज्य ने भी दो दांडिक अपीलें प्रस्तुत की हैं जिनमें से एक दंडादेश में अभिवृद्धि किए जाने और दूसरी अन्य दो अभियुक्तों की दोषमुक्ति को चुनौती देने के लिए है और ये दोनों ही अपीलें अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपील के साथ एक ही निर्णय द्वारा खारिज कर दी गईं ।

2. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि मृतका बिनिबेन और राकेश का विवाह घटना की तारीख अर्थात् 4 मार्च, 2004 के लगभग 8 वर्ष पूर्व हुआ था । जैसाकि अभियोजन पक्ष द्वारा पक्षकथन किया गया है, राकेश अर्थात् मृतका के पति के अनैतिक संबंध विवाह विच्छिन्न स्त्री अर्थात् जासुबेन के साथ थे । उक्त स्थिति के बावजूद इस विवाह बंधन से दो बच्चों ने जन्म लिया किंतु पति और पत्नी के बीच सौहार्द संबंध नहीं रह सके और परिवार में सौम्य वातावरण भी नहीं बन सका । जब पहला बच्चा तीन मास का था, मृतका को उसके पति द्वारा घर से बाहर कर दिया गया था और वह अपने मायके चली गई थी और कुछ समय के लिए वहां रही । बुजुर्गों और नातेदारों द्वारा हस्तक्षेप किए जाने पर एक समझौता कराया गया और उसके पश्चात् मृतका अपने वैवाहिक गृह पर रहने के लिए आ गई । अभियोजन का यह भी पक्षकथन है कि पति अपने विवाहेत्तर प्रेम प्रसंग में अधिक रुचि लेता था और इसके परिणामस्वरूप वैवाहिक संबंधों में और अधिक विकार आ गया । जैसाकि अभिकथन किया गया है, मृतका के ससुराल वाले मृतका द्वारा कमाई गई आय छीन लिया करते थे । एक समय ऐसा भी आया जब मृतका को मकान की छत पर रहने के लिए विवश किया गया और उसने वहीं पर तारीख 4 मार्च, 2004 को आत्महत्या कर ली ।

3. अभियोजन पक्षकथन से यह तथ्य भी सामने आता है कि मृतका के शव का दाह संस्कार उसके माता-पिता को सूचना दिए बिना ही कर दिया गया था और मृत्यु के इस तथ्य की रिपोर्ट 14 मार्च, 2004 को मृतका के श्वसुर द्वारा की गई थी और मृतका की माता को उसकी मृत्यु की जानकारी तारीख 17 मार्च, 2004 को मिली थी और इसके पश्चात् मामला पुलिस थाना, जामनगर में दर्ज कराया गया । दांडिक विधि का अनुपालन करने के पश्चात्, अन्वेषण अभिक्रम ने अन्वेषण आरंभ किया और 25 साक्षियों के कथन अभिलिखित किए और अंत में सक्षम न्यायालय के समक्ष दंड संहिता की धारा 498क, 306 और धारा 114 के साथ पठित धारा 201 के अधीन आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया । आरोप पत्र प्रस्तुत किए जाने के पश्चात्, विद्वान् मजिस्ट्रेट ने इस मामले को सेशन न्यायालय

के सुपुर्द कर दिया ।

4. अभियुक्तों ने अपने दोषी होने से इनकार किया और विचारण किए जाने की मांग की ।

5. विचारण के दौरान, अभियोजन पक्ष ने अभियुक्तों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने के लिए 25 साक्षियों की परीक्षा कराई और कतिपय दस्तावेज प्रस्तुत किए ।

6. विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने प्रत्यक्ष तथा दस्तावेजी साक्ष्य का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि 4 अभियुक्त अर्थात् श्वसुर (अभियुक्त-1), पति (अभियुक्त-2), सास (अभियुक्त-3) और वह स्त्री (अभियुक्त-4) जिसके साथ पति के अनैतिक संबंध थे अपराधों के दोषी हैं । तथापि, विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने पति के बड़े भाई और उसकी पत्नी को साक्ष्य के अभाव के कारण दोषमुक्त कर दिया ।

7. दोषसिद्धि के उपर्युक्त निर्णय और दंडादेश से व्यथित होकर, अभियुक्तों ने 2005 की दांडिक अपील सं. 444 फाइल की । जैसाकि पहले ही कथन किया गया है, राज्य ने दंडादेश में अभिवृद्धि किए जाने के लिए 2005 की दांडिक अपील सं. 2408 प्रस्तुत की तथा दो अभियुक्तों की दोषमुक्ति के निर्णय को चुनौती देते हुए 2005 की दांडिक अपील सं. 2410 प्रस्तुत की ।

8. उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन करते हुए राज्य द्वारा प्रस्तुत की गई अपीलों में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया और परिणामस्वरूप सभी अपीलें खारिज कर दी गईं ।

9. यह उल्लेखनीय है, अभियोजन पक्ष ने जिन महत्वपूर्ण साक्षियों का अवलंब लिया है वे इस प्रकार हैं – दक्षाबेन शांतिलाल शाह (अभि. सा. 9) जो कि विकास विद्यालय (वाधवन) में एक समाज सेविका है, मीराबेन देवसिंहभाई (अभि. सा. 21) जो कि मृतका की बहिन है, कन्याभाई देवसिंहभाई (अभि. सा. 19) जो कि मृतका का भाई है और नातूभाई हीराभाई (अभि. सा. 17) जो ग्राम राजसीतापुर का सरपंच है ।

10. अभियुक्तों ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभिलिखित अपने कथनों में यह अभिवाक् किया है कि मृतका और उसके पति अर्थात् अभियुक्त सं. 2 के बीच विवाह-विच्छेद हो गया था और मृतका अपने मकान की छत पर रहती थी ; मृतका ने विषपान करके

आत्महत्या की ; और अभियुक्तों की इसमें कोई भूमिका नहीं है । प्रतिरक्षा पक्ष ने अपने अभिवाक् के समर्थन में एक साक्षी की परीक्षा कराई है और दो दस्तावेज प्रदर्शित किए हैं ।

11. हमने अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री हरीश रायचूरा और राज्य के विद्वान् काउंसेल श्री अनुराग अहलुवालिया को सुना है ।

12. विद्वान् विचारण न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने पर यह स्पष्ट होता है कि निचले दोनों न्यायालयों ने यह पाया है कि क्रूरता, जैसाकि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिकथन किया गया है, दंड संहिता की धारा 498क के अधीन सिद्ध होती है जिसके परिणामस्वरूप मृतका ने आत्महत्या की है । निकाले गए निष्कर्षों और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि दहेज की कोई भी मांग नहीं की गई थी । विद्वान् विचारण न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय ने इस आधार पर कार्यवाही की है कि दंड संहिता की धारा 498क के प्रथम भाग के अनुसार क्रूरता की गई थी ।

13. संवीक्षा किए जाने के लिए एकमात्र मुद्दा यह है कि क्या पति या उसके नातेदारों द्वारा ऐसी क्रूरता कारित की गई थी जिसके कारण मृतका ने आत्महत्या की । अभियुक्तों का पक्षकथन, जैसाकि इसमें इसके ऊपर उपदर्शित किया गया है, यह है कि पति ने मृतका से पहले ही विवाह-विच्छेद कर लिया था और वह मकान की छत पर रह रही थी । अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का समुचित रूप से मूल्यांकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अभियोजन पक्ष ने विवाह-विच्छेद साबित करने के लिए अभिलेख पर तीन दस्तावेज प्रदर्श 65 से 67 प्रस्तुत किए हैं । मृतका की बहिन मीराबेन देवसिंहभाई (अभि. सा. 21) ने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने मृतका की मृत्यु के पूर्व टेलीफोन पर उससे बात की थी और मृतका ने उसे यह बताया था कि उसके पति और उसके बीच विवाह-विच्छेद हो गया है और यह कि मृतका मकान की छत पर रहती है और होली के त्यौहार के पश्चात् वह अपने मायके चली जाएगी ।

14. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों (प्रदर्श 67 से 69) पर विद्वान् विचारण न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय द्वारा इस आधार पर विश्वास नहीं किया गया है कि इनमें कुछ ऐसे फर्क हैं जो अस्वीकार्य हैं ।

15. इस समागम पर, यह उल्लेख करना उचित होगा कि उक्त वर्ष में होली का त्यौहार 6 मार्च, 2004 को पड़ा था और यह घटना 4 मार्च, 2004 को घटित हुई थी । यह भी विचारणीय है कि मृतका की बहिन ने

विवाह-विच्छेद के संबंध में बताया है । दस्तावेज से यह दर्शित होता है कि रीति-रिवाज के अनुसार विवाह-विच्छेद हुआ था । अभिलेख पर ऐसी सामग्री उपलब्ध है जिससे यह दर्शित होता है कि मृतका मकान की छत पर रहती थी । इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में इस पर विचार किया जाना चाहिए कि मृतका के साथ क्रूरता की गई है जिसके कारण उसे आत्महत्या करनी पड़ी । इस संबंध में, हम दंड संहिता की धारा 498क को निर्दिष्ट करना उचित समझते हैं जो निम्नप्रकार है :–

> "498. किसी स्त्री के पति या पति के नातेदार द्वारा उसके प्रति क्रूरता करना – जो कोई, किसी स्त्री का पति या पति का नातेदार होते हुए, ऐसी स्त्री के प्रति क्रूरता करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।
>
> स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, 'क्रूरता' से निम्नलिखित अभिप्रेत है –
>
> (क) जानबूझकर किया गया कोई आचरण जो ऐसी प्रकृति का है जिससे उस स्त्री को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की या उस स्त्री के जीवन, अंग या स्वास्थ्य को (जो चाहे मानसिक हो या शारीरिक) गंभीर क्षति या खतरा कारित करने के लिए उसे करने की संभावना है ; या
>
> (ख) किसी स्त्री को तंग करना, जहां उसे या उससे संबंधित किसी व्यक्ति को किसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के लिए किसी विधिविरुद्ध मांग को पूरी करने के लिए प्रपीड़ित करने की दृष्टि से या उसके अथवा उससे संबंधित किसी व्यक्ति के ऐसे मांग पूरी करने में असफल रहने के कारण इस प्रकार तंग किया जा रहा है ।"

16. इस न्यायालय ने **गिरधर शंकर तवाडे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में दंड संहिता की धारा 498क की व्यापकता पर विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया है :–

> "कानून उपबंध का मूल तात्पर्य क्रूरता से बचना है जिसे विशिष्ट कानूनी अर्थ के साथ परिभाषित किया गया है जैसाकि इसमें इसके

---

[1] (2002) 5 एस. सी. सी. 177.

पूर्व उल्लेख किया गया है । 'क्रूरता' शब्द के अर्थ को समझने के लिए दो विशेष उदाहरण दिए गए हैं जैसाकि विधान-मंडल द्वारा व्यक्त किया गया है और स्पष्टीकरण (क) के अंतर्गत 3 विशिष्ट परिस्थितियां आती हैं अर्थात् (i) किसी स्त्री को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करना, (ii) उसे गंभीर क्षति कारित करना, या (iii) उस स्त्री के जीवन, अंग या स्वास्थ्य को मानसिक या शारीरिक दोनों प्रकार से यातना देना ; स्पष्टीकरण (ख) के अंतर्गत शारीरिक क्षति का उल्लेख नहीं है किंतु विधान-मंडल ने केवल मानसिक पीड़ा को सम्मिलित करना उचित समझा है जिससे यह बात स्पष्ट है कि विधान-मंडल ने (मानसिक पीड़ा के संबंध में) जो आशय व्यक्त किया है वह उतना ही गंभीर है जितनी शारीरिक क्षति अर्थात् एक क्षति प्रकट है और दूसरी अप्रकट है किंतु कानून के उपबंधों के निबंधनों में दोनों ही गंभीर क्षतियां हैं क्योंकि दोनों क्षतियां दंड संहिता की धारा 498क के निबंधनों में 'क्रूरता' के अंतर्गत आती हैं ।"

17. **गुरनायब सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में उपर्युक्त उपबंध का विश्लेषण करते हुए यह मत व्यक्त किया गया है कि दंड संहिता की धारा 498क के स्पष्टीकरण के खंड (क) के अधीन क्रूरता का अर्थ "कोई भी जानबूझकर किया गया ऐसा कार्य जिससे कोई स्त्री आत्महत्या करने के लिए प्रेरित हो जाए" के रूप में लिया गया है । स्पष्टीकरण का खंड (ख) विधिविरुद्ध मांग से संबंधित है और खंड (क) के अंतर्गत मानसिक क्रूरता को रखा गया है ।

18. उपर्युक्त निर्णय विधि से यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 498क के प्रथम भाग का, जो कि क्रूरता को निर्दिष्ट करता है, दहेज की मांग से कोई लेना-देना नहीं है । वर्तमान मामले में, वास्तव में, दहेज की कोई भी मांग नहीं की गई है । यदि साक्ष्य का समुचित रूप से मूल्यांकन किया जाए तो यह पता चलता है कि मृतका अपीलार्थी सं. 4 के साथ अपने पति के अवैध संबंधों के कारण पीड़ा और कष्ट भोग रही थी । अब इस पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या ऐसी स्थिति दंड संहिता की धारा 498क के प्रथम भाग में उल्लिखित "क्रूरता" की कोटि में आएगी । इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **पिनाकिन महिपात्रे रावल** बनाम **गुजरात राज्य**[2] वाले मामले में विवाहेत्तर संबंधों के बारे में इस प्रकार

---

[1] (2013) 7 एस. सी. सी. 108.

[2] (2013) 10 एस. सी. सी. 48.

मत व्यक्त किया है :–

"वैवाहिक संबंध का अर्थ विधिक रूप से पति-पत्नी के वैवाहिक हित की रक्षा करना है जिसके अंतर्गत एक-दूसरे का साथी बनने, एक छत के नीचे निवास करने, लैंगिक संबंध रखने और अनन्य सुख भोगने, संतान की उत्पत्ति करने, उनका पालन-पोषण करने, घर में कामकाज करने, एक-दूसरे का समर्थन करने, प्रेम करने और पसंद करने आदि कार्य आते हैं । विवाहेत्तर संबंध को दंड संहिता के अधीन परिभाषित नहीं किया गया है । यद्यपि इस मामले में अभियोजन पक्ष के अनुसार इन्हीं संबंधों के परिणामस्वरूप मानसिक पीड़ा और क्रूरता कारित हुई है जो दंड संहिता की धारा 498क के अंतर्गत आती है और अभियोजन पक्ष का यह भी पक्षकथन है कि अभियुक्त-1 ने ही पत्नी को आत्महत्या करने के लिए दुष्प्रेरित किया था ।"

* * *

"हमारा यह मत है कि मात्र यह तथ्य कि विवाह के पश्चात् पति के अन्य स्त्री के साथ संबंध बन गए थे और वह अपनी वैवाहिक जिम्मेदारियों को पूरा करने में असफल रहा था, 'क्रूरता' की कोटि में नहीं आएगा किंतु यह ऐसा तथ्य है जो संभावित रूप से दंड संहिता की धारा 498क के स्पष्टीकरण के अधीन आत्महत्या के लिए प्रेरित करता है । निःसंदेह तंग किए जाने के लिए शारीरिक हमले की आवश्यकता नहीं है और मानसिक रूप से तंग किया जाना भी दंड संहिता की धारा 498क की परिधि में आएगा । निःसंदेह मानसिक क्रूरता प्रत्येक व्यक्ति पर अलग-अलग रूप से लागू होगी जो सहनशीलता की कोटि पर निर्भर करती है, कुछ व्यक्ति साहस से काम लेते हैं और कुछ शांत होकर पीड़ा सहते रहते हैं, कुछ व्यक्तियों के लिए क्रूरता असहनीय होती है और एक दुर्बल व्यक्ति अपनी आत्महत्या के लिए भी सोच सकता है । तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए हमारा यह निष्कर्ष है कि अभिकथित विवाहेत्तर संबंध ऐसी प्रकृति का नहीं है जिससे पत्नी को आत्महत्या करने की प्रेरणा मिले या यह कि अभियुक्त-1 ने ही ऐसी रीति में कृत्य किया है जो सामान्य परिस्थितियों में पत्नी को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करे ।"

न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है –

"धारा 306 आत्महत्या के दुष्प्रेरण को निर्दिष्ट करती है । इसके अधीन यह उपबंध किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करे,

तो जो कोई ऐसी आत्महत्या का दुष्प्रेरण करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि 10 वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा । आत्महत्या का कृत्य मानसिक और शारीरिक क्रूरता के कारण कारित होता है । धारा 306 के अधीन अपराध गठित करने के लिए अभियोजन पक्ष को यह सिद्ध करना चाहिए कि व्यक्ति ने आत्महत्या कारित की है और यह आत्महत्या अभियुक्त द्वारा दुष्प्रेरित की गई है । अभियोजन पक्ष को संदेह के परे यह सिद्ध करना चाहिए कि मृतक ने आत्महत्या कारित की है और अभियुक्त ने इस आत्महत्या को दुष्प्रेरित किया है । किंतु अभिकथित विवाहेत्तर संबंध के बारे में, जो यदि अवैध और अनैतिक साबित हो जाए, अभियोजन पक्ष द्वारा यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है कि अभियुक्त ने पत्नी को आत्महत्या करने के लिए प्रकोपित किया था, उद्दीप्त किया था या उत्प्रेरित किया था ।'

19. उपर्युक्त रूप में अभिनिर्धारित करने के पश्चात्, न्यायालय ने तथ्यों के आधार पर और विशेषकर आत्महत्या नोट को निर्दिष्ट करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि कोई भी व्यक्ति यह समझ सकता है कि मृतका अपने पति के प्रति अत्यधिक आधिकारिक थी और सदैव मानसिक तनाव में रहती थी कि एकदिन वह अपने पति को खो सकती है और इसके अतिरिक्त उसने पति को छोड़ ही दिया और तद्नुसार उसका यह कृत्य दंड संहिता की धारा 306 की परिधि के अंतर्गत नहीं आएगा ।

20. वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए यह दिखाई पड़ता है कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश और उच्च न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद के तथ्य पर विश्वास नहीं किया गया है । किंतु वास्तविकता यह है कि पति और पत्नी एक ही घर में अलग-अलग रहने लगे थे और मृतका ने अपनी बहिन को बताया था कि पति-पत्नी का संबंध समाप्त हो गया है और वह होली के त्यौहार के पश्चात् अपने मायके चली जाएगी । यह बात सत्य है कि अवैध संबंध के कुछ साक्ष्य थे और यदि यह साबित हो जाए तब भी हमारी यह सुविचारित राय होगी कि क्रूरता, जैसाकि दंड संहिता की धारा 498क के प्रथम भाग के अधीन परिकल्पित है, गठित नहीं होती है । यह अभिनिर्धारित करना कठिन होगा कि मानसिक क्रूरता उस कोटि की थी कि पत्नी को आत्महत्या करनी पड़ी । मात्र विवाहेत्तर संबंध, भले ही साबित हो जाएं, अवैध और अनैतिक माने जाएंगे जैसाकि **पिनाकिन महिपात्रे रावल** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है किंतु इसका भिन्न अर्थ भी लगाया जा सकता है यदि अभियोजन पक्ष अभिलेख पर यह

साबित करने के लिए कुछ साक्ष्य प्रस्तुत करे कि अभियुक्त ने मृतका के साथ ऐसा व्यवहार किया है कि उसे आत्महत्या करनी पड़ी । वर्तमान मामले में, अभियुक्त के अपीलार्थी सं. 4 के साथ अवैध संबंध हो सकते हैं किंतु अभिलेख पर ऐसा कोई अन्य स्वीकार्य साक्ष्य न होने पर जिससे उच्च कोटि की मानसिक क्रूरता सिद्ध की जा सके, दंड संहिता की धारा 498क का वह स्पष्टीकरण लागू नहीं होगा जिसके अंतर्गत क्रूरता के कारण महिला द्वारा आत्महत्या किए जाने का उल्लेख है ।

21. अब अन्य अभियुक्तों अर्थात् अपीलार्थी सं. 1, 3 और 4 के अपराध में आलिप्त होने के संबंध में हमारा यह निष्कर्ष है कि शारीरिक यातना दिए जाने का कोई भी अभिकथन नहीं किया गया है । क्रूरता के संबंध में अपीलार्थियों के विरुद्ध अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया साक्ष्य पूर्णतया बनावटी है न कि तर्कसम्मत । यह अभिकथन किया गया है कि मृतका की सास उसकी कमाई हुई रकम छीन लिया करती थी । वास्तव में उक्त तथ्य भी सिद्ध नहीं किया गया है । जहां तक अपीलार्थी सं. 4 अर्थात् जासुबेन का संबंध है, केवल एक अभिकथन किया गया है कि एक सार्वजनिक स्थान अर्थात् मेले में जासुबेन ने मृतका को धमकी दी थी कि मृतका का पति मृतका को तलाक दे देगा । उक्त साक्ष्य के आधार पर दंड संहिता की धारा 306 और 498क के अधीन दोषसिद्धि कायम नहीं रखी जा सकती । चूंकि हम यह अभिनिर्धारित कर रहे हैं कि अभियुक्त-अपीलार्थी दंड संहिता की धारा 306 और 498क के अधीन अपराध के दोषी नहीं हैं, इसलिए दंड संहिता की धारा 201 के अधीन भी दोषसिद्धि कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

22. उपर्युक्त विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए यह अपील मंजूर की जाती है, सभी अपीलार्थियों की दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त किए जाते हैं । चूंकि वे जमानत पर हैं, इसलिए उनके जमानत बंधपत्र उन्मोचित किए जाते हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./पा.

[2015] 3 उम. नि. प. 57

रमाकांत मिश्र उर्फ लालू आदि

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

27 फरवरी, 2015

न्यायमूर्ति विक्रमजीत सेन और न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 498क और 304ख [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 32(1)] – दहेज मृत्यु – मृत्युकालिक कथन – जहां अभियोजन अधिसंभाव्यता की प्रबलता द्वारा यह साबित करने में सफल रहा है कि दहेज मृत्यु कारित की गई वहां मृत्युकालिक कथन या अन्यथा द्वारा निर्दोषिता साबित करने का भार अभियुक्त पर है चूंकि मामले के घटनाओं के क्रम और मृत्युकालिक कथन से युक्तियुक्त संदेह से परे यह साबित नहीं होता है कि मृत्युकालिक कथन संदेहास्पद और अनभिशंसी है अतः, अभियुक्त दहेज मृत्यु के अपराध के दोषी ठहराए जाने के पात्र हैं ।

अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की संपूर्ण दलील मृत्युकालिक कथन पर आधारित है जो अभिकथित रूप से मृतका द्वारा दिया गया था जो प्रथम अपीलार्थी की पत्नी थी और द्वितीय और तृतीय अपीलार्थी की भाभी । मृतका विजयलक्ष्मी का विवाह प्रथम अपीलाथी के साथ वर्ष 1989 में हुआ था और इस विवाह बंधन से एक पुत्र का जन्म हुआ था जिसका नाम सोनू है । सोनू अपने मामा के साथ रहता है जो उसकी सभी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं और अभियुक्तों ने सोनू को अपनी अभिरक्षा में लेने का कोई प्रयास नहीं किया और न ही उन्होंने उसके खर्चों का वहन करने में कोई भाग लिया है । अभियोजन पक्ष ने यह साबित किया है कि दहेज की मांग पूरी न किए जाने के कारण मृतका को तंग किया जाता था, यातना दी जाती थी और उसके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया जाता था । विवाह की निश्चित तारीख स्पष्ट नहीं है किन्तु यह बात निर्विवादित है कि विजयलक्ष्मी की अप्राकृतिक मृत्यु से सात वर्ष से अधिक समयपूर्व उसका विवाह हुआ था । तारीख 21 सितम्बर, 1994 को प्रातःकाल, अभियोजन पक्षकथन के अनुसार मृतका को मिट्टी का तेल छिड़ककर आग में जलाया गया । मृतका का पिता/अपीलार्थी सं. 1 और अन्य अभियुक्तों ने मृतका को अस्पताल में भर्ती कराया और इसके पश्चात् वे वहां से फरार हो गए, यहां

तक कि वे उसके दाह संस्कार में भी उपस्थित नहीं हुए । मृतका की मृत्यु उसी दिन 11.30 बजे अपराह्न में 90-95 प्रतिशत दाह क्षतियों के कारण हो गई । जगदम्बा अर्थात् मृतका के देवर ने यह कथन किया है कि जब मृतका चूल्हे पर दूध गर्म कर रही थी, सोनू ने मिट्टी का तेल का डिब्बा गिरा दिया और तेल फर्श पर बिखर गया ; मृतका ने जब अपने पुत्र को उठाया तो अभिकथित रूप से उसकी साड़ी में चूल्हे से आग लग गई जिसके परिणामस्वरूप उसे 90-95 प्रतिशत दाह क्षतियां पहुंचीं । आक्षेपित आदेश में, यह उल्लेख किया गया है कि चिकित्सक ने यह राय व्यक्त की है कि दाह क्षतियों के परिणामस्वरूप मृत्यु हुई है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित चार अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और इन चारों अभियुक्तों में एक अभियुक्त अर्थात् मृतका के श्वसुर की मृत्यु हो चुकी है । ये अपीलें इलाहाबाद उच्च न्यायालय, लखनऊ के विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 14 जुलाई, 2010 के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई हैं जिन्होंने अपीलार्थियों की दोषसिद्धि की पुष्टि की है और तारीख 15 अप्रैल, 1999 को उनके विरुद्ध 8वें अपर जिला और सेशन न्यायाधीश, फैजाबाद द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498क और 304ख के अधीन पारित किए गए दंडादेश की पुष्टि की है । अतः निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए समवर्ती निष्कर्षों और पारित किए गए दंडादेशों को उलटने पर विचार किया जाना है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, यह नुक्ताचीनी नहीं की जा सकती कि अभियोजन पक्ष ने यह दर्शाया है कि धारा 304ख इस मामले को लागू होगी क्योंकि पत्नी की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई है ; परिणामस्वरूप यह अप्राकृतिक मृत्यु का मामला है । साक्ष्य में यह भी उल्लेख है कि विवाह के तत्काल पश्चात् स्कूटर की मांग की गई थी और यह मांग निरंतर बनी हुई थी । साक्ष्य में यह भी है कि इस असहाय महिला की अप्राकृतिक मृत्यु के लगभग 15 दिन पूर्व उसके दादा ने मृतका को अभियुक्त के साथ उसके वैवाहिक गृह भेजने से इनकार किया था क्योंकि दहेज की मांग पूरी न किए जाने के कारण मृतका को तंग किया जा रहा था और उसके साथ क्रूरता का व्यवहार किया जा रहा था । जब अभियुक्त ने मृतका के पिता को यह आश्वासन दे दिया कि अब उसके साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जाएगा, केवल तब ही मृतका को उसके वैवाहिक गृह भेजा गया । मृतका की माता का कथन भी इसी प्रभाव का है । अतः न्यायालय इस बात से सहमत नहीं है कि दहेज की मांग और मृत्यु के

बीच कोई संबंध नहीं था और न्यायालय इससे भी सहमत नहीं है कि अभियुक्त ने सफलतापूर्वक यह साबित कर दिया है कि दहेज की जो मांग की गई थी वह बहुत पहले किसी समय की गई थी । अतः, दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन इस अपेक्षा का समाधान हो गया है कि दहेज की मांग मृत्यु के कुछ पूर्व की जानी चाहिए । तदनुसार, न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक प्रथमदृष्ट्या यह साबित कर दिया है कि अभियुक्तों द्वारा दहेज की मांग मृतका की मृत्यु के कुछ पूर्व की गई थी । प्रतिरक्षा पक्ष ने मृतका के अभिकथित मृत्युकालिक कथन का भरपूर बल्कि लगभग पूर्णरूप से अवलंब लिया है । किसी विचारण मामले में मृत्युकालिक कथन की साक्ष्य के रूप में ग्राह्यता भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32(1) के अधीन विनियमित की गई है । धारा 32 के अंतर्गत कुल मिलाकर अनुश्रुत साक्ष्य की अग्राह्यता के नियम के अपवाद प्रतिपादित किए गए हैं जो ऐसे व्यक्ति द्वारा कि गए कथन के साथ संगत होते हैं धारा में नियत किए गए कारणों से जिसे न्यायालय में उपस्थित नहीं कराया जा सकता । आधारभूत संघटकों की यह परिकल्पना करना कि वास्तव में अनुश्रुत साक्ष्य किस प्रकार गठित होता है, एक कठिन कार्य है, और चूंकि न्यायालय को केवल एक अपवाद पर विचार करना है इसके लिए हमें शेष सभी पर भी विचार करना होगा । मृत्युकालिक कथन और धारा 32(1) के परिक्षेत्र के अधीन आने वाले कथनों को स्वीकार करने का जोखिम अन्य साधारण साक्ष्य की तुलना में अधिक होता है और ऐसे कथनों की ग्राह्यता और विश्वसनीयता अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है । ऐसे कथन न तो सशपथ दिए जाते हैं और न ही कथन देने वाले की प्रतिपरीक्षा की जाती है और न ही उन पर न्यायालय कक्ष की सर्वोपरिता और गुरुता का प्रभाव डाला जाता है । यही कारण है कि इस न्यायालय ने ऐसे साक्ष्य पर कड़ी सावधानी और सतर्कता के साथ विचार करने के लिए क्यों जोर दिया है । तथापि, जब मृत्युकालिक कथन प्रामाणिक, संदेह के परे पूर्णतया विश्वसनीय, स्वेच्छा से दिया गया, संगत, और विश्वसनीय होता है और सिखाया-पढ़ाया न गया हो, तब उसे अत्यधिक महत्व दिया जाना चाहिए ; यथार्थता ऐसी होनी चाहिए कि यह दोषसिद्धि का एकमात्र आधार भी हो सके जिसमें संपुष्टि की आवश्यकता भी न पड़े । इस समागम में यह लाभप्रद नहीं है कि मृत्युकालिक कथन की सत्यता इस तर्क-आधार में स्पष्ट होती है कि जिस व्यक्ति को वास्तव में सन्निकट मृत्यु का अहसास होता है वह केवल सत्य बोलेगा । मृत्युकालिक कथन के अतिरिक्त कुछ और भी लिखित या मौखिक कथन हैं जो धारा 32(1) की उपश्रेणी में आते

हैं, इस संबंध में भारतीय विधि इंग्लिश विधि से अलग हो जाती है । इस धारा में प्रयोग की गई शब्द-रचना से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल "मृत्यु के कारण" से संबंधित कथन ही नहीं अपितु संव्यवहार की ऐसी कोई भी परिस्थिति इसके अंतर्गत आती है जिसके दौरान मृत्यु हुई है, चाहे कथन करने वाले व्यक्ति को "मृत्यु की आशंका" थी या नहीं । ये कथन आत्महत्या नोट, पत्र, हस्ताक्षर या किसी संकेत या संसूचना का कोई विश्वसनीय उत्पाद हो सकते हैं ; निःसंदेह उन कथनों की असलियत और विश्वसनीयता का आंकलन उस न्यायालय द्वारा किया जाएगा जो उस मामले में कार्यवाही कर रहा है । विश्वास किए जाने के संबंध में मृत्युकालिक कथन का महत्व उपरोक्त अन्य किसी भी कथन की अपेक्षा अधिक है जोकि "मृत्यु को आसन्न मानकर" दिया जाता है । "मृत्यु को आसन्न मानना" एक ऐसा प्रधान संघटक है जो मृत्युकालिक कथन को अन्य कथनों से पृथक् करता है । किंतु कुछ घंटों या कुछ दिनों की उस परिधि के भीतर आसन्नता को सीमित करने के लिए कोई भी कड़ा नियम अधिकथित नहीं किया गया है जिसके दौरान कथन देने वाले की मृत्यु होनी चाहिए ताकि मृत्युकालिक कथन की विश्वसनीयता के स्तर में वृद्धि की जा सके । कथन देने वाले के कथन को पूर्णतया समझने के लिए यह बात महत्वपूर्ण है कि कथन देने वाले की मानसिक स्थिति कथन देने के लिए ठीक थी या नहीं और कथन देने वाला वास्तव में मृत्यु को अधिसंभाव्य समझ रहा था या नहीं । तथापि, विचार के लिए यह मुख्य प्रश्न शेष रह जाता है कि क्या अभिकथित मृत्युकालिक कथन को अधिप्रमाणित माना जा सकता है । चूंकि अभियोजन पक्ष अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता से यह दर्शाने/साबित करने में सफल रहा है कि दहेज मृत्यु हुई है, इसलिए सबूत का भार अभियुक्त पर आता है । न्यायालय को यह निर्विवादित प्रतीत होता है कि जब किसी व्यक्ति को क्षतिग्रस्त अवस्था में अस्पताल लाया जाता है तो अस्पताल के प्राधिकारी इस मामले को चिकित्सा-विधिक मामला मान लेते हैं और पुलिस को सूचित कर देते हैं जोकि एक गलत कार्य है । यदि आहत का उपचार करने वाला चिकित्सक यह राय देता है कि आहत की मृत्यु हो सकती है तब उसके लिए यह आवश्यक होगा कि वह पुलिस को तत्काल मामले की रिपोर्ट करे ; इस कार्य में कोई भी विलंब मुश्किल से ही स्वीकार नहीं किया जाएगा । दूसरी ओर आहत का कथन अभिलिखित किए जाने की आवश्यकता होने पर, पुलिस को भी सक्रिय रहना चाहिए और कथन अभिलिखित करने में ऐसी प्रक्रिया का अनुपालन करना चाहिए जिस पर तनिक भी संदेह न किया जा सके । यही कारण है

कि अन्वेषण अधिकारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अधिकारिता वाले मजिस्ट्रेट को घटना से अवगत कराए जिसके पश्चात् मजिस्ट्रेट आहत का तत्काल मुआयना करेगा । जब इस प्रक्रिया का अनुपालन किया जाता है, तब चिकित्सक द्वारा यह प्रमाणित किए जाने पर कि आहत कथन देने के लिए ठीक हालत में है कथन अभिलिखित किया जाना चाहिए और दिया गया यह मृत्युकालिक कथन साक्ष्यिक महत्व की दृष्टि से निर्विवादित उपधारित किया जाएगा । न्यायालय के विचार से मजिस्ट्रेट का इससे महत्वपूर्ण कर्तव्य कोई और नहीं हो सकता क्योंकि सबसे महत्वपूर्ण मानव का जीवन है । न्यायालय का यह विचार है कि यदि मजिस्ट्रेट के लिए व्यक्तिगत रूप से अपने इस कर्तव्य का निर्वहन करना असंभव हो जाए तब उसे अन्य ज्येष्ठ अधिकारी को कार्य सौंप देना चाहिए । इस प्रक्रिया को न अपनाने से मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करने में अनावश्यक ही संदेह होगा । अतः, अभियोजन पक्ष से यह साबित करने की प्रत्याशा की जाती है कि प्रत्येक चरण पर सोच-समझकर कार्य किया गया है । अभियोजन पक्ष को चाहिए था कि वह चिकित्सक को या चिकित्सा प्राधिकारी को (न्यायालय में) यह सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत करता कि आहत/मृतका की चिकित्सा जांच किए जाने के तत्काल पश्चात् पुलिस को सूचित कर दिया गया था । जिस अन्वेषण अधिकारी को इस संबंध में सूचना दी गई थी, उसे यह साबित करना चाहिए था कि उसने मजिस्ट्रेट को सूचना दे दी थी, जिसके उपलब्ध न होने पर, किसी जिम्मेदार व्यक्ति को मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किए जाने का कार्य सौंपा गया था । न्यायालय को कोई संदेह नहीं है कि जब चिकित्सक की यह राय हो कि यदि कोई व्यक्ति अप्राकृतिक घटना के परिणामस्वरूप मृत्यु से जूझ रहा है, तब ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट के लिए किसी भी जिम्मेदारी की अपेक्षा उस व्यक्ति का कथन अभिलिखित करना अधिक महत्वपूर्ण होगा । ऐसे भी उदाहरण हो सकते हैं जब इस प्रक्रिया का अनुपालन करने का समय उपलब्ध न हो, किंतु वर्तमान मामले में ऐसी स्थिति दिखाई नहीं पड़ती है । ऐसे मामले, जिनमें मृत्युकालिक कथन अन्य किसी व्यक्ति द्वारा अभिलिखित किए जाते हैं, युक्तियुक्त रूप से संदेहास्पद हो जाते हैं । चूंकि दहेज मृत्यु के मामले में युक्तियुक्त संदेह के परे निर्दोषिता साबित करने का भार अभियुक्त पर आ जाता है, जैसाकि वर्तमान मामले में है, प्रतिरक्षा पक्ष के लिए यह आवश्यक है कि वह उस घटनाक्रम को साबित करे जिसके परिणामस्वरूप अभिकथित मृत्युकालिक कथन तहसीलदार को अभिलिखित करना पड़ा । यह भार तनिक भी नहीं उठाया गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि जमानत का

आवेदन करने के समय पर अभियुक्त ने सेशन न्यायालय से अभिकथित मृत्युकालिक कथन को मांगने का निवेदन किया था । इस पहलू को ध्यान में रखते हुए कि अस्पताल में मृतका का उपचार किए जाने या अभिकथित रूप से मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किए जाने या मृतका की मृत्यु के समय पर या दाह संस्कार के समय पर कोई भी अभियुक्त मौजूद नहीं था और यह भी प्रकट नहीं किया गया है कि अभियुक्त को मृत्युकालिक कथन की विद्यमानता का पता किस प्रकार चला था । अन्वेषण अधिकारी के कथन से भी यह स्थिति स्पष्ट नहीं होती है ; उसने यह कथन किया है कि उसे मृतका के नातेदारों से मृत्युकालिक कथन का पता चला था । शेरसिंह के आवेदन किए जाने पर इस घटनाक्रम को साबित करने का भार और आवश्यकता अभियुक्त पर स्थानांतरित हो जाती है क्योंकि यहां दंड संहिता की धारा 304ख लागू की गई थी । अन्वेषण अधिकारी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि श्वसुर गोरखनाथ (जिसकी मृत्यु हो चुकी है) सहित सभी अभियुक्त घटना के पश्चात् फरार हो गए थे । वास्तव में, अन्वेषण अधिकारी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि "मृत्युकालिक कथन के संदर्भ में कोई भी विश्वसनीय जानकारी नहीं है ..... इस सूचना को प्राप्त करने पर कि विजयलक्ष्मी का मृत्युकालिक कथन मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित किया गया है, इसलिए मैंने कथन अभिलिखित करना आवश्यक नहीं समझा ।" न तो चिकित्सक जिसने अभिकथित रूप से यह प्रमाणित किया है कि मृतका कथन देने के लिए ठीक हालत में थी और न ही तहसीलदार ने जिसने अभिकथित मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया है, उस रीति का उल्लेख किया है जिसमें तहसीलदार ने महत्वपूर्ण अभिलेख लिखा है । मृत्युकालिक कथन से यह प्रतीत होता है कि यह कथन रहस्यमय रूप से गढ़ा गया है और इसे जमानत के आवेदन के समय पर निर्दिष्ट किया गया है । मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किए जाने के समय पर जो घटनाक्रम अपनाया गया था वह प्रकट नहीं किया गया है । तहसीलदार ने अपने कथन में उस रीति को स्पष्ट नहीं किया है जिसमें उसने मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया है और यह भी स्पष्ट नहीं किया है कि मृत्युकालिक कथन न्यायालय को किस समय भेजा गया था । चूंकि सबूत का भार अभियुक्त पर आ गया था, इसलिए यह घटनाक्रम संदेह के परे अभियुक्तों द्वारा साबित किया जाना चाहिए था । न्यायालय ने इस पर गहराई से विचार किया है कि तहसीलदार तथा चिकित्सक को, जिन्होंने अभिकथित रूप से यह प्रमाणित किया है कि मृतका मृत्युकालिक कथन देने के लिए ठीक हालत में थी, प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा न्यायालय में

प्रस्तुत किया गया है । चिकित्सक को चाहिए था कि वह उस घटनाक्रम के बारे में बताए जिसमें तहसीलदार मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करने के लिए आया था । अतः, अभिकथित अनभिशंसी मृत्युकालिक कथन संदिग्ध हो जाता है और न्यायालय इसे असली दस्तावेज स्वीकार नहीं कर सकता । प्रतिरक्षा पक्ष साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख का अनुपालन करने में असफल रहा है । अभियुक्तों पर दहेज मृत्यु कारित किए जाने का आरोप लगाए जाने पर उन्हें चाहिए था कि वे स्वयं साक्षी कठघरे में खड़े होते । अभियुक्त घटना के समय घटनास्थल पर मौजूद थे और इस घटना ने घातक रूप ले लिया और इससे अभियुक्तों की यह जिम्मेदारी बनती थी कि वे दहेज मृत्यु के संबंध में अपनी निर्दोषिता का विश्वसनीय वृत्तांत प्रस्तुत करते । (पैरा 4, 5, 9 और 10)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	[2015] 1 एस. सी. आर. 29 : **शेर सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	3
[2012]	(2012) 12 एस. सी. सी. 120 : **सुरिन्दर कुमार** बनाम **पंजाब राज्य** ;	11
[2008]	(2008) 16 एस. सी. सी. 155 : **तारसेम सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	4
[2008]	(2008) 4 एस. सी. सी. 265 : **शेर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	11
[2008]	(2008) 16 एस. सी. सी. 705 : **समाधान धुडाका कोली** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	11
[2007]	(2007) 15 एस. सी. सी. 455 : **अमरसिंह मुन्नासिंह सूर्यवंशी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	11
[2006]	(2006) 13 एस. सी. सी. 54 : **विट्ठल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	11
[1992]	(1992) 2 एस. सी. सी. 474 : **पनीबेन** बनाम **गुजरात राज्य** ;	11
[1992]	(1992) 4 एस. सी. सी. 69 : **मफाभाई नागरभाई रावल** बनाम **गुजरात राज्य** ;	11

290 यू. एस. 96, 54 एस. सीटी. 22,
78 एल. ईडी. 196 :
शेपर्ड बनाम **संयुक्त राज्य, कैन** । 6

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 1279-1281.

1999 की दांडिक अपील सं. 184, 186 और 187 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ के तारीख 13 जुलाई, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री पी. एन. मिश्रा (वरिष्ठ अधिवकता), टी. एन. सिंह और वी. के. सिंह

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अभिषेक सिंह, अमित कुमार सिंह और समीर अली खां

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति विक्रमजीत सेन ने दिया ।

न्या. सेन – ये अपीलें इलाहाबाद उच्च न्यायालय, लखनऊ के विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 14 जुलाई, 2010 के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई हैं जिन्होंने अपीलार्थियों की दोषसिद्धि की पुष्टि की है और तारीख 15 अप्रैल, 1999 को उनके विरुद्ध 8वें अपर जिला और सेशन न्यायाधीश, फैजाबाद द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 498क और 304ख के अधीन पारित किए गए दंडादेश की पुष्टि की है । अतः निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए समवर्ती निष्कर्षों और पारित किए गए दंडादेशों को उलटने पर विचार किया जाना है ।

2. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की संपूर्ण दलील मृत्युकालिक कथन पर आधारित है जो अभिकथित रूप से मृतका द्वारा दिया गया था जो प्रथम अपीलार्थी की पत्नी थी और द्वितीय और तृतीय अपीलार्थी की भाभी । मृतका विजयलक्ष्मी का विवाह प्रथम अपीलार्थी के साथ वर्ष 1989 में हुआ था और इस विवाह बंधन से एक पुत्र का जन्म हुआ था जिसका नाम सोनू है । सोनू अपने मामा के साथ रहता है जो उसकी सभी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं और अभियुक्तों ने सोनू को अपनी अभिरक्षा में लेने का कोई प्रयास नहीं किया और न ही उन्होंने उसके खर्चों का वहन करने में कोई भाग लिया है । अभियोजन पक्ष ने यह साबित किया है कि दहेज की मांग

पूरी न किए जाने के कारण मृतका को तंग किया जाता था, यातना दी जाती थी और उसके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया जाता था । विवाह की निश्चित तारीख स्पष्ट नहीं है किन्तु यह बात निर्विवादित है कि विजयलक्ष्मी की अप्राकृतिक मृत्यु से सात वर्ष से अधिक समयपूर्व उसका विवाह हुआ था । तारीख 21 सितम्बर, 1994 को प्रातःकाल, अभियोजन पक्षकथन के अनुसार मृतका को मिट्टी का तेल छिड़ककर आग में जलाया गया । मृतका का पिता/अपीलार्थी सं. 1 और अन्य अभियुक्तों ने मृतका को अस्पताल में भर्ती कराया और इसके पश्चात् वे वहां से फरार हो गए, यहां तक कि वे उसके दाह संस्कार में भी उपस्थित नहीं हुए । मृतका की मृत्यु उसी दिन 11.30 बजे अपराह्न में 90-95 प्रतिशत दाह क्षतियों के कारण हो गई । जगदम्बा (अपीलार्थी सं. 2) अर्थात् मृतका के देवर ने यह कथन किया है कि जब मृतका चूल्हे पर दूध गर्म कर रही थी, सोनू ने मिट्टी का तेल का डिब्बा गिरा दिया और तेल फर्श पर बिखर गया ; मृतका ने जब अपने पुत्र को उठाया तो अभिकथित रूप से उसकी साड़ी में चूल्हे से आग लग गई जिसके परिणामस्वरूप उसे 90-95 प्रतिशत दाह क्षतियां पहुंचीं । आक्षेपित आदेश में, यह उल्लेख किया गया है कि चिकित्सक ने यह राय व्यक्त की है कि दाह क्षतियों के परिणामस्वरूप मृत्यु हुई है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित चार अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और इन चारों अभियुक्तों में एक अभियुक्त अर्थात् मृतका के श्वसुर की मृत्यु हो चुकी है ।

3. हाल ही में, इस न्यायालय ने **शेर सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में 2001 की दांडिक अपील सं. 1592 में दंड संहिता की धारा 304ख का निर्वचन किया है जिसमें हममें से एक न्यायाधीश अर्थात् विक्रमजीत सेन उस मामले में न्यायाधीश थे । उस मामले में सूक्ष्मता के साथ यह मत व्यक्त किया गया था कि धारा 304ख में "साबित किया गया" के बजाय "दर्शाया गया" शब्दों का प्रयोग किए जाने से यह उपदर्शित होता है कि सबूत का भार अभियोजन पक्ष पर आता है जिसका समाधान मात्र संभाव्यताओं की कसौटी पर किया जाना चाहिए । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि "दर्शाया गया" का अर्थ "साबित किया गया" लेना होगा किन्तु संभाव्यताओं की सीमा तक ही । इसके पश्चात्, इस धारा में प्रयोग किए गए शब्द "समझा जाएगा" से यह अर्थ निकलता है कि अभियुक्त को अपनी निर्दोषिता साबित करनी होगी वह भी युक्तियुक्त संदेह

---

[1] [2015] 1 एस. सी. आर. 29.

के परे । अभियुक्त की "समझी गई" दोषिता के आधार पर इस बात की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती कि अभियुक्त अपनी निर्दोषिता साबित करे, तदनुसार उसकी दोषिता की भरपूर "उपधारणा" की जाती है । तथापि, अभियुक्त से यह अपेक्षा की जाती है कि वह युक्तियुक्त संदेह के परे जो संभाव्यताओं से भिन्न हो, अपनी निर्दोषिता साबित करके ऐसी उपधारणा को खारिज कर सके ।

4. **शेर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में के विनिश्चयाधार के अनुसरण में जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, यह नुक्ताचीनी नहीं की जा सकती कि अभियोजन पक्ष ने यह दर्शाया है कि धारा 304ख इस मामले को लागू होगी क्योंकि पत्नी की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई है ; परिणामस्वरूप यह अप्राकृतिक मृत्यु का मामला है । साक्ष्य में यह भी उल्लेख है कि विवाह के तत्काल पश्चात् स्कूटर की मांग की गई थी और यह मांग निरंतर बनी हुई थी । साक्ष्य में यह भी है कि इस असहाय महिला की अप्राकृतिक मृत्यु के लगभग 15 दिन पूर्व उसके दादा (अभि. सा. 1) ने मृतका को अभियुक्त के साथ उसके वैवाहिक गृह भेजने से इनकार किया था क्योंकि दहेज की मांग पूरी न किए जाने के कारण मृतका को तंग किया जा रहा था और उसके साथ क्रूरता का व्यवहार किया जा रहा था । जब अभियुक्त ने मृतका के पिता को यह आश्वासन दे दिया कि अब उसके साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जाएगा, केवल तब ही मृतका को उसके वैवाहिक गृह भेजा गया । मृतका की माता (अभि. सा. 2) का कथन भी इसी प्रभाव का है । अतः हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि दहेज की मांग और मृत्यु के बीच कोई संबंध नहीं था और हम इससे भी सहमत नहीं हैं कि अभियुक्त ने सफलतापूर्वक यह साबित कर दिया है कि दहेज की जो मांग की गई थी वह बहुत पहले किसी समय की गई थी, इस आधार पर **तारसेम सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय से अभियुक्त को कोई लाभ नहीं मिल सकता । अतः, दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन इस अपेक्षा का समाधान हो गया है कि दहेज की मांग मृत्यु के कुछ पूर्व की जानी चाहिए । तदनुसार, हमें यह प्रतीत होता है कि अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक प्रथमदृष्ट्या यह साबित कर दिया है कि अभियुक्तों द्वारा दहेज की मांग मृतका की मृत्यु के कुछ पूर्व की गई थी ।

5. प्रतिरक्षा पक्ष ने मृतका के अभिकथित मृत्युकालिक कथन का

---

[1] (2008) 16 एस. सी. सी. 155.

भरपूर बल्कि लगभग पूर्णरूप से अवलंब लिया है । किसी विचारण मामले में मृत्युकालिक कथन की साक्ष्य के रूप में ग्राह्यता भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32(1) के अधीन विनियमित की गई है । धारा 32 के अंतर्गत कुल मिलाकर अनुश्रुत साक्ष्य की अग्राह्यता के नियम के अपवाद प्रतिपादित किए गए हैं जो ऐसे व्यक्ति द्वारा किए गए कथन के साथ संगत होते हैं धारा में नियत किए गए कारणों से जिसे न्यायालय में उपस्थित नहीं कराया जा सकता । आधारभूत संघटकों की यह परिकल्पना करना कि वास्तव में अनुश्रुत साक्ष्य किस प्रकार गठित होता है, एक कठिन कार्य है, और चूंकि हमें केवल एक अपवाद पर विचार करना है इसके लिए हमें शेष सभी पर भी विचार करना होगा । मृत्युकालिक कथन और धारा 32(1) के परिक्षेत्र के अधीन आने वाले कथनों को स्वीकार करने का जोखिम अन्य साधारण साक्ष्य की तुलना में अधिक होता है और ऐसे कथनों की ग्राह्यता और विश्वसनीयता अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है । ऐसे कथन न तो सशपथ दिए जाते हैं और न ही कथन देने वाले की प्रतिपरीक्षा की जाती है और न ही उन पर न्यायालय कक्ष की सर्वोपरिता और गुरुता का प्रभाव डाला जाता है । यही कारण है कि इस न्यायालय ने ऐसे साक्ष्य पर कड़ी सावधानी और सतर्कता के साथ विचार करने के लिए क्यों जोर दिया है । तथापि, जब मृत्युकालिक कथन प्रामाणिक, संदेह के परे पूर्णतया विश्वसनीय, स्वेच्छा से दिया गया, संगत और विश्वसनीय होता है और सिखाया-पढ़ाया न गया हो, तब उसे अत्यधिक महत्व दिया जाना चाहिए ; यथार्थता ऐसी होनी चाहिए कि यह दोषसिद्धि का एकमात्र आधार भी हो सके जिसमें संपुष्टि की आवश्यकता भी न पड़े । इस समागम में यह लाभप्रद नहीं है कि मृत्युकालिक कथन की सत्यता इस तर्क-आधार में स्पष्ट होती है कि जिस व्यक्ति को वास्तव में सन्निकट मृत्यु का अहसास होता है वह केवल सत्य बोलेगा । मृत्युकालिक कथन के अतिरिक्त कुछ और भी लिखित या मौखिक कथन हैं जो धारा 32(1) की उपश्रेणी में आते हैं, इस संबंध में भारतीय विधि इंग्लिश विधि से अलग हो जाती है । इस धारा में प्रयोग की गई शब्द-रचना से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल "मृत्यु के कारण" से संबंधित कथन ही नहीं अपितु संव्यवहार की ऐसी कोई भी परिस्थिति इसके अंतर्गत आती है जिसके दौरान मृत्यु हुई है, चाहे कथन करने वाले व्यक्ति को "मृत्यु की आशंका" थी या नहीं । ये कथन आत्महत्या नोट, पत्र, हस्ताक्षर या किसी संकेत या संसूचना का कोई विश्वसनीय उत्पाद हो सकते हैं ; निःसंदेह उन कथनों की असलियत और विश्वसनीयता का आंकलन उस न्यायालय द्वारा किया जाएगा जो उस

मामले में कार्यवाही कर रहा है । विश्वास किए जाने के संबंध में मृत्युकालिक कथन का महत्व उपरोक्त अन्य किसी भी कथन की अपेक्षा अधिक है जोकि "मृत्यु को आसन्न मानकर" दिया जाता है । "मृत्यु को आसन्न मानना" एक ऐसा प्रधान संघटक है जो मृत्युकालिक कथन को अन्य कथनों से पृथक् करता है । किंतु कुछ घंटों या कुछ दिनों की उस परिधि के भीतर आसन्नता को सीमित करने के लिए कोई भी कड़ा नियम अधिकथित नहीं किया गया है जिसके दौरान कथन देने वाले की मृत्यु होनी चाहिए ताकि मृत्युकालिक कथन की विश्वसनीयता के स्तर में वृद्धि की जा सके । कथन देने वाले के कथन को पूर्णतया समझने के लिए यह बात महत्वपूर्ण है कि कथन देने वाले की मानसिक स्थिति कथन देने के लिए ठीक थी या नहीं और कथन देने वाला वास्तव में मृत्यु को अधिसंभाव्य समझ रहा था या नहीं ।

6. ब्लैक "ला डिक्शनरी" के पांचवें संस्करण में उल्लिखित इस विधिक अवधारणा की परिभाषा इस प्रकार है – मृत्युकालिक कथन – किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किए गए कथन मानव वध के विचारण के दौरान साक्ष्य में ग्राह्य होंगे जो मृत्यु के आसन्न है और इस बात से सचेत है कि उसकी मृत्यु हो सकती है और ये कथन उस रीति को निर्दिष्ट करते हो जिनमें उसे वे क्षतियां पहुंची हैं जिनके कारण उस व्यक्ति की मृत्यु होने जा रही है, या उन कथनों में मृत्यु का अन्य कोई तत्काल कारण दिया गया हो और उस व्यक्ति को निर्दिष्ट किया गया हो जिसने ऐसी क्षतियां कारित कीं हैं या ऐसी क्षतियों से उस व्यक्ति का संबंध निर्दिष्ट किया गया हो जिस पर क्षतियां पहुंचाने का आरोप लगाया गया है या ऐसी क्षतियां कारित किए जाने का संदेह किया गया है और कभी-कभी कम से कम कुछ अधिकारिताओं के अन्य मामलों में भी मृत्युकालिक कथन को कथन देने वाले की उस हत्या के अपराध में साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है जिसका आरोप प्रतिवादी (अभियुक्त) पर लगाया गया है । **शेपर्ड** बनाम **संयुक्त राज्य, कैन**[1] वाला मामला देखिए । सामान्यतया, ऐसे कथनों की ग्राह्यता का प्रयोग मानव वध के अभियोजन के मामलों में सीमित है ; किंतु अभियुक्त तथा अभियोजन पक्ष की ओर से स्वाकीर किया जा सकता है । मानव वध के अपराध का अभियोजन किए जाने या किसी सिविल कार्रवाई या कार्यवाही में, कथन देने वाले का कथन इस विश्वास के साथ कि इन कारणों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उसकी मृत्यु

---

[1] 290 यू. एस. 96, 54 एस. सीटी. 22, 78 एल. ईडी. 196.

आसन्न है, अनुश्रुत साक्ष्य के सिद्धांत द्वारा अपवर्जित नहीं किया जा सकता है । फेड. एविड. आर. 804(बी)(2) ।

7. जब कोई व्यक्ति इस बात से अवगत होकर कथन देता है कि उसकी मृत्यु सन्निकट और आसन्न है तब ऐसे कथन का प्रमाणकारी महत्व बढ़ जाता है और लगभग उसे कोई चुनौती ही नहीं दी जा सकती और यह कथन ऐसे कथनों से भिन्न होते हैं जो पूर्व में दिए गए होते हैं जिनसे मृत्यु की संभावना दिखाई नहीं देती और न ही मृत्यु की संभावना का कोई कारण दिखाई देता है । अर्थात् एक व्यक्ति किसी निर्दोष को अपराध में आलिप्त करने में इच्छुक हो सकता है किंतु उस समय वह ऐसा नहीं करेगा जब उसे अपनी मृत्यु सन्निकट दिखाई दे रही हो । यही कारण है कि मृत्युकालिक कथन एक विशेष कथन तब माना जाना चाहिए जब वह ऐसी स्थिति में दिया गया हो कि कथन देने वाले को यह आशंका हो कि उसकी मृत्यु हो सकती है ।

8. इस मामले में, यदि मृतका द्वारा कथन किया गया है, तब यह कथन मृत्युकालिक कथन ही माना जाएगा क्योंकि उसे 90-95 प्रतिशत दाह क्षतियों के साथ अस्पताल में भर्ती कराया गया था, और इन गंभीर क्षतियों के कारण उसका यह अनुमान था कि हाल ही में उसकी मृत्यु हो सकती है ।

9. तथापि, विचार के लिए यह मुख्य प्रश्न शेष रह जाता है कि क्या अभिकथित मृत्युकालिक कथन को अधिप्रमाणित माना जा सकता है । चूंकि अभियोजन पक्ष अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता से यह दर्शाने/साबित करने में सफल रहा है कि दहेज मृत्यु हुई है, इसलिए सबूत का भार अभियुक्त पर आता है । हमें यह निर्विवादित प्रतीत होता है कि जब किसी व्यक्ति को क्षतिग्रस्त अवस्था में अस्पताल लाया जाता है तो अस्पताल के प्राधिकारी इस मामले को चिकित्सा विधिक मामला मान लेते हैं और पुलिस को सूचित कर देते हैं जोकि एक गलत कार्य है । यदि आहत का उपचार करने वाला चिकित्सक यह राय देता है कि आहत की मृत्यु हो सकती है तब उसके लिए यह आवश्यक होगा कि वह पुलिस को तत्काल मामले की रिपोर्ट करे ; इस कार्य में कोई भी विलंब मुश्किल से ही स्वीकार किया जाएगा । दूसरी ओर आहत का कथन अभिलिखित किए जाने की आवश्यकता होने पर, पुलिस को भी सक्रिय रहना चाहिए और कथन अभिलिखित करने में ऐसी प्रक्रिया का अनुपालन करना चाहिए जिस पर तनिक भी संदेह न किया जा सके । यही कारण है कि अन्वेषण अधिकारी

से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अधिकारिता वाले मजिस्ट्रेट को घटना से अवगत कराए जिसके पश्चात् मजिस्ट्रेट आहत का तत्काल मुआयना करेगा । जब इस प्रक्रिया का अनुपालन किया जाता है, तब चिकित्सक द्वारा यह प्रमाणित किए जाने पर कि आहत कथन देने के लिए ठीक हालत में है कथन अभिलिखित किया जाना चाहिए और दिया गया मृत्युकालिक कथन साक्ष्यिक महत्व की दृष्टि से निर्विवादित उपधारित किया जाएगा । हमारे विचार से मजिस्ट्रेट का इससे महत्वपूर्ण कर्तव्य कोई और नहीं हो सकता क्योंकि सबसे महत्वपूर्ण मानव का जीवन है । हमारा यह विचार है कि यदि मजिस्ट्रेट के लिए व्यक्तिगत रूप से अपने इस कर्तव्य का निर्वहन करना असंभव हो जाए तब उसे अन्य ज्येष्ठ अधिकारी को कार्य सौंप देना चाहिए । इस प्रक्रिया को न अपनाने से मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करने में अनावश्यक ही संदेह होगा । अतः, अभियोजन पक्ष से यह साबित करने की प्रत्याशा की जाती है कि प्रत्येक चरण पर सोच-समझकर कार्य किया गया है । अभियोजन पक्ष को चाहिए था कि वह चिकित्सक को या चिकित्सा प्राधिकारी को (न्यायालय में) यह सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत करता कि आहत/मृतका की चिकित्सा जांच किए जाने के तत्काल पश्चात् पुलिस को सूचित कर दिया गया था । जिस अन्वेषण अधिकारी को इस संबंध में सूचना दी गई थी, उसे यह साबित करना चाहिए था कि उसने मजिस्ट्रेट को सूचना दे दी थी, जिसके उपलब्ध न होने पर, किसी जिम्मेदार व्यक्ति को मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किए जाने का कार्य सौंपा गया था । हमें कोई संदेह नहीं है कि जब चिकित्सक की यह राय हो कि यदि कोई व्यक्ति अप्राकृतिक घटना के परिणामस्वरूप मृत्यु से जूझ रहा है, तब ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट के लिए किसी भी जिम्मेदारी की अपेक्षा उस व्यक्ति का कथन अभिलिखित करना अधिक महत्वपूर्ण होगा । ऐसे भी उदाहरण हो सकते हैं जब इस प्रक्रिया का अनुपालन करने का समय उपलब्ध न हो, किंतु वर्तमान मामले में ऐसी स्थिति दिखाई नहीं पड़ती है । ऐसे मामले, जिनमें मृत्युकालिक कथन अन्य किसी व्यक्ति द्वारा अभिलिखित किए जाते हैं, युक्तियुक्त रूप से संदेहास्पद हो जाते हैं ।

10. चूंकि दहेज मृत्यु के मामले में युक्तियुक्त संदेह के परे निर्दोषिता साबित करने का भार अभियुक्त पर आ जाता है, जैसाकि वर्तमान मामले में है, प्रतिरक्षा पक्ष के लिए यह आवश्यक है कि वह उस घटनाक्रम को साबित करे जिसके परिणामस्वरूप अभिकथित मृत्युकालिक कथन तहसीलदार (प्रतिरक्षा साक्षी 1) को अभिलिखित करना पड़ा । यह भार तनिक भी नहीं उठाया गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि जमानत का

आवेदन करने के समय पर अभियुक्त ने सेशन न्यायालय से अभिकथित मृत्युकालिक कथन को मांगने का निवेदन किया था । इस पहलू को ध्यान में रखते हुए कि अस्पताल में मृतका का उपचार किए जाने या अभिकथित रूप से मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किए जाने या मृतका की मृत्यु के समय पर या दाह संस्कार के समय पर कोई भी अभियुक्त मौजूद नहीं था और यह भी प्रकट नहीं किया गया है कि अभियुक्त को मृत्युकालिक कथन की विद्यमानता का पता किस प्रकार चला था । अन्वेषण अधिकारी के कथन से भी यह स्थिति स्पष्ट नहीं होती है ; उसने यह कथन किया है कि उसे मृतका के नातेदारों से मृत्युकालिक कथन का पता चला था । शेर सिंह के आवेदन किए जाने पर इस घटनाक्रम को साबित करने का भार और आवश्यकता अभियुक्त पर स्थानांतरित हो जाती है क्योंकि यहां दंड संहिता की धारा 304ख लागू की गई थी । अन्वेषण अधिकारी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि श्वसुर गोरखनाथ (जिसकी मृत्यु हो चुकी है) सहित सभी अभियुक्त घटना के पश्चात् फरार हो गए थे । वास्तव में, अन्वेषण अधिकारी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि "मृत्युकालिक कथन के संदर्भ में कोई भी विश्वसनीय जानकारी नहीं है .....। इस सूचना को प्राप्त करने पर कि विजयलक्ष्मी का मृत्युकालिक कथन मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित किया गया है, इसलिए मैंने कथन अभिलिखित करना आवश्यक नहीं समझा ।" न तो चिकित्सक (प्रतिरक्षा साक्षी 2) जिसने अभिकथित रूप से यह प्रमाणित किया है कि मृतका कथन देने के लिए ठीक हालत में थी और न ही तहसीलदार ने जिसने अभिकथित मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया है, उस रीति का उल्लेख किया है जिसमें तहसीलदार ने महत्वपूर्ण अभिलेख लिखा है । मृत्युकालिक कथन से यह प्रतीत होता है कि यह कथन रहस्यमय रूप से गढ़ा गया है और इसे जमानत के आवेदन के समय पर निर्दिष्ट किया गया है । मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किए जाने के समय पर जो घटनाक्रम अपनाया गया था वह प्रकट नहीं किया गया है । तहसीलदार ने अपने कथन में उस रीति को स्पष्ट नहीं किया है जिसमें उसने मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया है और यह भी स्पष्ट नहीं किया है कि मृत्युकालिक कथन न्यायालय को किस समय भेजा गया था । चूंकि सबूत का भार अभियुक्त पर आ गया था, इसलिए यह घटनाक्रम संदेह के परे अभियुक्तों द्वारा साबित किया जाना चाहिए था । हमने इस पर गहराई से विचार किया है कि तहसीलदार तथा चिकित्सक को, जिन्होंने अभिकथित रूप से यह प्रमाणित किया है कि मृतका मृत्युकालिक कथन देने के लिए ठीक हालत में थी, प्रतिरक्षा पक्ष

द्वारा न्यायालय में प्रस्तुत किया गया है । चिकित्सक को चाहिए था कि वह उस घटनाक्रम के बारे में बताए जिसमें तहसीलदार मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करने के लिए आया था । अतः, अभिकथित अनभिशंसी मृत्युकालिक कथन संदिग्ध हो जाता है और हम इसे असली दस्तावेज स्वीकार नहीं कर सकते । प्रतिरक्षा पक्ष साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख का अनुपालन करने में असफल रहा है । अभियुक्तों पर दहेज मृत्यु कारित किए जाने का आरोप लगाए जाने पर उन्हें चाहिए था कि वे स्वयं साक्षी कठघरे में खड़े होते । अभियुक्त घटना के समय घटनास्थल पर मौजूद थे और इस घटना ने घातक रूप ले लिया और इससे अभियुक्तों की यह जिम्मेदारी बनती थी कि वे दहेज मृत्यु के संबंध में अपनी निर्दोषिता का विश्वसनीय वृत्तांत प्रस्तुत करते ।

11. **पनीबेन** बनाम **गुजरात राज्य**[1], **मफाभाई नागरभाई रावल** बनाम **गुजरात राज्य**[2], **विट्ठल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[3], **अमरसिंह मुन्नासिंह सूर्यवंशी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[4], **शेर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[5], **समाधान धुडाका कोली** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[6] और **सुरिन्दर कुमार** बनाम **पंजाब राज्य**[7] वाले मामलों के तथ्यों के आधार पर अलग रखे जाने योग्य हैं क्योंकि वर्तमान मामले में हम मृत्युकालिक कथन की रचना, कथन देने के समय मृतका की मानसिक स्थिति के आधार पर उसकी प्रमाणिकता से सहमत नहीं हैं ।

12. अपीलें उपरोक्त निबंधनों में खारिज की जाती हैं । अंतरिम आदेश वापस लिया जाता है ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अस./पा.

---

[1] (1992) 2 एस. सी. सी. 474.
[2] (1992) 4 एस. सी. सी. 69.
[3] (2006) 13 एस. सी. सी. 54.
[4] (2007) 15 एस. सी. सी. 455.
[5] (2008) 4 एस. सी. सी. 265.
[6] (2008) 16 एस. सी. सी. 705.
[7] (2012) 12 एस. सी. सी. 120.

[2015] 3 उम. नि. प. 73

उपेन्द्र प्रधान

बनाम

उड़ीसा राज्य

28 अप्रैल, 2015

न्यायमूर्ति पिनाकी चन्द्र घोष और न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302/34 और 307 – हत्या और हत्या का प्रयत्न – तीन बालकों की हत्या और उनके पिता की हत्या के प्रयत्न के लिए अपीलार्थी का अन्य अभियुक्तों के साथ विचारण किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा साक्षियों के साक्ष्य के आधार पर अन्य अभियुक्तों को दोषसिद्ध किंतु अपीलार्थी को दोषमुक्त किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया जाना – यदि साक्ष्य के परिशीलन और विधि के उपयोजन के आधार पर दो मत संभव हों, तो वह मत अपनाया जाना चाहिए जो अभियुक्त का समर्थन करता हो और चूंकि विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को संदेह का फायदा देते हुए किया गया विनिश्चय स्पष्ट रूप से अवैध, अनुचित नहीं था और न्याय की हानि नहीं हुई, इसलिए उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था ।

अपीलार्थी-अभियुक्त का अन्य अभियुक्तों के साथ हत्या कारित करने, हत्या का प्रयत्न करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 तथा धारा 307 के अधीन अपराधों के लिए विचारण किया गया था । सेशन न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के विश्लेषण के आधार पर अन्य अभियुक्तों को मृत्यु दंडादेश दिया किंतु अपीलार्थी-अभियुक्त को एक अन्य महिला अभियुक्त सहित संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त कर दिया । मृत्यु दंडादेश की पुष्टि के लिए उच्च न्यायालय में निर्देश किया गया । उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने निर्देश और अन्य सिद्धदोष अभियुक्तों द्वारा कारागार से अपीलें फाइल की गईं । उच्च न्यायालय द्वारा मृत्यु दंडादेश के निर्देश और दांडिक अपीलों पर एक-साथ सुनवाई की गई और इनका निपटारा किया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्येक अपीलार्थी के विरुद्ध अभ्यारोपण सभी युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किए गए हैं । इसलिए विचारण न्यायालय का अपीलार्थियों की

दोषसिद्धि अभिलिखित करने वाला आदेश कायम रखा गया । तथापि, मृत्यु दंडादेश के मामले में उच्च न्यायालय का यह मत था कि अपराध के पीछे की परिस्थितियां नरम दृष्टिकोण अपनाने के लिए पर्याप्त हैं और तदनुसार उच्च न्यायालय ने आजीवन कारावास दिया । उसके पश्चात् राज्य ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(1) के अधीन निर्णय के विरुद्ध अपील के लिए इजाजत हेतु आवेदन फाइल किया और तारीख 15 मई, 1995 को इजाजत दी गई और उच्च न्यायालय में सरकारी अपील रजिस्ट्रीकृत की गई । इसी बीच, उच्च न्यायालय के आदेश के फलस्वरूप अपीलार्थी-अभियुक्त उपेन्द्र जमानत पर था । तथापि, उच्च न्यायालय ने अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा किए गए विनिश्चय को उलट दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि जब अभियुक्त उपेन्द्र प्रधान तीन निर्दोष बच्चों की हत्या करने में पक्षकार था तो वह अन्य अभियुक्तों की तरह भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी है । उच्च न्यायालय ने यह अभिलिखित किया कि कोई अन्य दृष्टिकोण अपनाने की बजाय इस अभियुक्त को समुचित दंड दिया जाना चाहिए और अपीलार्थी-अभियुक्त उपेन्द्र प्रधान को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया और उसे आजीवन कारावास का दंडादेश दिया । अभियुक्त-अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय के विचार के लिए मुख्य रूप से तीन प्रश्न हैं । प्रथम यह है कि क्या अभियुक्त-अपीलार्थी का समर्थन करने वाले मौजूद दृष्टिकोण पर विचार किया जाना चाहिए या नहीं । दूसरा यह है कि क्या अभियोजन साक्षियों, अभि. सा. 1 और अभि. सा. 7, के हितबद्ध साक्षी होने के कारण उनका अवलंब लिया जाना चाहिए । तीसरा प्रश्न अभियुक्त-अपीलार्थी की किशोरता का है । प्रथम प्रश्न पर विचार करने पर न्यायालय का यह मत है कि यदि ऐसे दो मत हों, जो साक्ष्य के परिशीलन और विधि के उपयोजन से निकाले जा सकते हैं, तब वह मत अपनाया जाना चाहिए जो अभियुक्त का समर्थन करता है । इस दृष्टिकोण को इस न्यायालय द्वारा एक मानव अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है । इसलिए अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि उच्च न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषमुक्ति को उलटकर गलती की है, सही है । अपर सेशन न्यायाधीश ने उसे संदेह का फायदा देकर ठीक किया था । उस मत पर विचार किया जाना चाहिए जो अभियुक्त-अपीलार्थी का समर्थन करता है और यह न्यायालय उस प्रतिकूल मत को त्यक्त करता है जो

उसकी दोषिता को इंगित करता है । इस न्यायालय का यह भी मत है कि उच्च न्यायालय को अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा किए गए विनिश्चय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था, क्योंकि पारित किया गया निर्णय स्पष्ट रूप से अवैध, अनुचित नहीं है और उससे न्याय की हानि नहीं हुई है । (पैरा 9, 10 और 11)

अभियुक्त-अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा इस न्यायालय के समक्ष अभिवाचित इस दूसरे आधार में कोई बल नहीं है कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 7 के परिसाक्ष्यों पर विचार नहीं किया जाना चाहिए था क्योंकि वे हितबद्ध साक्षी हैं । इस न्यायालय की यह राय है कि हितबद्ध साक्षियों के परिसाक्ष्य बहुत महत्वपूर्ण होते हैं और उनमें बल होता है । कोई भी व्यक्ति वास्तविक अपराधी को छोड़कर किसी निर्दोष व्यक्ति को फंसाना नहीं चाहेगा । (पैरा 12)

इस न्यायालय के समक्ष अभिवाचित तीसरा और अंतिम आधार अभियुक्त-अपीलार्थी की किशोरता का अभिवाक् है । अभियुक्त-अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष बसियापाड़ा नोडल यू. पी. विद्यालय द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र की सही प्रति प्रस्तुत की है जिससे यह दर्शित होता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी की आयु घटना की तारीख को 18 वर्ष से कम थी । विद्यालय प्रमाणपत्र के अनुसार, अपीलार्थी की जन्म की तारीख 8 जुलाई, 1976 है । घटना की तारीख अर्थात् 28 अगस्त, 1993 को अपीलार्थी की आयु 17 वर्ष, एक माह और 20 दिन थी । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 7(क) के अधीन किशोरता का अभिवाक् किया है । यह अभिवाक् किसी भी न्यायालय के समक्ष और किसी भी समय पर किया जा सकता है । न्यायालय का यह विचार है कि काउंसेल द्वारा लिया गया आधार सही है और न्यायालय इस वर्तमान विचाराधीन अभिवाक् पर घटना कारित होने के समय अभियुक्त-अपीलार्थी की किशोरता को ध्यान में रखते हुए विचार करेगा । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, घटना के समय अभियुक्त-अपीलार्थी की आयु 18 वर्ष से कम थी । न्यायालय के ध्यान में यह लाया गया है कि अपीलार्थी ने लगभग आठ वर्ष कारागार में बिताए हैं । अपीलार्थी किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 2(ट) के अधीन "किशोर" की परिभाषा के अंतर्गत आता है । धारा 7(क) की आज्ञा के अनुसार वह किसी भी समय और किसी भी न्यायालय के समक्ष किशोरता का अभिवाक् कर सकता है और उसने ठीक

ही ऐसा किया है । न्यायालय के समक्ष किशोर न्याय आदर्श नियम, 2007 के नियम 12 में दी गई प्रक्रिया के अनुसार इस बात को साबित किया गया है और अभियुक्त-अपीलार्थी की आयु का अवधारण सही प्रक्रिया का अनुसरण करके किया गया है तथा इस संबंध में कोई संदेह नहीं है । दंडादेश के प्रश्न पर इस न्यायालय का यह विचार है कि अभियुक्त-अपीलार्थी को रिहा किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में, इस तथ्य के अतिरिक्त कि अभियुक्त-अपीलार्थी अपराध कारित करने के समय एक किशोर था, वह संदेह के फायदे का हकदार है । इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया दोषसिद्धि का आदेश विधि की दृष्टि में संधार्य नहीं है । यह मान लिया जाए कि यदि दोषसिद्धि कायम भी रखी जाती है, तो भी उपेन्द्र प्रधान लगभग आठ वर्ष का दंडादेश भुगत चुका है, जो कि 2000 के किशोर न्याय अधिनियम की धारा 15 के अधीन विहित अधिकतम तीन वर्ष की अवधि के दंडादेश से अधिक है । अतः, उसे अधिनियम के अधीन फायदा देते हुए यह न्यायालय उच्च न्यायालय के विनिश्चय को निष्फल करता है । (पैरा 12 और 13)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2014]	(2014) 13 एस. सी. सी. 427 : **हाकिम** बनाम **राज्य** ;	15
[2013]	(2013) 14 एस. सी. सी. 581 : **मोहम्मद इशाक** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	12
[2011]	(2011) 2 एस. सी. सी. 251 : **लखन लाल** बनाम **बिहार राज्य** ;	15
[2010]	(2010) 15 एस. सी. सी. 83 : **अजय कुमार** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	15
[2004]	(2004) 10 एस. सी. सी. 699 : **नरेन्द्र सिंह और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	10
[2003]	(2003) 8 एस. सी. सी. 180 : **राजस्थान राज्य** बनाम **राजा राम** ;	11
[2002]	(2002) 6 एस. सी. सी. 650 : **बिंदेश्वरी प्रसाद सिंह** बनाम **बिहार राज्य** ।	11

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 2174.

1995 की सरकारी अपील सं. 18 में उड़ीसा उच्च न्यायालय, कटक के तारीख 17 सितम्बर, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री ऋत्विक पांडा और सुश्री अंशु मलिक

प्रत्यर्थी की ओर से श्री शिबो शंकर मिश्रा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पिनाकी चन्द्र घोष ने दिया ।

न्या. घोष – यह अपील इस मामले में अपीलार्थी की दोषमुक्ति के विरुद्ध राज्य द्वारा फाइल की गई 1995 की सरकारी अपील सं. 18 में उड़ीसा उच्च न्यायालय, कटक द्वारा तारीख 17 सितम्बर, 2008 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय (दांडिक अपीली अधिकारिता का विस्तार) अधिनियम, 1970 की धारा 2 के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 379 के अधीन फाइल की गई है । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा सरकारी अपील मंजूर की और अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया तथा आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश दिया ।

2. वर्तमान मामले के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा यथा प्रकटित संगत तथ्य ये हैं कि उपेन्द्र प्रधान, देबेन्द्र प्रधान और रबिन्द्र प्रधान सनातन प्रधान के पुत्र हैं और जेमा देवी उसकी पत्नी है । सनातन प्रधान और उसके छोटे भाई बृंदाबन के पास उनके नाम में संयुक्त रूप से उनकी भूमियों के हक विलेख हैं । सौहार्द रूप से हुए बंटवारे के आधार पर वे भूमि पर काबिज थे । अभियोजन वृत्तांत के अनुसार, सनातन प्रधान और उसके छोटे भाई बृंदाबन के बीच तब एक विवाद उत्पन्न हुआ जब एक ऋण उपाप्त करने के लिए बृंदाबन ने अपनी भूमियों का पट्टा सौंपने का सनातन प्रधान का अनुरोध नहीं माना क्योंकि पट्टा उनकी माता के पास था । उसके पश्चात् तारीख 27 अगस्त, 1993 और 29 अगस्त, 1993 को पंचायत की बैठकें हुईं और यह विनिश्चय किया गया कि बृंदाबन अपनी माता से पट्टा लेगा और उसे सनातन प्रधान को सौंपेगा । अभियुक्त सनातन प्रधान और उसके परिवार के सदस्यों का बृंदाबन से पंचायत का निदेश न मानने के कारण वैर-भाव हो गया । सनातन प्रधान नाराज हो गया और उसने उसके परिवार को नष्ट करने की घोषणा की । अपनी जान के खतरे के भय से बृंदाबन अपने परिवार सहित अपने मकान को छोड़कर अपने गांव के केशब प्रधान

(अभि. सा. 10) के मकान में रहने लगा । तारीख 29 अगस्त, 1993 को अपराह्न में लगभग 8.00 बजे बृंदाबन अपने तीन बच्चों संजीब, प्रवासिनी और राजीब तथा पत्नी राधा प्रधान (अभि. सा. 1) के साथ अपने मकान पर वापस आया । उनको देखकर अभियुक्त सनातन और जेमा देवी ने अन्य अभियुक्तों को बुलाया । जैसे ही बृंदाबन ने अपने मकान में प्रवेश किया और अपने बच्चों को चारपाइयों पर सोने के लिए कहा, तभी अभियुक्त रबिन्द्र, देबेन्द्र और उपेन्द्र, जो कुल्हाड़ी और लाठी से लैस थे, उनकी ओर भागे । अभियुक्त रबिन्द्र ने कुल्हाड़ी से उसकी गर्दन और सिर पर दो प्रहार किए । अभियुक्त देबेन्द्र ने कुल्हाड़ी से बृंदाबन के सिर पर प्रहार किया । बृंदाबन को अत्यधिक रक्तस्राव होने लगा और रेंगते हुए नजदीक ही कुलामणी बुधिया के मकान में चला गया । वहां वह बेहोश हो गया । उसके पश्चात् अभियुक्त सनातन प्रधान के तीनों पुत्रों ने अपना ध्यान उसके बच्चों पर केंद्रित किया और उपेन्द्र तथा देबेन्द्र ने बड़े पुत्र संजीब को पकड़ लिया और अभियुक्त रबिन्द्र ने कुल्हाड़ी से प्रहार करके गर्दन और शरीर के अन्य अंगों पर क्षतियां कारित कीं । फिर अभियुक्त उपेन्द्र ने बालिका प्रवासिनी को क्षतियां कारित कीं और उसकी हत्या कर दी । उसके पश्चात् अभियुक्त देबेन्द्र और उपेन्द्र ने बृंदाबन प्रधान के दूसरे पुत्र राजीब को पकड़ लिया और अभियुक्त रबिन्द्र ने कुल्हाड़ी से प्रहार करके उसकी हत्या कर दी । अभियोजन वृत्तांत के अनुसार, यह संपूर्ण घटना मृतकों की माता-अभि. सा. 1, अभि. सा. 6 और अभि. सा. 12 द्वारा देखी गई थी । अभि. सा. 1 की चिल्लाने की आवाज सुनकर जब ग्रामवासी बाहर निकल कर आए, तो अभियुक्त व्यक्ति भाग गए और अभि. सा. 1 सभी तीनों मृतक बच्चों को कमरे के अंदर से मकान के सामने की तरफ लेकर आई । बृंदाबन प्रधान बुरी तरह से क्षतिग्रस्त हालत में पड़ोसी के मकान में बेहोश पड़ा हुआ था । स्थानीय सरपंच ने जाजुमुरा पुलिस थाने में मामले की इत्तिला दी । इस इत्तिला के आधार पर अन्वेषण किया गया, आरोप पत्र फाइल किया गया और सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करने के पश्चात् भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 307 और 302 के अधीन आरोप विरचित किए गए ।

3. अपर सेशन न्यायाधीश के न्यायालय में अभियोजन पक्ष ने अभियुक्तों के आरोपों को सिद्ध करने के लिए 15 साक्षियों की परीक्षा कराई जिनमें अभि. सा. 1 क्षतिग्रस्त अभि. सा. 7 की पत्नी और मृतकों की माता है, अभि. सा. 6, 8, 9, 11 और 12 स्थानीय व्यक्ति हैं, अभि. सा. 3 से

अभि. सा. 5 डाक्टर हैं, अभि. सा. 10 और अभि. सा. 13 पुलिस कांस्टेबल हैं, अभि. सा. 14 अन्वेषक अधिकारी है और अभि. सा. 15 न्यायिक अधिकारी, प्रथम श्रेणी, संबलपुर है । प्रतिरक्षा पक्ष ने एक साक्षी, प्रति. सा. 1 दामोदर प्रधान, की परीक्षा कराई । सेशन न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के विश्लेषण के आधार पर यह विनिश्चित किया कि अभि. सा. 1 के घटनास्थल पर मौजूद होने और अभियुक्त सनातन या अन्य पुरुष अभियुक्तों द्वारा अभि. सा. 7 को दी गई धमकी के पहलू पर अभि. सा. 1, 7, 6, 9, 11 और 12 के साक्ष्य में कुछ विरोधाभास और विसंगतियां हैं । प्रतिरक्षा साक्षी (प्रति. सा. 1) ने घटनास्थल पर अभियुक्त सनातन की मौजूदगी को अपवर्जित किया क्योंकि वे दोनों फुलजिजारन से घर गए थे और अभियुक्त सनातन अपराह्न में 7.00 बजे से 9.00 बजे या 10.00 बजे तक उसके साथ था । अपर सेशन न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि तीन पुरुष व्यक्ति दोषी हैं । महिला अभियुक्त को इस मामले में अभि. सा. 1 के बढ़ा-चढ़ाकर दिए गए बयान के आधार पर मिथ्या रूप से फंसाया गया है और स्वतंत्र साक्षी की संपुष्टि से समर्थित नहीं है । तथापि, अभियोजन पक्ष द्वारा अभि. सा. 12 के इस साक्ष्य को इस सीमा तक चुनौती नहीं दी गई है कि वह कुलामणी बुधिया के बरामदे में बीड़ी बना रही थी और अभियुक्त उपेन्द्र घटनास्थल पर मौजूद नहीं था । मृतका प्रवासिनी को उपेन्द्र द्वारा पकड़े जाने में निभाई गई भूमिका के बारे में अभि. सा. 1 और अभि. सा. 6 के कथन एक-दूसरे के अनुरूप नहीं हैं । इन आधारों पर अपर सेशन न्यायाधीश ने उपेन्द्र प्रधान (इस मामले में अपीलार्थी) और जेमा देवी को संदेह का फायदा दिया और उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 307 और 302/34 के अधीन दोषी नहीं पाया ।

4. उच्च न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि अभियुक्त जेमा देवी के विरुद्ध अभियोजन पक्ष का अभिकथन उकसाने के संबंध में था जबकि अभियुक्त उपेन्द्र के विरुद्ध अभिकथन तीनों बच्चों की हत्या में सक्रिय भागीदारी निभाने के संबंध में था । सनातन और रबिन्द्र पर अधिरोपित मृत्यु दंडादेश को देखते हुए विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 366 के अधीन एक निर्देश किया और इसे 1994 के मृत्यु दंडादेश का निर्देश सं. 1 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया । अभियुक्त सनातन, देबेन्द्र और रबिन्द्र ने भी वर्ष 1994 में कारागार से अपीलें फाइल कीं ।

5. उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने निर्देश और कारागार

दांडिक अपीलें साथ-साथ सुनीं और तारीख 27 मार्च, 1995 को इनका निपटारा किया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्येक अपीलार्थी के विरुद्ध अभ्यारोपण सभी युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किए गए हैं । इसलिए विचारण न्यायालय का अपीलार्थियों की दोषसिद्धि अभिलिखित करने वाला आदेश कायम रखा गया । तथापि, मृत्यु दंडादेश के मामले में उच्च न्यायालय का यह मत था कि अपराध के पीछे की परिस्थितियां नरम दृष्टिकोण अपनाने के लिए पर्याप्त हैं और तदनुसार उच्च न्यायालय ने आजीवन कारावास दिया । उसके पश्चात् राज्य ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(1) के अधीन निर्णय के विरुद्ध अपील के लिए इजाजत हेतु आवेदन फाइल किया और तारीख 15 मई, 1995 को इजाजत दी गई और उच्च न्यायालय में सरकारी अपील रजिस्ट्रीकृत की गई । इसी बीच, उच्च न्यायालय के आदेश के फलस्वरूप अभियुक्त उपेन्द्र जमानत पर था । तथापि, उच्च न्यायालय ने अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा किए गए विनिश्चय को उलट दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि जब अभियुक्त उपेन्द्र तीन निर्दोष बच्चों की हत्या करने में पक्षकार था तो वह अन्य अभियुक्तों की तरह भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी है । उच्च न्यायालय ने यह अभिलिखित किया कि कोई अन्य दृष्टिकोण अपनाने की बजाय इस अभियुक्त को समुचित दंड दिया जाना चाहिए और उपेन्द्र को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया और उसे आजीवन कारावास का दंडादेश दिया, क्योंकि यह दंडादेश भारतीय दंड संहिता की धारा 302 में उपबंधित अनुसार आनुकल्पिक और कमतर दंड है । उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी उपेन्द्र प्रधान को दंडादेश भोगने के लिए अभिरक्षा में लेने का आदेश दिया ।

6. इस न्यायालय में अपीलार्थी उपेन्द्र प्रधान की ओर से काउंसेल ने यह दलील दी कि घटना घटने के पश्चात् स्थानीय सरपंच ने पुलिस थाने में मामले की इत्तिला दी थी और अन्वेषण के पश्चात् भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 307 और 302 के अधीन आरोप विरचित किए गए थे । तथापि, वर्तमान अपीलार्थी के विरुद्ध ऐसा कोई विनिर्दिष्ट निष्कर्ष नहीं है । यह भी दलील दी गई कि अपर सेशन न्यायाधीश ने विचारण के पश्चात् अपीलार्थी को उसकी माता सहित दोषमुक्त कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि महिला अभियुक्त को अभि. सा. 1 के बढ़ा-चढ़ाकर दिए गए बयान के आधार पर फंसाया गया है और उसके बयान स्वतंत्र साक्षी की संपुष्टि द्वारा समर्थित नहीं है । अपर सेशन

न्यायाधीश ने यह भी उल्लेख किया कि अभियोजन पक्ष द्वारा अभि. सा. 12 के साक्ष्य कि वह कुलामणी बुधिया के बरामदे में बीड़ी बना रही थी और अभियुक्त उपेन्द्र घटनास्थल पर मौजूद नहीं था, इस सीमा तक चुनौती नहीं दी गई है । न्यायालय ने अपीलार्थी को संदेह का फायदा दिया क्योंकि मृतका प्रवासिनी को पकड़ने में उपेन्द्र द्वारा निभाई गई भूमिका वाले भाग के बारे में अभि. सा. 1 से अभि. सा. 6 के कथन एक-दूसरे के समरूप नहीं हैं । विद्वान् काउंसेल ने आगे यह दलील दी कि अपर सेशन न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभि. सा. 1 ने यह कथन किया कि अभि. सा. 2, अभि. सा. 6, अभि. सा. 8 और अभि. सा. 12 ने बच्चों के केवल शव देखे थे । अपीलार्थी द्वारा हमारे समक्ष आगे यह बताया गया कि अभि. सा. 6 अभि. सा. 1 की चाची है और अभि. सा. 12 डर के मारे भाग गया था और इसलिए उच्च न्यायालय ने कतिपय गलत उपधारणा और निर्वचन के आधार पर अपीलार्थी की दोषमुक्ति के आदेश को उलटकर गलती की है । अपीलार्थी ने किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के अधीन किशोर होने का अभिवाक् किया और तदनुसार इस न्यायालय के समक्ष धारा 7(क) के अधीन किशोरता का दावा किया और यह कथन किया कि उच्च न्यायालय ने इस पहलू को अभिलिखित तो किया किंतु इस पर कार्यवाही नहीं की । हमारे ध्यान में यह लाया गया कि अपीलार्थी पहले ही कारागार में आठ वर्ष की अवधि का दंडादेश भुगत चुका है ।

7. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने हमारे समक्ष यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने दंडादेश को उपांतरित करते हुए और दोषसिद्धि को कायम रखते हुए सभी अभियोजन साक्षियों के परिसाक्ष्य पर विश्वास किया और यह राय व्यक्त की कि अभियोजन पक्ष ने मामले को विश्वासप्रद साक्षियों के विश्वसनीय साक्ष्यों द्वारा पूरी तरह से साबित किया है । इस प्रकार, विचारण न्यायालय के लिए उन्हीं साक्षियों पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं था । साक्षियों ने अखंडनीय रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वर्तमान अपीलार्थी घटनास्थल पर न केवल मौजूद था अपितु लाठी से लैस भी था । वर्तमान मामले में प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अभि. सा. 1 है, जो मृतकों की माता और बृंदाबन की पत्नी है, उसने अपने परिसाक्ष्य में उन तथ्यों का उल्लेख किया है जिनकी संपुष्टि अन्य साक्षियों के परिसाक्ष्यों द्वारा की गई है और इस प्रकार वे तथ्य अखंडनीय हैं । अभि. सा. 1, 6, 7 और 12 ने घटना को सुस्पष्ट रूप से वर्णित किया और प्रतिरक्षा पक्ष प्रतिपरीक्षा में कुछ निकाल नहीं सका । इस प्रकार, विद्वान् काउंसेल ने यह

दलील दी कि अभियोजन पक्ष ने मामले को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किया है । विद्वान् काउंसेल ने अंततः यह दलील दी कि विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष तो निकाला कि अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किया है, किंतु अकस्मात् यह उल्लेख किया कि अभि. सा. 6 और अभि. सा. 12 के परिसाक्ष्यों से उपेन्द्र द्वारा निभाई गई भूमिका के संबंध में संदेह उत्पन्न होता है । विचारण न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण गलत है और उच्च न्यायालय ने ठीक ही सही दृष्टिकोण अपनाया है ।

8. हमने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

9. हमारे विचार के लिए मुख्य रूप से तीन प्रश्न हैं । प्रथम यह है कि क्या अभियुक्त-अपीलार्थी का समर्थन करने वाले मौजूद दृष्टिकोण पर विचार किया जाना चाहिए या नहीं । दूसरा यह है कि क्या अभियोजन साक्षियों, अभि. सा. 1 और अभि. सा. 7, के हितबद्ध साक्षी होने के कारण उनका अवलंब लिया जाना चाहिए । तीसरा प्रश्न अभियुक्त-अपीलार्थी की किशोरता का है ।

10. प्रथम प्रश्न पर विचार करने पर हमारा यह मत है कि यदि ऐसे दो मत हों, जो साक्ष्य के परिशीलन और विधि के उपयोजन से निकाले जा सकते हैं, तब वह मत अपनाया जाना चाहिए जो अभियुक्त का समर्थन करता है । इस दृष्टिकोण को इस न्यायालय द्वारा एक मानव अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है । **नरेन्द्र सिंह और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निर्दोषिता की उपधारणा को एक मानव अधिकार के रूप में मान्यता दी और यह मत व्यक्त किया कि :–

> "30. अब यह सुस्थिर है कि संदेह का फायदा अभियुक्त को दिया जाना चाहिए । यह भी घिसी-पिटी बात है कि संदेह चाहे कितना भी मजबूत क्यों न हो, सबूत का स्थान नहीं ले सकता है । यह भी समान रूप से सुस्थिर है कि 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच एक लंबी दूरी है ।
>
> 31. यह भी सुविख्यात है कि ऐसे मामले में भी, जिसमें कहीं ओर मौजूद होने का अभिवाक् किया जाता है, सबूत का भार अभियोजन पक्ष पर होता है । निर्दोषिता की उपधारणा एक मानव

[1] (2004) 10 एस. सी. सी. 699.

अधिकार है । ऐसी उपधारणा तब और भी मजबूत हो जाती है जब दोषमुक्ति का निर्णय पारित किया गया हो । किसी उच्चतर न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति के निर्णय को उलटने के लिए इस न्यायालय ने अनेक विनिश्चयों में विधिक सिद्धांत उपवर्णित किए हैं जिनका उच्च न्यायालय द्वारा पालन नहीं किया गया है (धन्ना **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य, महाबीर सिंह **बनाम** हरियाणा राज्य और शैलेन्द्र प्रताप **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य वाले मामले देंखे) ।

* * * *

33. इस प्रकार, मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् हमारी यह राय है कि बिमला देवी की मृत्यु का कारण यद्यपि रहस्यात्मक है किंतु इसका फायदा अपीलार्थियों को मिलना चाहिए क्योंकि दो मत संभव होने की स्थिति में जो मत अभियुक्तों के समर्थन में है उसे कायम रखा जाना चाहिए ।"

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है)

11. इस न्यायालय द्वारा ऊपरवर्णित मामले में किए गए विनिश्चय को **राजस्थान राज्य** बनाम **राजा राम**[1] वाले मामले में भी दोहराया गया है जिसमें इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है :–

"साधारणतया दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा क्योंकि अभियुक्त की निर्दोषिता की उपधारणा दोषमुक्ति से और भी मजबूत हो जाती है । दांडिक मामलों में न्याय प्रशासन के तानेबाने के अंतर्गत आने वाला स्वर्णिम सूत्र यह है कि मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर यदि दो मत संभव हों, जिनमें से एक अभियुक्त की दोषिता को और दूसरा उसकी निर्दोषिता को इंगित करता हो, तो जो मत अभियुक्त के समर्थन में है उसे अपनाया जाना चाहिए । न्यायालय का सर्वोपरि ध्यान यह सुनिश्चित करना होना चाहिए कि न्याय की हानि न हो । न्याय की हानि जो किसी दोषी की दोषमुक्ति से उद्भूत हो सकती है वह किसी निर्दोष की दोषसिद्धि से होने वाली हानि से कम नहीं है । ऐसे मामले में, जिसमें ग्राह्य साक्ष्य की अनदेखी की गई है, अपीली न्यायालय का यह कर्तव्य हो जाता है कि ऐसे मामले में जहां अभियुक्त को दोषमुक्त किया गया

[1] (2003) 8 एस. सी. सी. 180.

है, या यह अभिनिश्चित करने के लिए कि क्या किसी अभियुक्त ने कोई अपराध कारित किया है या नहीं, साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करे । (भगवान सिंह **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य वाला मामला देंखे) । दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध अपील पर विचार करने के लिए अपीली न्यायालय द्वारा अनुसरण किया जाने वाला सिद्धांत यह है कि इसमें केवल तभी हस्तक्षेप किया जाए जब ऐसा करने के लिए बाध्यकारी और सारभूत कारण हों । यदि आक्षेपित निर्णय स्पष्ट तौर पर अयुक्तियुक्त है, तो यह हस्तक्षेप करने के लिए एक बाध्यकारी कारण है ।"

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है)

इसलिए अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि उच्च न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषमुक्ति को उलटकर गलती की है, सही है । अपर सेशन न्यायाधीश ने उसे संदेह का फायदा देकर ठीक किया था । उस मत पर विचार किया जाना चाहिए जो अभियुक्त-अपीलार्थी का समर्थन करता है और हम उस प्रतिकूल मत को त्यक्त करते हैं जो उसकी दोषिता को इंगित करता है । हमारा यह भी मत है कि उच्च न्यायालय को अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा किए गए विनिश्चय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था, क्योंकि पारित किया गया निर्णय स्पष्ट रूप से अवैध, अनुचित नहीं है और उससे न्याय की हानि नहीं हुई है । **बिंदेश्वरी प्रसाद सिंह** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण अधिकारिता की व्याप्ति के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया कि "किसी स्पष्ट अवैधता, अनुचितता और न्याय की हानि के अभाव में उच्च न्यायालय के लिए अभियुक्त की दोषमुक्ति के समवर्ती निष्कर्ष में केवल इस कारण हस्तक्षेप करना न्यायसंगत नहीं होगा कि साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन पर उसने अभियोजन साक्षियों का परिसाक्ष्य विश्वसनीय पाया है जबकि विचारण न्यायालय ने प्रतिकूल दृष्टिकोण अपनाया हो ।" हमारे समक्ष मामले में ऐसी ही स्थिति है और हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित उपेन्द्र प्रधान की दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करके गलत किया है ।

12. अभियुक्त-अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा हमारे समक्ष अभिवाचित इस दूसरे आधार में कोई बल नहीं है कि अभि. सा. 1

---

[1] (2002) 6 एस. सी. सी. 650.

और अभि. सा. 7 के परिसाक्ष्यों पर विचार नहीं किया जाना चाहिए था क्योंकि वे हितबद्ध साक्षी हैं । हमारी यह राय है कि हितबद्ध साक्षियों के परिसाक्ष्य बहुत महत्वपूर्ण होते हैं और उनमें बल होता । कोई भी व्यक्ति वास्तविक अपराधी को छोड़कर किसी निर्दोष व्यक्ति को फंसाना नहीं चाहेगा । **मोहम्मद इशाक** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[1] वाले मामले में इस मत को दोहराया गया है ।

13. हमारे समक्ष अभिवाचित तीसरा और अंतिम आधार अभियुक्त-अपीलार्थी की किशोरता का अभिवाक् है । अभियुक्त-अपीलार्थी ने हमारे समक्ष बसियापाड़ा नोडल यू. पी. विद्यालय द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र की सही प्रति प्रस्तुत की है जिससे यह दर्शित होता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी की आयु घटना की तारीख को 18 वर्ष से कम थी । विद्यालय प्रमाणपत्र के अनुसार, अपीलार्थी की जन्म की तारीख 8 जुलाई, 1976 है । घटना की तारीख अर्थात 28 अगस्त, 1993 को अपीलार्थी की आयु 17 वर्ष, एक माह और 20 दिन थी । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 7(क) के अधीन किशोरता का अभिवाक् किया है । यह अभिवाक् किसी भी न्यायालय के समक्ष और किसी भी समय पर किया जा सकता है । हमारा यह विचार है कि काउंसेल द्वारा लिया गया आधार सही है और हम इस वर्तमान विचाराधीन अभिवाक् पर घटना कारित होने के समय अभियुक्त-अपीलार्थी की किशोरता को ध्यान में रखते हुए विचार करेंगे । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, घटना के समय अभियुक्त-अपीलार्थी की आयु 18 वर्ष से कम थी । हमारे ध्यान में यह लाया गया है कि अपीलार्थी ने लगभग आठ वर्ष कारागार में बिताए हैं । अपीलार्थी किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 2(ट) के अधीन "किशोर" की परिभाषा के अंतर्गत आता है । धारा 7(क) की आज्ञा के अनुसार वह किसी भी समय और किसी भी न्यायालय के समक्ष किशोरता का अभिवाक् कर सकता है और उसने ठीक ही ऐसा किया है । हमारे समक्ष किशोर न्याय आदर्श नियम, 2007 के नियम 12 में दी गई प्रक्रिया के अनुसार इस बात को साबित किया गया है और अभियुक्त-अपीलार्थी की आयु का अवधारण सही प्रक्रिया का अनुसरण करके किया गया है तथा इस संबंध में कोई संदेह नहीं है ।

14. दंडादेश के प्रश्न पर हमारा यह विचार है कि अभियुक्त-अपीलार्थी

---

[1] (2013) 14 एस. सी. सी. 581.

को रिहा किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में, इस तथ्य के अतिरिक्त कि अभियुक्त-अपीलार्थी अपराध कारित करने के समय एक किशोर था, वह संदेह के फायदे का हकदार है । इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया दोषसिद्धि का आदेश विधि की दृष्टि में संधार्य नहीं है । यह मान लिया जाए कि यदि दोषसिद्धि कायम भी रखी जाती है, तो भी उपेन्द्र प्रधान लगभग आठ वर्ष का दंडादेश भुगत चुका है, जो कि 2000 के किशोर न्याय अधिनियम की धारा 15 के अधीन विहित अधिकतम तीन वर्ष की अवधि के दंडादेश से अधिक है । अतः, उसे अधिनियम के अधीन फायदा देते हुए हम उच्च न्यायालय के विनिश्चय को निष्फल करते हैं । इस न्यायालय ने बारम्बार अनेक निर्णयों में 2000 के अधिनियम के अधीन फायदे और दंडादेश के प्रश्न पर अभिनिर्धारित किया है ।

15. **अजय कुमार** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

> "पूर्वोक्त उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, वह अवधि जिसके लिए किसी किशोर को विशेष गृह में रखा जा सकता है, तीन वर्ष है । प्रस्तुत मामले में, हमें यह सूचित किया गया है कि अपीलार्थी ने, जिसे किशोर साबित किया गया है, लगभग 14 वर्ष की अवधि तक निरुद्ध रहा है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, चूंकि इस मामले में अपीलार्थी अपराध कारित करने की तारीख को अप्राप्तवय था और उसने किशोर न्याय अधिनियम की धारा 15 के अधीन यथा उपबंधित निरोध की अधिकतम अवधि से अधिक अवधि पहले ही भुगत ली है, इसलिए किशोर न्याय नियम, 2007 के साथ पठित किशोर न्याय अधिनियम की धारा 15 को अनुसरण करते हुए हम इस अपील को मंजूर करते हैं और यह निदेश देते हैं कि अपीलार्थी को तुरंत रिहा कर दिया जाए ।"

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है)

हाकिम बनाम **राज्य**[2] और **लखन लाल** बनाम **बिहार राज्य**[3] वाले मामलों में दंडादेश के प्रश्न पर इसी मत का अनुसरण किया गया था ।

16. इसलिए उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम इस अपील

---

[1] (2010) 15 एस. सी. सी. 83.

[2] (2014) 13 एस. सी. सी. 427.

[3] (2011) 2 एस. सी. सी. 251.

को मंजूर करते हैं और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त करते हैं । अपीलार्थी को इस न्यायालय के तारीख 15 अप्रैल, 2014 के आदेश द्वारा जमानत पर रिहा किया गया है । उसके जमानत बंधपत्र उन्मोचित किए जाते हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2015] 3 उम. नि. प. 87

कृष्णा टेक्सपोर्ट एंड केपिटल मार्किट्स लि.

बनाम

ईला ए. अग्रवाल और अन्य

6 मई, 2015

न्यायमूर्ति पिनाकी चन्द्र घोष और न्यायमूर्ति उदय उमेश ललित

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26) – धारा 138 और 141 – चैक का अनादरण – कंपनी द्वारा अपराध – अपीलार्थी-परिवादी द्वारा कंपनी को मांग सूचना जारी किया जाना – निदेशकों को व्यक्तिगत तौर पर अलग से सूचना जारी न किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा कंपनी को दोषसिद्ध किया जाना किंतु निदेशकों को अलग से सूचना जारी न किए जाने के कारण दोषमुक्त किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अपील के लिए इजाजत न दिया जाना – धारा 138 के अधीन चैक के लेखीवाल के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को सूचना जारी किया जाना अनुध्यात नहीं है और कंपनी को जारी की गई मांग की सूचना से कंपनी के कार्यकलापों के भारसाधक और उत्तरदायी व्यक्ति स्वाभाविक तौर पर ऐसी सूचना से अभिज्ञ होंगे और इसलिए सभी निदेशकों को व्यक्तिगत तौर पर अलग-अलग सूचना जारी किया जाना अपेक्षित नहीं है ।

अपीलार्थी की ओर से तारीख 14 सितम्बर, 1996 को चैक के अनादरण के लिए परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन एक कंपनी मैसर्स इंडो फ्रैंच बायो टेक इंटरप्राइजिज लिमिटेड को

एक सूचना जारी की गई थी । सूचना में प्रेषिती से यह अपेक्षा की गई कि इस सूचना की प्राप्ति के 15 दिन के भीतर चैक की रकम का संदाय किया जाए । सूचना का कोई उत्तर नहीं भेजा गया । इसके पश्चात् अपीलार्थी ने कंपनी, कंपनी के अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक श्री के. जे. बोडीवाला और प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 सहित 11 अन्य निदेशकों के विरुद्ध अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, मुम्बई के समक्ष परिवाद फाइल किया । उक्त परिवाद मामले के लंबित रहने के दौरान, अभियुक्त सं. 3 से 5, 7, 9 से 13 के विरुद्ध जारी की गई आदेशिका वापस ले ली गई तथा श्री बोडीवाला की मृत्यु हो जाने के कारण उसके विरुद्ध कार्यवाहियों का भी उपशमन हो गया, जिसके परिणामस्वरूप कंपनी तथा अभियुक्तों की सूची में क्रमशः अभियुक्त सं. 6 और 8 वर्तमान प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 अर्थात् सुश्री ईला ए. अग्रवाल और श्री प्रफुल्ल रंदिव रह गए । विचारण के दौरान यह तथ्य पाए गए कि निदेशकों को व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग सूचनाएं नहीं दी गई थीं । मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट ने कंपनी को दोषसिद्ध किया किंतु प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को अधिनियम की धारा 138 के अधीन दंडनीय अपराध से दोषमुक्त कर दिया । अपीलार्थी ने व्यथित होकर प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को दोषमुक्त करने वाले निर्णय के विरुद्ध यह अभिवाक् करते हुए कि निदेशकों को व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग सूचना तामील करना आवश्यक नहीं था और कंपनी को सूचना तामील करना ही पर्याप्त था अपील करने के लिए इजाजत की ईप्सा करते हुए उच्च न्यायालय में दांडिक आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय ने बी. रमन और अन्य वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय का अवलंब लेते हुए यह मत व्यक्त किया कि निदेशकों को अलग-अलग सूचनाएं जारी करना आज्ञापक है और दांडिक आवेदन खारिज कर दिया । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अनुसार, जहां किसी व्यक्ति द्वारा उसके द्वारा रखे गए खाते पर लिखा गया कोई चैक बैंक द्वारा उक्त धारा में वर्णित कारणों से असंदत्त लौटा दिया जाता है, वहां ऐसे व्यक्ति के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने अपराध किया है । इस धारा के परंतुक में तीन शर्तें अनुबंधित हैं जिनका समाधान होने पर अपराध पूर्ण होना कहा जा सकता है । इस परंतुक में, अन्य बातों के साथ-साथ, पाने वाले के लिए यह आबद्धकर है कि वह "चैक के लेखीवाल को" लिखित में सूचना देकर उक्त धनराशि के संदाय की मांग

करे और यदि "चैक का लेखीवाल" उक्त सूचना की प्राप्ति के पंद्रह दिन के भीतर उक्त रकम का संदाय करने में असफल रहता है, तो उक्त परंतुक में अनुबंधित प्रक्रम पूर्ण हो जाते हैं । धारा 138 के अधीन "चैक के लेखीवाल को" सूचना दिया जाना अपेक्षित है जिससे कि लेखीवाल को संदाय करने का अवसर दिया जा सके और शास्तिक परिणामों से बच सके । धारा 138 द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को ऐसी सूचना दिए जाने का हकदार होना अनुध्यात नहीं है । धारा 138 की सरल भाषा बहुत ही स्पष्ट है और किसी संदेह या संदिग्धता की कोई गुंजाइश नहीं है । धारा 138 में ऐसा कुछ नहीं है जिससे दूर-दूर तक भी लेखीवाल के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को सूचना जारी किया जाना इंगित होता हो । धारा 141 में यह उपबंधित है कि यदि धारा 138 के अधीन अपराध करने वाला व्यक्ति कोई कंपनी है तो ऐसी कंपनी का प्रत्येक निदेशक, जो कंपनी का भारसाधक है और इसके कारबार के संचालन के लिए उत्तरदायी है, दोषी समझा जाएगा । प्रतिनिधिक दायित्व सृजित करने का कारण स्पष्ट रूप से यह है कि कोई विधिक सत्ता अर्थात् कंपनी उन जीवित व्यक्तियों द्वारा चलाई जाएगी जो इसके कार्यकलापों के भारसाधक हैं और जो उस कंपनी के कार्यों के मार्गदर्शक हैं और यदि ऐसी विधिक सत्ता दोषी है, तो जो उसके कार्यकलापों के लिए इसके लिए उत्तरदायी हैं और जो ऐसी विधिक सत्ता के कार्यों का मार्गदर्शन करते हैं, को उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए और उनके विरुद्ध कार्यवाही की जानी चाहिए । धारा 141 में ऐसी कोई अपेक्षा भी अधिकथित नहीं है कि ऐसी स्थिति में निदेशकों को धारा 138 के अधीन व्यक्तिगत तौर पर अलग-अलग सूचनाएं जारी किया जाना आवश्यक है । वे व्यक्ति जो कंपनी के कार्यकलापों के भारसाधक हैं और उसके कार्यकलाप चलाते हैं, स्वाभाविक तौर पर उस कंपनी को धारा 138 के अधीन जारी की गई सूचना से अवश्य अभिज्ञ होंगे । स्पष्ट तौर पर यही कारण है कि ऐसे निदेशकों को अतिरिक्त रूप से कोई सूचना दिया जाना अनुध्यात नहीं है । "लेखीवाल" कंपनी को दिया गया अवसर जो उस कंपनी के कार्यकलापों के भारसाधक हैं, उनके लिए पर्याप्त समझा जाता है । यदि उनका यह पक्षकथन है कि अपराध उनकी जानकारी के बिना कारित किया गया है या उन्होंने ऐसे अपराध के कारित होने को निवारित करने के लिए सम्यक् तत्परता बरती थी, तो यह विचारण में समुचित प्रक्रम पर विचार किए जाने के लिए एक प्रतिरक्षा का मामला होगा और निश्चित रूप से न कि धारा 138 के अधीन सूचना के प्रक्रम पर विचार किया जाने वाला मामला । यदि संबंधित उपबंधों में इस अपेक्षा का यह अर्थ लगाया जाता है

कि निदेशकों को ऐसी अलग-अलग सूचनाएं अवश्य अतिरिक्त रूप से दी जानी चाहिएं, तो ऐसा न केवल इस उपबंध के स्पष्ट अर्थ और अर्थान्वयन के विरुद्ध होगा अपितु यह धारा 138 के अधीन उपचार को पूरी तरह से दुष्कर बना देगा । किसी प्रस्तुत मामले में कंपनी द्वारा धारा 138 के अधीन सूचना प्राप्त होने पर कंपनी की ओर से की गई साधारण चूक या उपेक्षा को आसानी से सुधारा जा सकता है और संशोधित किया जा सकता है । इस प्रक्रम पर उन सभी निदेशकों को सूचनाएं जारी करना अनावश्यक होगा, जिनके नामों को पाने वाला इस प्रक्रम पर जानता भी न हो । धारा 138 के द्वितीय परंतुक के अधीन, मांग की सूचना चैक के अनादर होने के तीस दिन के भीतर दी जानी चाहिए और तीसरे परंतुक में लेखीवाल को रकम का संदाय करने तथा शास्तिक परिणामों से बचने के लिए पंद्रह दिन का समय दिया गया है । धारा 142 के खंड (क) के अधीन, परिवाद उस तारीख से एक माह के भीतर फाइल किया जाना आवश्यक है जिस तारीख को धारा 138 के तीसरे परंतुक के अधीन वाद हेतुक उद्‌भूत होता है । इस प्रकार परिवाद अनादर होने के पचहत्तर दिन की कुल अवधि के भीतर फाइल किया जा सकता है और इस समय में परिवादी उन नामों और अन्य ब्यौरों के विषय में अपेक्षित जानकारी जुटा सकता है कि कंपनी के कौन व्यक्ति भारसाधक हैं और वे किस प्रकार कंपनी के कार्यकलापों के लिए उत्तरदायी हैं । किंतु यदि यह न्यायालय उस तर्क को स्वीकार कर लेता है जिस पर उच्च न्यायालय ने वर्तमान मामले में बल दिया है, तो यह अवधि घटकर केवल तीस दिन रह जाती है । इसके अतिरिक्त, अधिनियम की धारा 142 के खंड (ख) के परंतुक के विपरीत यह अवधि अविस्तीर्ण है । इस प्रकार, किसी अनादृत चैक के ऊपरवाल के फायदे के लिए सृजित यह संक्षिप्त उपचार पूरी तरह से दुष्कर हो जाएगा और इसे निष्फल कर देगा । न्यायालय के मत में, अधिनियम की धारा 138 में इस अपेक्षा का अर्थ लगाने की कोई आवश्यकता या गुंजाइश नहीं है कि प्रश्नगत कंपनी के निदेशकों को भी अधिनियम की धारा 138 के अधीन अलग-अलग सूचनाएं अवश्य जारी की जानी चाहिएं । ऐसे निदेशक, जो कंपनी के भारसाधक हैं और कंपनी के कार्यकलापों के लिए उत्तरदायी हैं, कंपनी को धारा 138 के अधीन प्राप्त सूचना की जानकारी रही होगी । इसलिए न तो शाब्दिक अर्थान्वयन और न ही उद्‌देश्यपूर्ण कसौटी के आधार पर अधिनियम की धारा 138 में ऐसी अपेक्षा का अर्थ लगाया जा सकता है या लगाया जाना चाहिए । परिणामतः, यह अपील सफल होती है । उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आदेश अपास्त किया जाता है । चूंकि मामला अपील के

लिए इजाजत के आवेदन पर विचार करने के प्रक्रम पर था और उच्च न्यायालय द्वारा मामले के गुणागुण पर विचार नहीं किया गया था, इसलिए यह न्यायालय मामले को नए सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित करता है जिसका यथासंभव शीघ्र विनिश्चय किया जाए । ऐसा निष्कर्ष निकालते हुए यह न्यायालय यह अभिलिखित करना चाहेगा कि बी. रमन और अन्य बनाम मैसर्स शासुन केमिकल्स एंड ड्रग्स लिमिटेड वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ का विनिश्चय गलत था और इसे उलटा जाता है । (पैरा 13, 14, 15 और 16)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 191 डीएलटी 318 : **रंजीत तिवारी** बनाम **नरेन्द्र नय्यर** ;	5
[2007]	(2007) 9 एस. सी. सी. 481 : **एन. के. वाही** बनाम **शेखर सिंह** ;	8,9
[2006]	2006 क्रिमिनल ला जर्नल पृष्ठ 4552 : **बी. रमन और अन्य** बनाम **मैसर्स शासुन केमिकल्स एंड ड्रग्स लिमिटेड** ;	4,6,7,8
[2005]	(2005) 2 एस. सी. सी. 271 : **नाथी देवी** बनाम **राधा देवी गुप्ता** ;	12
[2003]	(2003) 2 एस. सी. सी. 577 : **नसीरुद्दीन और अन्य** बनाम **सीता राम अग्रवाल** ;	11
[2000]	2000 क्रिमिनल ला जर्नल 1002 : **के. पन्नीर सेल्वन** बनाम **एमएमटीसी और एक अन्य** ;	5
[1999]	1999 आल एम. आर. (क्रिमिनल) जर्नल 3 : **गिरीश चन्द्र पांडे** बनाम **कन्हैया लाल चंडाक और अन्य** ;	5
[1999]	(1999) 80 डीएलटी 654 : **जैन एसोसिएट्स और अन्य** बनाम **दीपक चौधरी एंड कं.** ;	5

[1958] [1958] एस. सी. आर. 360 :
कनाई लाल सुर बनाम **परमनिधि साधुखान** । 10

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 1220.

2007 के दांडिक आवेदन सं. 2174 में बम्बई उच्च न्यायालय के तारीख 6 मई, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री अजीत अनेकर, सत्यजीत ए. और (सुश्री) इंदु शर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री श्रीप्रकाश, अशोक भाटिया, शेखर कुमार, अनिरुद्ध पी. मायी, चारुदत्त महिन्द्रकर, सेल्विन राजा और (सुश्री) आशा गोपालन नायर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति उदय उमेश ललित ने दिया ।

न्या. ललित – यह अपील विशेष इजाजत लेकर अपीलार्थी द्वारा अपील की इजाजत के लिए फाइल किए गए 2007 के दांडिक आवेदन सं. 2174 को खारिज करते हुए बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 6 मई, 2008 को पारित आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है ।

2. अपीलार्थी की ओर से तारीख 14 सितम्बर, 1996 को परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 138 के अधीन मैसर्स इंडो फ्रैंच बायो टेक इंटरप्राइजिज लिमिटेड (संक्षेप में "कंपनी") को एक सूचना जारी की गई थी । सूचना में यह उल्लेख किया गया था कि कंपनी द्वारा अपीलार्थी के पक्ष में लिखा गया देना बैंक, न्यू मरीन लाइन्स, मुम्बई का तारीख 8 सितम्बर 1996 का चैक सं. 364776 "अपर्याप्त निधियां" पृष्ठांकन के साथ तारीख 10 सितम्बर, 1996 को लौटा दिया गया है । इसलिए सूचना में प्रेषिती से यह अपेक्षा की गई कि इस सूचना की प्राप्ति के 15 दिन के भीतर चैक की रकम का संदाय किया जाए । तारीख 14 सितम्बर, 1996 की पूर्वोक्त सूचना का कोई उत्तर नहीं भेजा गया ।

3. इसके पश्चात् अपीलार्थी ने कंपनी, कंपनी के अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक श्री के. जे. बोडीवाला और प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 सहित 11 अन्य निदेशकों के विरुद्ध अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, पंचम न्यायालय,

दादर, मुम्बई के समक्ष परिवाद मामला सं. 243/एस/1996 फाइल किया । जहां तक निदेशकों का संबंध है, यह प्रकथन किया गया कि वे कंपनी के कारबार और इसके दिन-प्रतिदिन के कार्यकलाप के भारसाधक हैं और दायी हैं । उक्त परिवाद मामले के लंबित रहने के दौरान, अभियुक्त सं. 3 से 5, 7, 9 से 13 के विरुद्ध जारी की गई आदेशिका वापस ले ली गई तथा श्री बोडीवाला की मृत्यु हो जाने के कारण उसके विरुद्ध कार्यवाहियों का भी उपशमन हो गया, जिसके परिणामस्वरूप कंपनी तथा अभियुक्तों की सूची में क्रमशः अभियुक्त सं. 6 और 8 वर्तमान प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 अर्थात् सुश्री ईला ए. अग्रवाल और श्री प्रफुल्ल रंदिव रह गए ।

4. अपीलार्थी द्वारा यह दलील दी गई कि निदेशकों को अतिरिक्त रूप से अलग-अलग सूचनाएं जारी की गई थीं किंतु साक्ष्य के प्रक्रम पर यह बात निकलकर आई कि निदेशकों को ऐसी व्यक्तिगत सूचनाएं एक भिन्न चैक के अनादर के संबंध में थीं । इसलिए जो तथ्य पाए गए वे यह थे कि निदेशकों को व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग सूचनाएं नहीं दी गई थीं । मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट ने तारीख 30 अप्रैल, 2007 के निर्णय और आदेश द्वारा कंपनी को दोषसिद्ध किया किंतु प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को अधिनियम की धारा 138 के अधीन दंडनीय अपराध से दोषमुक्त कर दिया । **बी. रमन और अन्य** बनाम **मैसर्स शासुन केमिकल्स एंड ड्रग्स लिमिटेड**[1] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय का अवलंब लेते हुए यह मत व्यक्त किया गया कि अधिनियम की धारा 138 के अधीन कानूनी सूचना प्रत्येक निदेशक को जारी की जानी चाहिए थी और इस आज्ञापक अपेक्षा के अननुपालन से प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के विरुद्ध कार्यवाही नहीं चलाई जा सकती है ।

5. अपीलार्थी ने व्यथित होकर प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को दोषमुक्त करने वाले निर्णय के विरुद्ध अपील करने के लिए इजाजत की ईप्सा करते हुए उच्च न्यायालय में 2007 का दांडिक आवेदन सं. 2174 फाइल किया । यह दलील दी गई कि निदेशकों को व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग सूचना तामील करना आवश्यक नहीं था और कंपनी को सूचना तामील करना ही पर्याप्त था । **गिरीश चन्द्र पांडे** बनाम **कन्हैया लाल चंडाक और अन्य**[2] वाले मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के विनिश्चय का

---

[1] 2006 क्रिमिनल ला जर्नल पृष्ठ 4552.

[2] 1999 आल एम. आर. (क्रिमिनल) जर्नल 3.

अवलंब लिया गया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि भागीदारी फर्म सूचना की प्राप्ति के पश्चात् नियत समय के भीतर रकम देने में असफल रहती है तो प्रत्येक भागीदार को व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग सूचना तामील किए जाने की आवश्यकता नहीं है । ऐसा ही अवलंब **जैन एसोसिएट्स और अन्य** बनाम **दीपक चौधरी एंड कं.**[1] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के विनिश्चय का भी लिया गया, जिसमें यह अधिकथित किया गया था कि अधिनियम की धारा 141 में यह अपेक्षा नहीं की गई है कि फर्म के प्रत्येक भागीदार को सूचना जारी की जानी चाहिए । **के. पन्नीर सेल्वन** बनाम **एमएमटीसी और एक अन्य**[2] वाले मामले में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय तथा **रंजीत तिवारी** बनाम **नरेन्द्र नय्यर**[3] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया गया था ।

6. उच्च न्यायालय ने **बी. रमन और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय का अवलंब लेते हुए यह मत व्यक्त किया कि निदेशकों को अलग-अलग सूचनाएं जारी करना आज्ञापक है । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला :–

> "जब धारा 141 द्वारा निदेशकों को, जो कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कार्यकलाप के लिए उत्तरदायी हैं, धारा 138 के अधीन दंडनीय बनाने के लिए विधिक कल्पना सृजित की गई है, तब यह आवश्यक है कि उन्हें सूचना की तामीली के पश्चात् गलती को सुधारने या मामले को स्पष्ट करने का अवसर मिले । इसलिए निदेशकों के विरुद्ध परिवाद फाइल करने से पूर्व उन्हें आवश्यक रूप से सूचना की तामीली की जानी चाहिए । मेरी राय में, अभियुक्त सं. 6 और 8 को सूचना तामील किए बिना उन पर धारा 138 के अधीन अपराध का प्रतिनिधिक दायित्व नहीं डाला जा सकता है ।"

7. इस प्रक्रम पर **बी. रमन और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के विनिश्चय को भी निर्दिष्ट किया जा सकता है । उक्त विनिश्चय के पैरा 2 में यह उपवर्णित है कि न्यायालय के एकल न्यायाधीशों द्वारा अपनाए गए अलग-अलग दृष्टिकोणों

---

[1] (1999) 80 डीएलटी 654.

[2] 2000 क्रिमिनल ला जर्नल 1002.

[3] (2012) 191 डीएलटी 318.

के परिणामस्वरूप मामला खंड न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया था । उस विनिश्चय का पैरा 25 और 26 निम्नलिखित हैं :–

> "25. धारा 141(1) के अधीन, ऐसे व्यक्ति जो कंपनी के भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी थे, अपराध कारित करने वाले समझे जाएंगे । उपधारा (2) के अधीन, ऐसे व्यक्तियों को भी, जो कथित रूप से कंपनी के भारसाधक या उसके प्रति उत्तरदायी नहीं हैं, अभियोजित किया जा सकता है यदि यह अभिकथन किया जाता है और यह साबित हो जाता है कि अपराध उन अभियोजित किए गए व्यक्तियों में से किसी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उनकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है । अतः, इन धाराओं में यह उपबंधित है कि जब ऐसे निदेशक हैं, जो कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उत्तरदायी हैं, और ऐसे अन्य अधिकारी भी हैं जिनकी सहमति से अपराध कारित किया गया है, तो परिवादी उक्त आशय का प्रकथन करेगा । इस संदर्भ में, परिवादी को उन व्यक्तियों से, जो कंपनी का प्रतिनिधित्व करते हैं, चैक की रकम वापस लेने की प्रक्रिया आरंभ करनी चाहिए जिससे कि उनके विरुद्ध परिवाद फाइल करने से बचा जा सके । उक्त प्रक्रिया में, उसे आवश्यक रूप से उन व्यक्तियों से मांग करनी चाहिए जो लेखीवाल के अभिन्न अंग हैं । इस प्रक्रिया के असफल हो जाने पर ही उनके विरुद्ध धारा 138 में यथा अनुध्यात वाद हेतुक उद्भूत होगा जिससे कि परिवादी नियत समय के भीतर न्यायालय में समावेदन करने के लिए समर्थ हो सके । अतः, प्रक्रिया का आरंभ उन व्यक्तियों को सूचना की तामीली से होता है जो चैक के लेखीवाल, कंपनी का प्रतिनिधित्व करते हैं ।
>
> 26. सूचना देने का उद्देश्य चैक के लेखीवाल को अपने लोप का सुधार करने का अवसर देने के साथ-साथ ईमानदार लेखीवाल का संरक्षण करना भी है । धारा 138 के अधीन परिवाद फाइल करने के लिए धारा 138 के परंतुक के खंड (ख) के अधीन मांग की सूचना तामील करना एक पूर्ववर्ती शर्त है । वह कंपनी तथा उन व्यक्तियों को, जो कंपनी के कारबार के संचालन के लिए भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी हैं, सूचना भेजकर उनसे रकम का संदाय करने के लिए कहते हुए मांग कर सकता है । उनमें से कुछ यह उत्तर दे सकते हैं कि वे किसी भी प्रकार से कंपनी से संपृक्त नहीं हैं और

कुछ पाने वाले को कंपनी के नाम में रकम का संदाय करने का प्रयास करते हुए लोप का सुधार कर सकते हैं, और उस दशा में परिवादी या तो परिवाद फाइल करने की कार्रवाई को रोक सकता है या चैक की रकम के असंदाय की दशा में, वह उन व्यक्तियों का चयन कर सकता है जो अपराध कारित करने के लिए वास्तव में उत्तरदायी हैं और इसके पश्चात् उनके विरुद्ध अभियोजन आरंभ कर सकता है ।"

8. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् अधिवक्ता श्री अजीत अनेकर द्वारा यह दलील दी गई कि धारा 138 में निदेशकों को अलग-अलग सूचनाएं जारी करना अनुध्यात नहीं है और उक्त धारा में ऐसी किसी अपेक्षा का अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए । प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री श्रीप्रकाश सिन्हा और श्री अशोक भाटिया ने **बी. रमन और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलंब लिया । यह दलील दी गई कि यद्यपि उस मामले में यह विवाद्यक पूर्ण तौर पर उद्भूत नहीं हुआ था कि क्या निदेशकों को आज्ञापक रूप से ऐसी अलग-अलग सूचनाएं दिया जाना अपेक्षित है, तो भी **एन. के. वाही** बनाम **शेखर सिंह**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के पैरा 10 और 11 में ऐसी सूचनाएं देने का उल्लेख है । हम पैरा 10 और 11 को उद्धृत करते हैं :–

"10. धारा 138 को लागू करने के लिए परिवाद से यह दर्शित होना चाहिए कि :–

1. चैक जारी किया था ;

2. इसे प्रस्तुत किया गया था ;

3. प्रस्तुत करने पर यह अनादृत हो गया था ;

4. दायी ठहराए जाने वाले व्यक्ति को उपबंधों के निबंधनों के अनुसार सूचना तामील की गई थी ;

5. सूचना की तामीली के बावजूद, सूचना की प्राप्ति की तारीख से पंद्रह दिन के भीतर न तो कोई संदाय किया गया और न ही किन्हीं अन्य बाध्यताओं, यदि कोई हों, का पालन किया गया था ।

---

[1] (2007) 9 एस. सी. सी. 481.

11. अधिनियम की धारा 141 में वस्तुतः कंपनी के निदेशकों या इसके संचालन या कंपनी के कारबार के लिए उत्तरदायी अन्य व्यक्तियों के आन्वयिक दायित्व को परिकल्पित किया गया है ।'

9. अतः, प्रश्न यह है कि क्या कंपनी के साथ-साथ इसके निदेशकों के विरुद्ध परिवाद फाइल करने से पूर्व अधिनियम की धारा 138 के अधीन सूचना आज्ञापक रूप से कंपनी के ऐसे निदेशकों को भेजी जानी अपेक्षित है या नहीं । प्रारंभ में, हमारे लिए इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि क्या **एन. के. वाही** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय में इस बात पर विचार किया गया था और यह निष्कर्ष निकाला गया था कि कंपनी के अतिरिक्त इसके निदेशकों के विरुद्ध किसी प्रकार की कार्यवाहियां आरंभ करने से पूर्व उन्हें अलग-अलग सूचनाएं जारी करना आबद्धकर है । हमने उस विनिश्चय का परिशीलन किया और यह पाया कि उस मामले में विचार के लिए ऐसा कोई विवाद्यक उद्भूत नहीं हुआ था । इसलिए हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे । इस मामले पर विचार करने से पूर्व, अधिनियम की धारा 138 और 141 को उद्धृत किया जा सकता है :–

"**138. खाते में अपर्याप्त निधियों, आदि के कारण चैक का अनादरण** – जहां किसी व्यक्ति द्वारा किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्णतः या भागतः उन्मोचन के लिए किसी बैंककार के पास अपने द्वारा रखे गए खाते में से किसी अन्य व्यक्ति को किसी धनराशि के संदाय के लिए लिखा गया कोई चैक बैंक द्वारा संदाय किए बिना या तो इस कारण लौटा दिया जाता है कि उस खाते में जमा धनराशि उस चैक का आदरण करने के लिए अपर्याप्त है या वह उस रकम से अधिक है जिसका बैंक के साथ किए गए करार द्वारा उस खाते में से संदाय करने का ठहराव किया गया है, वहां ऐसे व्यक्ति के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने अपराध किया है और वह, इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो चैक की रकम का दुगुना तक हो सकेगा, या दोनों से दंडनीय होगा :

परंतु इस धारा में अंतर्विष्ट कोई बात तब तक लागू नहीं होगी जब तक –

(क) वह चैक उसके लिखे जाने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर या उसकी विधिमान्यता की अवधि के भीतर जो भी पूर्वत्तर हो, बैंक को प्रस्तुत न किया गया हो ;

(ख) चैक का पाने वाला या सम्यक् अनुक्रम में धारक चैक के लेखीवाल को, असंदत्त चैक के लौटाए जाने की बाबत बैंक से उसे सूचना की प्राप्ति के तीस दिन के भीतर, लिखित रूप में सूचना देकर उक्त धनराशि के संदाय के लिए मांग नहीं करता है ; और

(ग) ऐसे का लेखीवाल, चैक के पाने वाले को या सम्यक् अनुक्रम में धारक को उक्त सूचना की प्राप्ति के पंद्रह दिन के भीतर उक्त धनराशि का संदाय करने में असफल नहीं रहता है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, 'ऋण या अन्य दायित्व' से विधितः प्रवर्तनीय ऋण या अन्य दायित्व अभिप्रेत है ।

141. कंपनियों द्वारा अपराध – (1) यदि धारा 138 के अधीन अपराध करने वाला कोई व्यक्ति कोई कंपनी है तो ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी ऐसे अपराध के लिए दोषी समझे जाएंगे और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे :

परंतु इस उपधारा की कोई बात ऐसे व्यक्ति को दंड का भागी नहीं बनाएगी यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था अथवा उसने ऐसे अपराध के निवारण के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी :

परंतु यह और कि जहां किसी व्यक्ति को, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी वित्त निगम में कोई पद धारण करने या नियोजन में रहने के कारण किसी कंपनी के निदेशक के रूप में नामनिर्दिष्ट किया जाता है, वहां वह इस अध्याय के अधीन अभियोजन का भागी नहीं होगा ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित किया जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या

मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है वहां ऐसा निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी, उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए –

(क) 'कंपनी' से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत फर्म या व्यक्तियों का अन्य संगम है ; और

(ख) किसी फर्म के संबंध में, 'निदेशक' से उस फर्म का कोई भागीदार अभिप्रेत है ।"

धारा 138 में प्रयुक्त "लेखीवाल" अभिव्यक्ति को अधिनियम की धारा 7 में दी गई परिभाषा को ध्यान में रखते हुए समझना चाहिए, जो निम्नलिखित प्रकार है :–

" .....विनिमय-पत्र या चैक का रचयिता उसका 'लेखीवाल' कहलाता है, संदाय करने के लिए तद्द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति 'ऊपरवाल' कहलाता है ।"

10. चूंकि उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 138 में इस अपेक्षा का अर्थ लगाया है कि निदेशकों को अलग-अलग सूचनाएं दी जानी चाहिएं और उनके बिना उन्हें प्रतिनिधिक रूप से दायी नहीं ठहराया जा सकता है, इसलिए न्यायालय के निर्वचनात्मक कार्य संबंधी सिद्धांतों पर विचार किया जा सकता है । **कनाई लाल सुर** बनाम **परमनिधि साधुखान**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है :–

"श्री चटर्जी ने अपनी दलील के समर्थन में स्वाभाविक तौर पर हेडन वाले मामले में राजकोष के बेरंस द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों का अवलंब लिया । वास्तव में न्यायालयों द्वारा कल्याणकारी अधिनियमितियों के उपबंध वाली इन मताभिव्यक्तियों को अनुमोदन के साथ इतने प्रायिक तौर पर उद्धृत किया गया है कि अब इन्होंने इस विषय पर श्रेष्ठता की प्रास्थिति प्राप्त कर ली है और उनकी विधिमान्यता को चुनौती नहीं दी जा सकती है । तथापि, किसी कानून के उपबंधों पर इन मताभिव्यक्तियों को लागू करने में सदैव यह बात

[1] [1958] एस. सी. आर. 360.

अवश्य ध्यान में रखी जानी चाहिए कि अर्थान्वयन का सर्वप्रथम नियम यह है कि स्वतः विधान-मंडल द्वारा प्रयुक्त किए गए शब्दों में विधान-मंडल का आशय पाया जाना चाहिए । यदि प्रयुक्त किए गए शब्दों से केवल एक ही अर्थान्वयन होता है तब न्यायालय इस आधार पर कोई अन्य कल्पनात्मक अर्थान्वयन अपनाने के लिए स्वतंत्र नहीं है कि ऐसा कल्पनात्मक अर्थान्वयन अभिकथित उद्देश्य और अधिनियम की नीति के ज्यादा अनुरूप है । कानून के तात्विक उपबंधों में प्रयुक्त शब्दों का उनके स्पष्ट व्याकरणिक अर्थ में अर्थान्वयन किया जाना चाहिए और जब ऐसे शब्दों के दो अर्थान्वयन हो सकते हों केवल तभी अधिनियम की नीति या उद्देश्य को प्रभावी करने का प्रश्न विधिसम्मत रूप से उद्भूत हो सकता है । जब तात्विक शब्दों के दो अर्थान्वयन हो सकते हों, जिसमें से एक अर्थान्वयन से अधिनियम की नीति को निष्फल या ह्रास करने की संभावना हो जबकि दूसरे से उक्त नीति की प्राप्ति में सहायता प्राप्त होने की संभावना हो, तब न्यायालय पश्चात्वर्ती अर्थान्वयन को धारण करना चाहेंगे । केवल ऐसे मामलों में ही उस रिष्टि और विफलता पर विचार करना सुसंगत हो जाता है जिसका उपचार और ठीक करना अधिनियम से तात्पर्यित है ।"

11. **नसीरुद्दीन और अन्य** बनाम **सीता राम अग्रवाल**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने विधि का निम्नलिखित शब्दों में उल्लेख किया :–

"37. किसी कानून का निर्वचन करने की न्यायालय की अधिकारिता का तब अवलंब लिया जा सकता है जब वह कानून संदिग्ध हो । यह सुविख्यात है कि किसी प्रस्तुत मामले में न्यायालय वस्त्र की सिलवटों को तो दूर कर सकता है किंतु उसकी बुनावट को नहीं बदल सकता है । न्यायालय विधान की व्याप्ति या आशय का तब विस्तार नहीं कर सकता है जब उपबंध की भाषा स्पष्ट और असंदिग्ध हो । वह कानून में शब्दों को जोड़ या घटा नहीं सकता है या उसका ऐसा कुछ निर्वचन नहीं कर सकता है जो इसमें नहीं है । वह विधान को पुनः लिख या निर्माण नहीं कर सकता है । यह अवधारण करना भी आवश्यक है कि वहां ऐसी उपधारणा की जा सकती हो कि विधान-मंडल ने किन्हीं फालतू शब्दों का प्रयोग नहीं किया है । यह सुस्थिर है कि विधान-मंडल का वास्तविक आशय प्रयुक्त भाषा से

[1] (2003) 2 एस. सी. सी. 577.

निकाला जाना चाहिए.....।"

12. **नाथी देवी** बनाम **राधा देवी गुप्ता**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक संविधान न्यायपीठ को अन्य बातों के साथ-साथ इस बात पर विचार करना था कि क्या दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 14घ में आने वाली अभिव्यक्ति "जहां भू-स्वामी कोई विधवा है और उसके द्वारा या उसके पति द्वारा किराए पर दिए गए परिसरों की उसको स्वयं के निवास के लिए आवश्यकता है" के अंतर्गत प्रत्येक विधवा आती है जिससे कि वह अपने स्वामित्वाधीन के परिसरों का तुरंत कब्जा अभिप्राप्त करने की हकदार हो सके । यह अभिनिर्धारित करते हुए कि धारा 14घ के अधीन फायदा केवल उस विधवा को उपलब्ध है, जहां परिसर उसके द्वारा या उसके पति द्वारा किराए पर दिए गए हैं, इस न्यायालय ने इस दलील को ठुकरा दिया कि ऐसी विधवा भी धारा 14घ के उपबंधों का अवलंब ले सकती है जिसने विक्रय या अंतरण द्वारा परिसर अर्जित किए हैं । इस न्यायालय ने अपने विनिश्चय के दौरान यह मत व्यक्त किया :–

> "न्यायालय का निर्वचन-संबंधी कार्य वास्तविक विधायी आशय का पता लगाना है । यह घिसी-पिटी बात है कि किसी कानून का निर्वचन करते समय यदि उस कानून के शब्द स्पष्ट, सरल, असंदिग्ध हैं और युक्तियुक्त रूप से केवल एक अर्थ निकलता है तो न्यायालय को उसके शब्दों को, परिणामों को विचार में लाए बिना, वैसा ही अर्थ देना चाहिए । उन शब्दों की उनके स्वाभाविक और साधारण भाव में व्याख्या की जानी चाहिए । जब भाषा स्पष्ट और असंदिग्ध हो और केवल एक अर्थ निकलता हो तब कानून के निर्वचन का प्रश्न उद्‌भूत नहीं होता, क्योंकि अधिनियम स्वतः स्पष्ट है । न्यायालयों का सरोकार अंतर्वलित नीति या प्रयुक्त भाषा को प्रभावशील करने से निकलने वाले परिणाम से नहीं होता है, जो हानिकर या अन्यथा हों । यदि प्रयुक्त शब्दों का केवल एक अर्थान्वयन हो सकता हो, तब न्यायालय इस आधार पर कोई अन्य कल्पनात्मक अर्थान्वयन करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं कि ऐसा अर्थान्वयन अधिनियम के अभिकथित उद्‌देश्य या नीति के अधिक अनुरूप है । यह विचार करने के लिए कि क्या कोई असंदिग्धता है या नहीं, न्यायालय को कानून पर समग्र रूप में विचार करना चाहिए तथा अर्थ की समुचितता पर असंगति

---

[1] (2005) 2 एस. सी. सी. 271.

और विसंगतियों या अयुक्तियुक्तता पर उस विशिष्ट संदर्भ में विचार करना चाहिए जिनसे कानून असंवैधानिक हो सकता है ।"

13. इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए अब हम प्रश्नगत उपबंधों पर विचार करते हैं । धारा 138 के अनुसार, जहां किसी व्यक्ति द्वारा उसके द्वारा रखे गए खाते पर लिखा गया कोई चैक बैंक द्वारा उक्त धारा में वर्णित कारणों से असंदत्त लौटा दिया जाता है, वहां ऐसे व्यक्ति के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने अपराध किया है । इस धारा के परंतुक में तीन शर्तें अनुबंधित हैं जिनका समाधान होने पर अपराध पूर्ण होना कहा जा सकता है । इस परंतुक में, अन्य बातों के साथ-साथ, पाने वाले के लिए यह आबद्धकर है कि वह "चैक के लेखीवाल को" लिखित में सूचना देकर उक्त धनराशि के संदाय की मांग करे और यदि "चैक का लेखीवाल" उक्त सूचना की प्राप्ति के पंद्रह दिन के भीतर उक्त रकम का संदाय करने में असफल रहता है, तो उक्त परंतुक में अनुबंधित प्रक्रम पूर्ण हो जाते हैं । धारा 138 के अधीन "चैक के लेखीवाल को" सूचना दिया जाना अपेक्षित है जिससे कि लेखीवाल को संदाय करने का अवसर दिया जा सके और शास्तिक परिणामों से बच सके । धारा 138 द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को ऐसी सूचना दिए जाने का हकदार होना अनुध्यात नहीं है । धारा 138 की सरल भाषा बहुत ही स्पष्ट है और किसी संदेह या संदिग्धता की कोई गुंजाइश नहीं है । धारा 138 में ऐसा कुछ नहीं है जिससे दूर-दूर तक भी लेखीवाल के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को सूचना जारी किया जाना इंगित होता हो ।

14. धारा 141 में यह उपबंधित है कि यदि धारा 138 के अधीन अपराध करने वाला व्यक्ति कोई कंपनी है तो ऐसी कंपनी का प्रत्येक निदेशक, जो कंपनी का भारसाधक है और इसके कारबार के संचालन के लिए उत्तरदायी है, दोषी समझा जाएगा । प्रतिनिधिक दायित्व सृजित करने का कारण स्पष्ट रूप से यह है कि कोई विधिक सत्ता अर्थात् कंपनी उन जीवित व्यक्तियों द्वारा चलाई जाएगी जो इसके कार्यकलापों के भारसाधक हैं और जो उस कंपनी के कार्यों के मार्गदर्शक हैं और यदि ऐसी विधिक सत्ता दोषी है, तो जो उसके कार्यकलापों के लिए इसके लिए उत्तरदायी हैं और जो ऐसी विधिक सत्ता के कार्यों का मार्गदर्शन करते हैं, को उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए और उनके विरुद्ध कार्यवाही की जानी चाहिए । धारा 141 में ऐसी कोई अपेक्षा भी अधिकथित नहीं है कि ऐसी स्थिति में निदेशकों को धारा 138 के अधीन व्यक्तिगत तौर पर अलग-अलग सूचनाएं

जारी किया जाना आवश्यक है । वे व्यक्ति जो कंपनी के कार्यकलापों के भारसाधक हैं और उसके कार्यकलाप चलाते हैं, स्वाभाविक तौर पर उस कंपनी को धारा 138 के अधीन जारी की गई सूचना से अवश्य अभिज्ञ होंगे । स्पष्ट तौर पर यही कारण है कि ऐसे निदेशकों को अतिरिक्त रूप से कोई सूचना दिया जाना अनुध्यात नहीं है । "लेखीवाल" कंपनी को दिया गया अवसर जो उस कंपनी के कार्यकलापों के भारसाधक हैं, उनके लिए पर्याप्त समझा जाता है । यदि उनका यह पक्षकथन है कि अपराध उनकी जानकारी के बिना कारित किया गया है या उन्होंने ऐसे अपराध के कारित होने को निवारित करने के लिए सम्यक् तत्परता बरती थी, तो यह विचारण में समुचित प्रक्रम पर विचार किए जाने के लिए एक प्रतिरक्षा का मामला होगा और निश्चित रूप से न कि धारा 138 के अधीन सूचना के प्रक्रम पर विचार किया जाने वाला मामला ।

15. यदि संबंधित उपबंधों में इस अपेक्षा का अर्थ लगाया जाता है कि निदेशकों को ऐसी अलग-अलग सूचनाएं अवश्य अतिरिक्त रूप से दी जानी चाहिएं, तो ऐसा न केवल इस उपबंध के स्पष्ट अर्थ और अर्थान्वयन के विरुद्ध होगा अपितु यह धारा 138 के अधीन उपचार को पूरी तरह से दुष्कर बना देगा । किसी प्रस्तुत मामले में कंपनी द्वारा धारा 138 के अधीन सूचना प्राप्त होने पर कंपनी की ओर से की गई साधारण चूक या उपेक्षा को आसानी से सुधारा जा सकता है और संशोधित किया जा सकता है । इस प्रक्रम पर उन सभी निदेशकों को सूचनाएं जारी करना अनावश्यक होगा, जिनके नामों को पाने वाला इस प्रक्रम पर जानता भी न हो । धारा 138 के द्वितीय परंतुक के अधीन, मांग की सूचना चैक के अनादर होने के तीस दिन के भीतर दी जानी चाहिए और तीसरे परंतुक में लेखीवाल को रकम का संदाय करने तथा शास्तिक परिणामों से बचने के लिए पंद्रह दिन का समय दिया गया है । धारा 142 के खंड (क) के अधीन, परिवाद उस तारीख से एक माह के भीतर फाइल किया जाना आवश्यक है जिस तारीख को धारा 138 के तीसरे परंतुक के अधीन वाद हेतुक उद्भूत होता है । इस प्रकार परिवाद अनादर होने के पचहत्तर दिन की कुल अवधि के भीतर फाइल किया जा सकता है और इस समय में परिवादी उन नामों और अन्य ब्यौरों के विषय में अपेक्षित जानकारी जुटा सकता है कि कंपनी के कौन व्यक्ति भारसाधक हैं और वे किस प्रकार कंपनी के कार्यकलापों के लिए उत्तरदायी हैं । किंतु यदि हम उस तर्क को स्वीकार कर लेते हैं जिस पर उच्च न्यायालय ने वर्तमान मामले में बल दिया है, तो यह अवधि घटकर केवल तीस दिन रह जाती है । इसके अतिरिक्त, अधिनियम की धारा 142

के खंड (ख) के परंतुक के विपरीत यह अवधि अविस्तीर्ण है । इस प्रकार, किसी अनादृत चैक के ऊपरवाल के फायदे के लिए सृजित यह संक्षिप्त उपचार पूरी तरह से दुष्कर हो जाएगा और इसे निष्फल करने में समर्थ होगा ।

16. हमारे मत में, अधिनियम की धारा 138 में इस अपेक्षा का अर्थ लगाने की कोई आवश्यकता या गुंजाइश नहीं है कि प्रश्नगत कंपनी के निदेशकों को भी अधिनियम की धारा 138 के अधीन अलग-अलग सूचनाएं अवश्य जारी की जानी चाहिएं । ऐसे निदेशक, जो कंपनी के भारसाधक हैं और कंपनी के कार्यकलापों के लिए उत्तरदायी हैं, कंपनी को धारा 138 के अधीन प्राप्त सूचना की जानकारी रही होगी । इसलिए न तो शाब्दिक अर्थान्वयन और न ही उद्देश्यपूर्ण कसौटी के आधार पर अधिनियम की धारा 138 में ऐसी अपेक्षा का अर्थ लगाया जा सकता है या लगाया जाना चाहिए । परिणामतः, यह अपील सफल होती है । उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आदेश अपास्त किया जाता है । चूंकि मामला अपील के लिए इजाजत के आवेदन पर विचार करने के प्रक्रम पर था और उच्च न्यायालय द्वारा मामले के गुणागुण पर विचार नहीं किया गया था, इसलिए हम मामले को नए सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित करते हैं जिसका यथासंभव शीघ्र विनिश्चय किया जाए । ऐसा निष्कर्ष निकालते हुए हम यह अभिलिखित करना चाहेंगे कि **बी. रमन और अन्य** बनाम **मैसर्स शासुन केमिकल्स एंड ड्रग्स लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ का विनिश्चय गलत था और इसे उलटा जाता है । इन निबंधनों के अनुसार यह अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

पुरुषोत्तम दशरथ बोराटे और एक अन्य

बनाम

महाराष्ट्र राज्य

8 मई, 2015

मुख्य न्यायमूर्ति एच. एल. दत्तू, न्यायमूर्ति एस. ए. बोबडे और न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 354 – दंडादेशात्मक नीति – मृत्यु दंडादेश – गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियां – योजनाबद्ध और सोची-समझी रीति में सामूहिक बलात्संग और निर्दयतापूर्वक हत्या जैसे जघन्य अपराध के मामले में केवल अभियुक्त की आयु, आपराधिक पूर्ववृत्त का अभाव और पारिवारिक पृष्ठभूमि न्यूनकारी परिस्थितियों के रूप में नहीं मानी जा सकती हैं ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 300 और 376(2)(छ) – हत्या और सामूहिक बलात्संग – मृत्यु दंडादेश – मृतका को उसकी कंपनी की कैब के ड्राइवर द्वारा उसे कंपनी ले जाने के लिए उसके निवास से लिया जाना और एकांत स्थान में ले जाकर अपने एक साथी सहित उसके साथ सामूहिक बलात्संग और निर्ममतापूर्वक हत्या किया जाना – अपराध की शिकार मृतका के साथ अभियुक्त द्वारा, जिसका उस पर भरोसा और विश्वास था, अपने साथी सहित बलात्संग का जघन्य अपराध करने और उसके पश्चात् गला घोंटकर निर्ममतापूर्वक उसकी हत्या करने तथा अभियुक्तों के पश्चात्वर्ती आचरण से समाज और न्यायालय की सामूहिक अंतश्चेतना को गहरा सदमा पहुंचने और कोई न्यूनकारी परिस्थिति न होने से यह मामला विरल से विरलतम कोटि के अंतर्गत आता है और अभियुक्तों पर अधिरोपित मृत्यु दंडादेश की पुष्टि की जानी उचित है ।

मृतका अपने जीजा और बहिन (अभि. सा. 12 और अभि. सा. 13) के साथ पुणे शहर में एक फ्लैट में रह रही थी । वह पुणे में विप्रो कंपनी की बीपीओ शाखा में एसोसिएट के रूप में लगभग एक वर्ष से सेवारत थी, जहां वह रात्रि की पारी में अर्थात् अपराह्न में 11.00 बजे से पूर्वाह्न 9.00

बजे तक काम करती थी । कंपनी ने अपने कर्मचारियों को उनके निवास से कार्यस्थल पर लाने और उनके अपने-अपने कार्य की पारियों की समाप्ति पर उन्हें वापस छोड़ने का प्रबन्ध किया था और एक प्राइवेट कैब की सेवा भाड़े पर ली हुई थी । दुर्भाग्यशाली दिन, अर्थात् तारीख 1 नवम्बर, 2007 को, रात्रि में 10.30 बजे मृतका को उसके निवास से लेने और उसके पश्चात् कंपनी के तीन अन्य कर्मचारियों को लेने के लिए कैब तैनात की गई थी । रोजमर्रा की तरह, अपराह्न में 10.15 बजे मृतका के पास कैब के ड्राइवर, पुरुषोत्तम बोराटे अर्थात् अभियुक्त सं. 1 की उसे लेने के लिए मिस-कॉल आई । मृतका ने अभियुक्त सं. 1 को वापस कॉल करके कहा कि वह उसे कार्यस्थल पर ले जाने के लिए दस मिनट तक आ जाए और उसके उपरांत अभि. सा. 12 और उसका पुत्र मृतका को कैब में छोड़ने के लिए फ्लैट से नीचे आए । मृतका को लेने के समय प्रदीप कोकडे अर्थात् अभियुक्त सं. 2 ड्राइवर के पीछे की पिछली सीट पर बैठा हुआ था । कैब द्वारा अगला जो कर्मचारी लेना था वह सागर बिदकार अर्थात् अभि. सा. 11 था और उसको लेने का समय अपराह्न में लगभग 10.45 बजे था । अभियुक्त सं. 1 और 2 मृतका को उसकी कंपनी ले जाने के बजाय एक एकांत स्थान में ले गए और उसके साथ सामूहिक बलात्संग किया और इसके पश्चात् निर्ममतापूर्वक उसका गला घोंटकर उसकी हत्या कर दी और उसके शव को एक खेत में छोड़ दिया । इसके पश्चात्, अभियुक्त सं. 1 और 2 प्रश्नगत कैब को लेकर पूर्वाह्न में लगभग 12.45 बजे अर्थात् लगभग दो घंटे के विलंब से कंपनी के एक अन्य कर्मचारी (अभि. सा. 11) को उसके निवास से लेने के लिए पहुंची । उस समय मृतका कैब में मौजूद नहीं थी । अभियुक्त सं. 1 ने अभि. सा. 11 को बताया कि न तो मृतका और न ही अन्य कर्मचारी आज काम पर आए हैं और विलंब से आने का कारण टायर पंचर होना बताया । अगली सुबह अर्थात् तारीख 2 नवम्बर, 2007 को खेत के किसान ने जिसके खेत में शव पड़ा हुआ था, पुलिस में सूचना दी और एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । इसी बीच, इस तथ्य के कारण कि मृतका अगले दिन घर वापस नहीं आई, तारीख 2 नवम्बर, 2007 को ही उसकी बहिन ने उसके पते-ठिकाने के बारे में जांच-पड़ताल करनी आरंभ की । उसे कंपनी द्वारा यह सूचित किया गया कि मृतका पिछली रात्रि को कार्यस्थल पर नहीं आई थी । इसलिए उसी दिन सायंकाल में ही तुरंत पुलिस थाने में गुमशुदा व्यक्ति की रिपोर्ट दी गई । तारीख 3 नवम्बर, 2007 को उन्हें यह सूचित किया गया कि तालेगांव दाभडे पुलिस थाना की अधिकारिता के अंतर्गत एक शव बरामद हुआ है । परिणामस्वरूप, वे पुलिस

थाने गए और मृतका के शव के एक फोटो और अभिगृहीत किए गए वस्त्रों के आधार पर उन्होंने मृतका की पहचान की पुष्टि की । पूर्वोक्त तारीख 2 नवम्बर, 2007 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के पश्चात् पुलिस ने सम्यक् रूप से अन्वेषण का कार्य आरंभ किया और कंपनी से पूछताछ की । परिणामस्वरूप, तारीख 3 नवम्बर, 2007 को पूर्वाह्न में लगभग 5.30 बजे अभियुक्त सं. 1 और 2 को अभिरक्षा में लिया गया । उसके पश्चात्, अभियुक्त-अपीलार्थियों के संस्वीकृति कथन के आधार पर पुलिस ने उनके मकानों से मृतका की चुराई गई वस्तुएं बरामद कीं । पुलिस द्वारा अन्वेषण के अनुसरण में आरोप पत्र फाइल किया गया । सेशन न्यायालय ने अभिलेख की सामग्री और पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलों पर अत्यधिक सावधानीपूर्वक विचार करने के उपरांत यह निष्कर्ष निकाला कि परिस्थितियों की शृंखला से किसी युक्तियुक्त संदेह के परे यह प्रमाणित होता है कि अभियुक्त-अपीलार्थियों ने मृतका के साथ बलात्संग और उसकी हत्या का जघन्य अपराध कारित किया है । सेशन न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि जिस दुष्टता के साथ अपराध किए गए और जिस निर्दयता से मृतका के साथ बलात्संग किया गया और उसकी हत्या की गई और साथ ही अभियुक्त सं. 1 द्वारा धारित न्यास-निष्ठा के घोर दुरुपयोग तथा अपने कुकर्मों का कोई अनुताप या पछतावा न होने से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि प्रस्तुत मामला विरल से विरलतम कोटि के अंतर्गत रखे जाने के लिए एक उपयुक्त मामला है और अभियुक्त-अपीलार्थियों द्वारा प्रदर्शित नृशंसता के आनुपातिक एकमात्र दंड मृत्यु की शास्ति है । अभियुक्त-अपीलार्थियों ने पूर्वोक्त निर्णय और आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की, जिस पर मृत्यु दंडादेश की पुष्टि के लिए किए गए निर्देश के साथ सुनवाई की गई और उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा सेशन न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय और मृत्यु दंडादेश की पुष्टि की । उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त-अपीलार्थियों ने उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । अभियुक्त-अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अपना पक्षकथन केवल निचले न्यायालयों द्वारा दिए गए मृत्यु दंडादेश की मात्रा के अवधारण के प्रश्न तक ही सीमित रखा और उक्त दंडादेश में कमी करने की ईप्सा की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय के लिए गुरुतरकारी और न्यूनकारी

परिस्थितियों के तुलन-पत्र पर विचार करना आवश्यक है । प्रस्तुत मामले में, अभियुक्त-अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अभियुक्तों की आयु, उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि और आपराधिक पृष्ठभूमि न होने की बात पर जोर दिया है । इसके अतिरिक्त, विद्वान् काउंसेल ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि अभियुक्त-अपीलार्थियों में सुधार हो सकता है और इसलिए आजीवन कारावास का कमतर दंड दिया जाना चाहिए । इस न्यायालय की सुविचारित राय में, वर्तमान मामले के तथ्यों में केवल आयु एक न्यूनकारी परिस्थिति के रूप में सर्वोपरि ध्यान में रखने वाली बात नहीं हो सकती है । इसी प्रकार, अभियुक्तों की पारिवारिक पृष्ठभूमि को भी एक न्यूनकारी परिस्थिति होना नहीं कहा जा सकता है । जहां तक अभियुक्त सं. 1 का संबंध है, यह दलील दी गई है कि उसका सुखी विवाहित जीवन था और सुसंगत समय पर उसकी पत्नी गर्भवती थी । तथापि, अभियुक्त सं. 1 ने उक्त अपराध कारित करते समय अपनी पत्नी और अपनी माता की दशा पर विचार नहीं किया और परिणामस्वरूप उसकी पत्नी ने उसका परित्याग कर दिया और उसकी विधवा माता की देखरेख उसके भतीजे और भतीजी द्वारा की जा रही है । जहां तक अभियुक्त सं. 2 का संबंध है, उसकी दो बहिनें हैं जो उसकी विधवा माता की देखरेख कर रही हैं । आपराधिक पृष्ठभूमि न होना भी न्यूनकारी परिस्थिति नहीं माना जा सकता है विशिष्ट रूप से अपराध की जघन्य प्रकृति और नृशंसता तथा उस सोची-समझी रीति पर विचार करते हुए जिसमें अभियुक्तों द्वारा यह अपराध कारित किया गया था । (पैरा 32 और 33)

वर्तमान तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, अभियुक्त सं. 1 ने अभियुक्त सं. 2 की सहायता से मृतका का व्यपहरण किया और उसके पश्चात् उन्होंने उसके साथ बलात्संग किया और हत्या कर दी । उन्होंने जघन्य अपराध करने के दौरान और न ही उसके पश्चात् किसी भी समय पर कोई पछतावा, खेद या अनुताप नहीं दिखाया, बल्कि अपराध करने के पश्चात् विशृंखल रूप से प्रसामान्य रीति में कार्य किया । मजबूत और सटीक साक्ष्य द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि घृणास्पद अपराध करने के पश्चात् अभियुक्त सं. 2 दूसरे व्यक्ति को लेने के लिए अभियुक्त सं. 1 के साथ रहा था और कंपनी के द्वार पर पहुंचने से पूर्व ही कैब से उतरा था । इसके अतिरिक्त, अभिलेख पर यह लाया गया है कि अभियुक्त सं. 1 ने कैब के ठिकाने तथा कार्यस्थल पर विलंब से पहुंचने के कारण के बारे में मिथ्या अभिलेख बनाने का प्रयत्न किया था । इसके अतिरिक्त, यह पाया गया है

कि यद्यपि अभि. सा. 12 द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी को देखा गया था, मृतका उनसे अप्रायिक रास्ते पर जाने के बारे में बार-बार प्रश्न कर रही थी, या यात्रा के दौरान मृतका फोन पर अपने एक मित्र से बात कर रही थी, इन सबके बावजूद वे जघन्य अपराध करने से नहीं रुके । वास्तव में, सेशन न्यायालय ने यह पाया कि अपराध करने के दौरान अभियुक्त-अपीलार्थियों से अभि. सा. 11 द्वारा उसे लेने में विलंब होने के बारे में पूछा था, तथापि, यह बात भी उन्हें अपराध करने से नहीं रोक पाई । इस प्रकार वह रीति, जिसमें जिस सतर्कता और सावधानीपूर्वक अपराध करने की योजना बनाई गई और इसके साथ-साथ अपराध निष्पादित करने में बरती गई घोर नृशंसता और मानवता के प्रति निष्ठुरता से उनके द्वारा भविष्य में इसी प्रकार का अपराध करने की पूरी संभाव्यता है । यह स्पष्ट है कि दोनों अभियुक्तों के भविष्य में समाज के लिए खतरा होने की बात साबित की गई है, जो जोरदार रूप से इस अधिसंभाव्यता को नकारती है कि उन्हें सुधारा या पुनर्वासित किया जा सकता है । इस न्यायालय की सुविचारित राय में, वर्तमान तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में न्यूनकारी परिस्थितियों का पूरी तरह से अभाव है । यह अपील ऐसा मामला नहीं है जहां अभियुक्तों द्वारा अपराध अत्यंत मानसिक और भावनात्मक विकृति के प्रभाव के अधीन किया गया हो, न ही यह ऐसा मामला है जहां यह तर्क दिया जा सकता हो कि अपराध आवेश में किया गया अपराध हो या क्षणभर में कारित किया गया हो । ऐसा कोई प्रश्न नहीं है कि अभियुक्तों का यह विश्वास हो कि उन्होंने असहाय और प्रतिरक्षा-विहीन युवा लड़की के साथ अपराध करके नैतिक रूप से न्यायोचित किया है । अतः, उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए और दंड की आनुपातिकता के पूर्वोक्त सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए यह न्यायालय निचले न्यायालयों के इस तर्काधार से सहमत है कि जिस घोर निर्दयता से मृतका की मृत्यु कारित की गई और इसके साथ-साथ अभियुक्त सं. 1 द्वारा धारित न्यास-स्थिति सहित अन्य कारकों से गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों का संतुलन अत्यधिक रूप से अभियुक्त-अपीलार्थियों के विरुद्ध जाता है । ऐसी विपदग्रस्त, जो अभियुक्त पर विश्वास करती थी, के साथ बलात्संग करने के बर्बर कार्य के साथ-साथ उक्त विपदग्रस्त की निर्दयता और नृशंसता से हत्या करने तथा अपराध करने के पश्चात् अभियुक्तों के सोचे-समझे और पश्चाताप-विहीन आचरण से इस न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालना होगा कि अपीलार्थियों के अपराध की निर्दयता को देखते हुए मृत्यु दंड की शास्ति से भिन्न कोई

कमतर दंडादेश नहीं बनता है । उपरोक्त के अतिरिक्त, इस न्यायालय के लिए ऐसे अपराध का समुदाय और विशिष्ट रूप से उन स्त्रियों पर पड़ने वाले प्रभाव की अवेक्षा करना आवश्यक हो जाता है जो पुणे में, जिसे सूचना प्रौद्योगिकी का केन्द्र माना जाता है, रात्रि की पारी में काम करती हैं । हाल के वर्षों में, अपराध की बढ़ती हुई दर, विशिष्ट रूप से स्त्रियों के विरुद्ध हिसांत्मक अपराधों ने न्यायालयों द्वारा अपनाई जाने वाली दांडिक दंडादेश की नीति को एक चिंता का विषय बना दिया है । ऐसे मामलों में न्यायालयों द्वारा अपनाई गई दंडादेशात्मक नीति के अधिक कड़े मानदंड होने चाहिएं ताकि भयोपरतिकारी के रूप में कार्य कर सके । हैरान करने वाले ऐसे अनेक मामले हैं जहां अभियुक्त को दिया गया दंडादेश अपराध की गंभीरता और परिमाण के अनुपात में नहीं होता है जिससे अपराधियों का दुस्साहस बढ़ता है और अंततोगत्वा ऐसे न्याय से व्यवस्था की विश्वसनीयता कमजोर होती है । दंडादेशात्मक नीति का उद्देश्य यह देखना होना चाहिए कि अपराध दंड-विहीन न रह जाए और अपराध के शिकार व्यक्ति के साथ-साथ समाज भी इस बात से संतुष्ट हो कि उसके साथ न्याय हुआ है । माच्छी सिंह वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि मृत्यु का अधिकतम दंड ऐसे मामलों में दिया जाना न्यायोचित और आवश्यक होगा जहां समाज की सामूहिक अंतश्चेतना इस प्रकार हिल कर रह जाए कि वे अपनी व्यक्तिगत राय को विचार में लाए बिना न्यायिक शक्ति के धारकों से यह प्रत्याशा करते हों कि मृत्यु की शास्ति ही दी जाएगी । यह बात सत्य है कि बलात्संग और हत्या के किसी भी मामले से समाज को धक्का पहुंचेगा किंतु हो सकता है ऐसे सभी अपराधों से समाज में प्रतिक्रिया न हो । कतिपय अपराध ऐसे होते हैं जो न्यायालय और समाज की सामूहिक अंतश्चेतना को धक्का पहुंचाते हैं । एक निर्दोष और असहाय युवा लड़की के साथ उन अभियुक्तों द्वारा सामूहिक बलात्संग किया जाना जिन पर उसने अपना विश्वास जताया हो और उसके पश्चात् निर्दयता से उसकी हत्या कर देना तथा अपराध को छिपाने का सोचा-समझा प्रयास करना अपराध का एक ऐसा दृष्टांत है जिससे समाज और न्यायालय की सामूहिक अंतश्चेतना को धक्का पहुंचा है और पराभूत किया है । इसलिए पूर्वोक्त स्थिर सिद्धांतों को ध्यान मे रखते हुए, इस न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि यह मामला "विरल से विरलतम" कोटि के अंतर्गत आता है, जिसमें मृत्यु की शास्ति, न कि कोई और, दंड दिया जाना उचित है । इस अपराध ने समाज की सामूहिक

अंतश्चेतना को इस प्रकार हिला कर रख दिया कि अभियुक्तों पर आनुकल्पिक दंडादेश अर्थात् आजीवन कारावास अधिरोपित करने से न्याय की पूर्ति नहीं होगी । बल्कि, इससे अन्य संभावी अपराधी ऐसे अपराध करने के लिए प्रेरित होंगे और आजीवन कारावास जैसे कमतर/हल्के दंड पाकर बच जाएंगे । परिणामतः, अभिलेख के संपूर्ण साक्ष्य के साथ-साथ निचले न्यायालयों के निर्णयों का अति विस्तार से समालोचनात्मक मूल्यांकन करने के पश्चात्, यह न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थियों को मृत्यु दंडादेश देते हुए अभिलिखित किए गए और उच्च न्यायालय द्वारा उसकी पुष्टि करते हुए दिए गए कारणों से सहमत है । इस न्यायालय के सुविचारित मत में, निचले न्यायालयों द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश में किसी प्रकार की कोई त्रुटि नहीं है । (पैरा 35, 36, 37, 38, 39 और 40)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 1 एस. सी. सी. 67 : **मोफिल खान** बनाम **झारखंड राज्य** ;	26, 28
[2012]	(2012) 4 एस. सी. सी. 257 : **रामनरेश** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** ;	25
[2011]	(2011) 3 एस. सी. सी. 85 : **बी. ए. उमेश** बनाम **कर्नाटक उच्च न्यायालय** ;	27
[2010]	(2010) 9 एस. सी. सी. 1 : **अतबीर सिंह** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली** ;	14
[2008]	(2008) 16 एस. सी. सी. 372 : **अक़ील अहमद** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	14
[2002]	(2002) 5 एस. सी. सी. 234 : **देवेन्द्र पाल सिंह** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली** ;	14
[1994]	(1994) 2 एस. सी. सी. 220 : **धनंजय चटर्जी** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	14, 29, 31

[1991] (1991) 3 एस. सी. सी. 471 :
सेवक पेरुमल बनाम **तमिलनाडु राज्य** ; 26, 28

[1987] (1987) 3 एस. सी. सी. 80 :
महेश बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 26

[1983] (1983) 3 एस. सी. सी. 470 :
माछी सिंह और अन्य बनाम **पंजाब राज्य** ; 14, 22, 25

[1980] (1980) 2 एस. सी. सी. 684 :
बच्चन सिंह बनाम **पंजाब राज्य** । 14, 22, 25

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2013 की दांडिक अपील सं. 1439.

2012 की दांडिक अपील सं. 632 में बम्बई उच्च न्यायालय के तारीख 12 सितम्बर, 13 सितम्बर, 24 सितम्बर और 25 सितम्बर, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सुश्री चारु माथुर और श्री शोवन मिश्रा

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री अरुण आर. पेडनेकर और अनिरुद्ध पी. मायी

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति एच. एल. दत्तू ने दिया ।

मु. न्या. दत्तू – यह अपील 2012 के पुष्टि मामला सं. 1 तथा 2012 की दांडिक अपील सं. 632 में महाराष्ट्र राज्य के लिए बम्बई स्थित उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 12 सितम्बर, 2012, 13 सितम्बर, 2012, 24 सितम्बर, 2012 और 25 सितम्बर, 2012 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा 2008 के सेशन मामला सं. 284 में सेशन न्यायाधीश, पुणे द्वारा तारीख 20 मार्च, 2012 को पारित किए गए उस दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश की पुष्टि की है, जिसके द्वारा विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 120ख के साथ पठित धारा 302, 376(2)(छ), 364 और 404 के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया और परिणामस्वरूप मृत्यु दंडादेश दिया ।

2. अभियोजन पक्षकथन संक्षेप में इस प्रकार है – मृतका अपने जीजा और बहिन अर्थात् क्रमशः अभि. सा. 12 और अभि. सा. 13 तथा उनके अप्राप्तवय पुत्र के साथ पुणे शहर में एक फ्लैट में रह रही थी । वह पुणे में विप्रो कंपनी (जिसे इसमें आगे संक्षेप में "कंपनी" कहा गया है) की बीपीओ शाखा में एसोसिएट के रूप में लगभग एक वर्ष से सेवारत थी, जहां वह रात्रि की पारी में अर्थात् अपराह्न में 11.00 बजे से पूर्वाह्न 9.00 बजे तक काम करती थी । दुर्भाग्यशाली दिन उसका कंपनी में आखिरी दिन था चूंकि उसने एक माह पूर्व अपना त्यागपत्र दे दिया था । कंपनी ने अपने कर्मचारियों को उनके निवास से कार्यस्थल पर लाने और उनके अपने-अपने कार्य की पारियों की समाप्ति पर उन्हें वापस छोड़ने का प्रबन्ध किया था और एक प्राइवेट कैब की सेवा भाड़े पर ली हुई थी । इसके अतिरिक्त, कंपनी ने अपनी महिला कर्मचारियों की सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए कैब के स्वामी पर यह एक आज्ञापक शर्त अधिरोपित की थी कि किसी महिला कर्मचारी को परिवहन करते समय उक्त यान में एक सुरक्षा कर्मी मौजूद रहेगा ।

3. दुर्भाग्यशाली दिन, अर्थात् तारीख 1 नवम्बर, 2007 को, रात्रि में 10.30 बजे मृतका को उसके निवास से लेने और उसके पश्चात् कंपनी के तीन अन्य कर्मचारियों को लेने के लिए कैब तैनात की गई थी । रोजमर्रा की तरह, अपराह्न में 10.15 बजे मृतका के पास कैब के ड्राइवर, पुरुषोत्तम बोराटे अर्थात् अभियुक्त सं. 1 की उसे लेने के लिए मिस-कॉल आई । मृतका ने अभियुक्त सं. 1 को वापस कॉल करके कहा कि वह उसे कार्यस्थल पर ले जाने के लिए दस मिनट तक आ जाए और उसके उपरांत अभि. सा. 12 और उसका पुत्र मृतका को कैब में छोड़ने के लिए फ्लैट से नीचे आए । मृतका को लेने के समय प्रदीप कोकडे अर्थात् अभियुक्त सं. 2 ड्राइवर के पीछे की पिछली सीट पर बैठा हुआ था । कैब द्वारा अगला जो कर्मचारी लेना था वह सागर बिदकार अर्थात् अभि. सा. 11 था और उसको लेने का समय अपराह्न में लगभग 10.45 बजे था ।

4. यात्रा के दौरान अपराह्न में 10.30 और 11.00 बजे मृतका के पास उसके मोबाइल फोन पर बंगलौर में रहने वाले उसके एक मित्र जीवन बराल अर्थात् अभि. सा. 14 की कॉल आई, जिसने मृतका को अभियुक्त सं. 1 से यह प्रश्न करते हुए सुना कि वह कैब को कहां ले जा रहा है, उसने इसे जंगल में क्यों रोका है और वह क्या कर रहा है । उसके पश्चात्

मृतका और अभि. सा. 14 के बीच फोन कॉल अचानक कट गई और अभि. सा. 14 द्वारा मृतका को फिर कॉल करने के प्रयास व्यर्थ रहे क्योंकि उसका मोबाइल फोन स्विच ऑफ पाया गया । इसके बाद, अभि. सा. 14 का अगले दिन तक न तो पुणे की पुलिस से और न ही पुणे में मृतका के नातेदारों से संपर्क हो सका ।

5. अभियोजन पक्षकथन यह है कि अभियुक्त सं. 1 और 2 ने इस तथ्य को जानते हुए कि मृतका उस रात अपने कार्यस्थल के लिए यात्रा करेगी और सबसे पहले उसे लिया जाएगा, मृतका को उक्त कार्यस्थल पर ले जाने का बहाना करके उसका व्यपहरण करने का षड्यंत्र रचा और उसे एक एकांत स्थान में ले गए । अभियोजन पक्ष ने यह अभिकथन किया है कि अभि. सा. 14 की पूर्वोल्लिखित फोन कॉल के अचानक कटने और पूर्वाह्न में लगभग 12.45 बजे अभि. सा. 11 को लेने के बीच की समयावधि में अभियुक्त सं. 1 और 2 ने सामूहिक बलात्संग का जघन्य अपराध किया और उसके पश्चात् मृतका की उसकी ही ओढ़नी से उसका गला घोंटकर, ब्लेड से उसकी कलाई काटकर और पत्थर से उसका सिर चकनाचूर करके हत्या कर दी । इसके अतिरिक्त, अभियुक्त-अपीलार्थियों ने मृतका का सामान और धन निकाल लिया और फिर उसके शव को बोडके नामक एक किसान के खेत में छोड़ दिया ।

6. इसके पश्चात्, प्रश्नगत कैब अभियुक्त सं. 1 और 2 को लेकर पूर्वाह्न में लगभग 12.45 बजे अर्थात् लगभग दो घंटे के विलंब से अभि. सा. 11 को उसके निवास से लेने के लिए पहुंची । उस समय मृतका कैब में मौजूद नहीं थी । अभियुक्त सं. 1 ने अभि. सा. 11 को बताया कि न तो मृतका और न ही अन्य कर्मचारी आज काम पर आए हैं और विलंब से आने का कारण टायर पंचर होना है । अभियुक्त सं. 2 कैब से अभियुक्त सं. 1 द्वारा अभि. सा. 11 को उसके कार्यस्थल पर लाने से कुछ पहले उतर गया था ।

7. अगली सुबह अर्थात् तारीख 2 नवम्बर, 2007 को पंकज लक्ष्मण बोडके अर्थात् अभि. सा. 8 ने किसान बोडके के खेत के किनारे एक महिला का शव देखा और हीराराम बोडके अर्थात् अभि. सा. 1 को इसके बारे में बताया । अभि. सा. 1 ने इस सूचना का सत्यापन करने के पश्चात् पुलिस थाना, तालेगांव दाभडे में सूचना दी और वहां पर तुरंत एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । अतः, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के

अधीन अपराध रजिस्ट्रीकृत किया गया और अभि. सा. 3 की मौजूदगी में स्थल पंचनामा तैयार किया गया । अभि. सा. 2 की मौजूदगी में भी मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट और पंचनामा तैयार किया गया और उसके पश्चात् मृतका का शव मरणोत्तर परीक्षा के लिए भेजा गया । इसके अतिरिक्त, घटना-स्थल से रक्तरंजित पत्थर, एक जोड़ा लेडिज सैंडल, रक्तरंजित ब्लेड, रक्त मिली हुई मिट्टी और सादा मिट्टी का नमूना अभिगृहीत किए । मरणोत्तर परीक्षा के पश्चात् मृतका के शरीर पर पाए गए वस्त्र भी सम्यक् रूप से अभिगृहीत किए गए । डा. वाघमरे अर्थात् अभि. सा. 16, जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी, ने यह राय व्यक्त की कि मृत्यु खोपड़ी के अस्थिभंग सहित महत्वपूर्ण अंगों पर गंभीर क्षतियों के परिणामस्वरूप हुए सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी जिसके अंतर्गत ललाटीय, कनपटी, मस्तिष्क के विदीर्ण सहित पार्श्विक हड्डी का अस्थिभंग तथा पसली का टूटना, दाएं फेफड़े का विदीर्ण होना तथा गला घोंटा जाना है । इसके अतिरिक्त, रासायनिक विश्लेषक की रिपोर्ट के आधार पर अभि. सा. 16 ने यह राय व्यक्त की कि मृतका अपनी मृत्यु से पूर्व बलात्संग के अपराध की शिकार हुई थी ।

8. इसी बीच, इस तथ्य के कारण कि मृतका अगले दिन घर वापस नहीं आई, तारीख 2 नवम्बर, 2007 को ही उसकी बहिन, अर्थात् अभि. सा. 13, ने उसके पते-ठिकाने के बारे में जांच-पड़ताल करनी आरंभ की । अभि. सा. 13 को कंपनी द्वारा यह सूचित किया गया कि मृतका पिछली रात्रि को कार्यस्थल पर नहीं आई थी । इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 13 को अभि. सा. 14 से उस दुर्भाग्यशाली रात्रि को 10.30 बजे और 11.00 बजे के बीच मृतका से दूरभाष पर हुई बातचीत से संबंधित घटना के बारे में जानकारी प्राप्त हुई । इसलिए उसी दिन सायंकाल में ही तुरंत पुलिस थाना, चतुश्रृंगी में गुमशुदा व्यक्ति रिपोर्ट दी गई ।

9. तारीख 3 नवम्बर, 2007 को अभि. सा. 12 और 13 को यह सूचित किया गया कि तालेगांव दाभडे पुलिस थाना की अधिकारिता के अंतर्गत एक शव बरामद हुआ है । परिणामस्वरूप, उक्त अभि. सा. 12 और 13 पुलिस थाने गए और मृतका के शव के एक फोटो और अभिगृहीत किए गए वस्त्रों के आधार पर उन्होंने मृतका की पहचान की पुष्टि की । इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 12 और 13 ने यह भी पुष्टि की कि शवगृह में रखा गया शव मृतका का है ।

10. पूर्वोक्त तारीख 2 नवम्बर, 2007 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट

रजिस्ट्रीकृत करने के पश्चात् पुलिस ने सम्यक् रूप से अन्वेषण का कार्य आरंभ किया और कंपनी से पूछताछ की । परिणामस्वरूप, तारीख 3 नवम्बर, 2007 को पूर्वाह्न में लगभग 5.30 बजे अभियुक्त सं. 1 और 2 को अभिरक्षा में लिया गया । उसके पश्चात्, अभियुक्त-अपीलार्थियों के संस्वीकृति कथन के आधार पर पुलिस ने उनके मकानों से मृतका की चुराई गई वस्तुएं अर्थात् सिम कार्ड, मोबाइल फोन, कान के झुमके, घड़ी, सोने की अंगुठी बरामद किए । उस यान को भी अभिगृहीत किया गया जिसमें अभियुक्त-अपीलार्थियों द्वारा मृतका को ले जाया गया था और उसका पंचनामा तैयार किया गया । इसके अतिरिक्त, तारीख 14 जनवरी, 2008 को शनाख्त परेड का आयोजन किया गया, जिसमें अभि. सा. 12 ने अभियुक्त सं. 1 और 2 की उन व्यक्तियों के रूप में शनाख्त की जो कैब में थे ।

11. अन्वेषण के अनुसरण में पुलिस द्वारा आरोप पत्र फाइल किया । तारीख 5 मार्च, 2009 को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 364, 376(2)(छ) और धारा 34 के साथ पठित धारा 404 के अधीन आरोप विरचित किए गए । तारीख 3 अप्रैल, 2010 को आरोप परिवर्तित किया गया और भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख के अधीन षड्यंत्र का स्वतंत्र आरोप जोड़ा गया । इसके अतिरिक्त, भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 376(2)(छ), 364 और 404 के अधीन आरोप के साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख के अधीन आरोप जोड़ा गया । अभियुक्त-अपीलार्थियों ने पूर्वोक्त आरोपों के लिए दोषी न होने का अभिवाक् किया और इस प्रकार मामला विचारण के लिए सुपुर्द किया गया ।

12. विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष ने 29 साक्षियों की परीक्षा कराई जिनमें से 11 साक्षियों की परीक्षा पारिस्थितिक साक्ष्य के पहलू पर की गई और इनमें हत्या तथा बलात्संग के तथ्य को सिद्ध करने वाले 2 डाक्टर थे । अभि. सा. 1, पुलिस पाटिल जिसने व्यक्तिगत तौर पर शिकायत रजिस्ट्रीकृत की थी, तारीख 2 नवम्बर, 2007 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए अपने इस वृत्तांत पर कायम रहा कि अभि. सा. 8 वह व्यक्ति है जिसने मृतका का शव पाया था और शिकायतकर्ता को इसकी सूचना दी थी । अभि. सा. 12, मृतका के जीजा ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि उसने अंतिम बार मृतक को जीवित देखा था और वह भी अभियुक्त-अपीलार्थी के साथ । अभि. सा. 14 के इस कथन का समर्थन दस्तावेजी

साक्ष्य अर्थात् कॉल रिकार्ड से किया गया है कि अपराह्न 10.30 बजे और 11.00 बजे मृतका से बात करने वाला वह अंतिम व्यक्ति है । दुर्भाग्यशाली रात्रि को मृतका ठिकाने के बारे में और अभियुक्त-अपीलार्थियों की शनाख्त के विषय में अभि. सा. 12, 13 और 14 के साक्ष्य संगत और विश्वासप्रद पाए गए । इसके अतिरिक्त, अभियुक्त-अपीलार्थियों के संस्वीकृति कथनों के आधार पर पुलिस ने यान, मृतका के शरीर से चुराई गई वस्तुएं तथा मृतका की वह ओढ़नी, जिसे हत्या करने अर्थात् गला घोंटने के लिए प्रयुक्त किए गए आयुध में से एक पाया गया था, को बरामद किया । बरामद की गई मृतका की ओढ़नी और वस्त्रों पर रासायनिक विश्लेषण के पश्चात् दोनों अभियुक्त-अपीलार्थियों के वीर्य के धब्बे पाए गए थे । इसके अतिरिक्त, मरणोत्तर परीक्षा के दौरान लिए योनिक फाए और रासायनिक विश्लेषण की रिपोर्ट के आधार पर यह दर्शित किया गया कि दोनों अभियुक्त-अपीलार्थियों का वीर्य उक्त फाए पर भी पाया गया था ।

13. सेशन न्यायालय ने अभिलेख की सामग्री और पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलों पर अत्यधिक सावधानीपूर्वक विचार करने के उपरांत यह मत व्यक्त किया कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य से एक ऐसी पूर्ण शृंखला का गठन होता है कि इससे अभियुक्त-अपीलार्थियों के दोष के सिवाय अन्य परिकल्पना अपवर्जित हो जाती है । सेशन न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि अभि. सा. 12, अभि. सा. 13, अभि. सा. 14, अभि. सा. 1 और अभि. सा. 11 के परिसाक्ष्य सत्य और विश्वसनीय हैं और इनके परिसाक्ष्य के साथ-साथ अभि. सा. 16 के साक्ष्य, मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट और रासायनिक विश्लेषक की रिपोर्ट से अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन होता है । सेशन न्यायालय ने यह अवेक्षा की कि अभि. सा. 12 के साक्ष्य, जिसने यह कथन किया है कि मृतका को अंतिम बार अभियुक्त-अपीलार्थियों के साथ देखा गया था, और साथ ही अभियुक्त-अपीलार्थियों द्वारा संहिता की धारा 313 के अधीन किए गए अपने कथनों में इस बारे में स्पष्टीकरण के अभाव से परिस्थितियों की शृंखला में एक मजबूत कड़ी जुड़ती है । सेशन न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अभियुक्त-अपीलार्थी यह साबित करने के अपने भार का निर्वहन करने में पूरी तरह से असफल रहे हैं कि मृतका उनके साथ नहीं थी या उनकी कैब का टायर पंचर हुआ था । इसके अतिरिक्त, अभियुक्त-अपीलार्थियों के बताने पर की गई बरामदगियों, जिनमें प्रश्नगत यान, उनके अपने-अपने मकानों से बरामद मृतका का सामान, मृतका की ओढ़नी जिसे हत्या के एक आयुध के रूप में

प्रयुक्त किया गया था, सम्मिलित हैं, और इनके साथ-साथ चिकित्सा साक्ष्य तथा अभि. सा. 16 के परिसाक्ष्य से अभियुक्त-अपीलार्थियों द्वारा अपराध करने का तथ्य सिद्ध होता है । अभियुक्त-अपीलार्थियों का पश्चात्वर्ती आचरण, जो उन्होंने अभि. सा. 11 को लेने और विलंब से आने के कारण के बारे में तथा मृतका के पते-ठिकाने के बारे में झूठ बोलकर जारी रखा, उनकी दोषिता के संगत और सामूहिक बलात्संग का अपराध करने के लिए अत्यधिक सावधानीपूर्वक बनाई गई उनकी योजना के अनुरूप पाया गया है । इसलिए पूर्वोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए सेशन न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि परिस्थितियों की शृंखला से किसी युक्तियुक्त संदेह के परे यह प्रमाणित होता है कि अभियुक्त-अपीलार्थियों ने मृतका के साथ बलात्संग और उसकी हत्या का जघन्य अपराध कारित किया है ।

14. दंडादेश की मात्रा के संबंध में सेशन न्यायालय ने **बच्चन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1], **माछी सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[2], **धनंजय चटर्जी** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[3], **देवेन्द्र पाल सिंह** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली**[4], **अक़ील अहमद** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[5] और **अतबीर सिंह** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली**[6] वाले मामलों में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित किए गए सुस्थिर सिद्धांतों की अवेक्षा की । इसके अतिरिक्त, सेशन न्यायालय ने मामले के मौजूद तथ्यों में गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों पर सम्यक् विचार करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि पलड़ा स्पष्ट रूप से अभियुक्त-अपीलार्थियों के विरुद्ध झुक रहा है । सेशन न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थियों को दंडादेश के प्रश्न पर सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख के अधीन दंडनीय अपराध के लिए प्रत्येक को 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित मृत्यु दंडादेश, भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए प्रत्येक को 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित मृत्यु दंडादेश, भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 376(2)(छ) के अधीन दंडनीय अपराध के लिए प्रत्येक को 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित आजीवन कारावास, भारतीय दंड

---

[1] (1980) 2 एस. सी. सी. 684.
[2] (1983) 3 एस. सी. सी. 470.
[3] (1994) 2 एस. सी. सी. 220.
[4] (2002) 5 एस. सी. सी. 234.
[5] (2008) 16 एस. सी. सी. 372.
[6] (2010) 9 एस. सी. सी. 1.

संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 364 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए प्रत्येक को 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित आजीवन कारावास और भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 404 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए प्रत्येक को दो वर्ष का कठोर कारावास और 10,000/- रुपए के जुर्माने का दंडादेश दिया । सेशन न्यायालय ने दंडादेश के अपने आदेश में यह उल्लेख किया कि अभियुक्त-अपीलार्थियों ने यह जघन्य अपराध पूर्व-योजनाबद्ध और अत्यधिक सावधानीपूर्वक कारित किए, जिससे अपराध को पूर्ण करने और मृतका को जान से मारने का दोनों अभियुक्तों का दृढ़ संकल्प दर्शित होता है । सेशन न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि जिस दुष्टता के साथ अपराध किए गए और जिस निर्दयता से मृतका के साथ बलात्संग किया गया और उसकी हत्या की गई और साथ ही अभियुक्त सं. 1 द्वारा धारित विश्वास की स्थिति के घोर दुरुपयोग तथा अपने कुकर्मों का कोई अनुताप या पछतावा न होने से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि प्रस्तुत मामला विरल से विरलतम कोटि के अंतर्गत रखे जाने के लिए एक उपयुक्त मामला है और अभियुक्त-अपीलार्थियों द्वारा प्रदर्शित नृशंसता के आनुपातिक एकमात्र दंड मृत्यु की शास्ति है ।

15. अभियुक्त-अपीलार्थियों ने पूर्वोक्त निर्णय और आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की, जिस पर दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में "संहिता" कहा गया है) की धारा 366 के अधीन मृत्यु दंडादेश की पुष्टि के लिए किए गए निर्देश के साथ सुनवाई की गई और तारीख 12 सितम्बर, 2012, 13 सितम्बर, 2012, 24 सितम्बर, 2012 और 25 सितम्बर, 2012 के सामान्य निर्णय द्वारा निपटारा किया गया ।

16. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा अभिलेख के संपूर्ण साक्ष्य पर विस्तारपूर्वक विचार किया और अभियुक्त-अपीलार्थियों की दोषसिद्धि और दंडादेश की सत्यता या अन्यथा को अभिनिश्चित करने के लिए सेशन न्यायालय के निर्णय और आदेश पर विस्तृत चर्चा की । उच्च न्यायालय ने अभियोजन साक्षियों के परिसाक्ष्यों सहित अभिलेख के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक परीक्षा की और यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि उक्त कथनों से तथ्यों संबंधी कोई विसंगति या असंगति प्रतिबिम्बित नहीं होती है और इसलिए इन्हें सटीक, विश्वसनीय और अखंडनीय साक्ष्य के रूप में समझा जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, चिकित्सीय साक्ष्य और अभि. सा. 16, अर्थात् डाक्टर जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी, द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य से

स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि मृतका के साथ बलात्संग का अपराध किया गया और उसकी बर्बरता से हत्या की गई । उच्च न्यायालय ने अभि. सा. 16 के इस कथन पर विचार किया कि मृत्यु खोपड़ी के अस्थिभंग सहित महत्वपूर्ण अंगों पर गंभीर क्षतियों के परिणामस्वरूप हुए सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी, जिसके अंतर्गत ललाटीय, कनपटी, मस्तिष्क के विदीर्ण सहित पार्श्विक हड्डी का अस्थिभंग तथा पसली का टूटना, दाएं फेफड़े का विदीर्ण होना तथा गला घोंटा जाना है, और इसके अतिरिक्त गला मृतका को पीछे से अचानक काबू करके घोंटा गया था । चिकित्सीय रिपोर्ट तथा रासायनिक विश्लेषक की रिपोर्ट के आधार पर उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अभियुक्त सं. 1 और 2 द्वारा बलात्संग करने के अपराध का तथ्य निश्चायक रूप से साबित किया गया है । उच्च न्यायालय ने यह अभिलिखित किया है कि जहां मृतका का शव छोड़ा गया था उस स्थल से हत्या करने में प्रयुक्त किए गए आयुधों की बरामदगी तथा अभियुक्त सं. 1 के मकान से की गई बरामदगी, जो इस अभियुक्त द्वारा की गई संस्वीकृति के आधार पर की गई थी, को भी किसी संदेह के परे सिद्ध किया गया है । उच्च न्यायालय ने किसी युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध की गई पारिस्थितिक साक्ष्य की शृंखला को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त-अपीलार्थियों की दोषिता का निष्कर्ष निकाला और सेशन न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय की पुष्टि की ।

17. उच्च न्यायालय ने दंडादेश की मात्रा के संबंध में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित सुस्थिर विधि की अवेक्षा की और यह निष्कर्ष निकाला कि वर्तमान मामला "विरल से विरलतम" कोटि के अंतर्गत आता है । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अभियुक्त-अपीलार्थियों द्वारा ये जघन्य कृत्य पैशाचिक और निर्दयता से किसी हिचकिचाहट और इसके परिणामों की परवाह किए बिना किए गए । इसके अतिरिक्त, अपराध कारित करने की रीति और साथ-ही-साथ उनके पश्चात्वर्ती आचरण से उनमें सुधार की कोई संभावना नहीं है और इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि अभियुक्त-अपीलार्थी रिहा होने पर ऐसा और इसी प्रकार का अपराध नहीं करेंगे । इसलिए उच्च न्यायालय ने सेशन न्यायालय द्वारा दिए गए मृत्यु दंडादेश की पुष्टि की ।

18. अभियुक्त-अपीलार्थी उन्हें दिए गए मृत्यु दंडादेश की पूर्वोक्त पुष्टि से व्यथित होकर हमारे समक्ष इस अपील में आए हैं ।

19. प्रारंभ में, यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इस न्यायालय ने

तारीख 4 जुलाई, 2013 के आदेश द्वारा दंडादेश के सीमित मुद्दे पर ही नोटिस जारी किया था । इसलिए विद्वान् काउंसेल ने अपना पक्षकथन केवल निचले न्यायालयों द्वारा दिए गए दंडादेश की मात्रा के अवधारण के प्रश्न तक ही सीमित रखा और उक्त दंडादेश में कमी करने की ईप्सा की ।

20. अभियुक्त-अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अपीलार्थियों को दिए गए मृत्यु दंडादेश को कम करने के समर्थन में जोरदार रूप से दलील दी कि यह मामला "विरल से विरलतम" प्रवर्ग के अंतर्गत नहीं आता है । इसके अतिरिक्त, उसने यह दलील दी कि वर्तमान मामले में न्यूनकारी परिस्थितियां अर्थात् अभियुक्त-अपीलार्थियों की आयु, कोई आपराधिक पृष्ठभूमि न होना और इस बात की संभाव्यता कि उन्हें सुधारा और पुनर्वासित किया जा सकता है, गुरुतरकारी परिस्थितियों पर भारी पड़ती हैं और इससे यह प्रतिबिम्बित होता है कि आजीवन कारावास न्याय की पूर्ति के लिए पर्याप्त होगा । इसके विपरीत, प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश का समर्थन किया ।

21. हमने अपील के पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों पर गंभीरता से विचार किया और अभिलेख के साक्ष्य के साथ-साथ निचले न्यायालयों द्वारा पारित किए गए निर्णयों और आदेशों की भी सावधानीपूर्वक संवीक्षा की ।

22. हम दंडादेशात्मक नीति की बाबत विधि की स्थिर स्थिति और इस न्यायालय द्वारा मामले के विशिष्ट तथ्यों में गुरुतरकारी और न्यूनकारी कारकों का मूल्यांकन करने के लिए विकसित सिद्धांतों का उल्लेख करके इस निर्णय को विस्तृत बनाना नहीं चाहते हैं । तथापि, **बच्चन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय की अवेक्षा करना उपयोगी होगा, जिसमें उन उपबंधों की सांविधानिक विधिमान्यता को मान्य ठहराया गया था जो विचारण न्यायालय को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध और अन्य अपराधों के लिए मृत्यु दंडादेश देने के लिए प्राधिकृत करते हैं । तथापि, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि ऐसा कोई नियमनिष्ठ सिद्धांत नहीं हो सकता है जिसे प्रत्येक मामले में लागू किया जा सके और दिए जाने वाले दंड पर विचार करते समय न्यायालय को अवश्य गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए । **बच्चन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में के विनिश्चयाधार का अनुसरण **माछी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में किया

गया था, जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि समुचित दंडादेश देते समय अपराध कारित करने की रीति, अपराध कारित करने का हेतु, अपराध की समाज-विरोधी प्रकृति, अपराध की मात्रा और अपराध के शिकार व्यक्ति के व्यक्तित्व को ध्यान में रखा जाना चाहिए । यह अभिनिर्धारित किया गया कि गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों का एक तुलन-पत्र तैयार किया जाना चाहिए और ऐसा करते समय न्यूनकारी परिस्थितियों को पूरा महत्व दिया जाना चाहिए और दोनों में संतुलन बनाए रखा जाना चाहिए ।

23. यह एक स्थापित स्थिति है कि विधि सामाजिक हितों को विनियमित करती है और परस्पर-विरोधी दावों और मांगों के बीच मध्यस्थ का काम करती है । व्यक्तियों की सुरक्षा राज्य का मूलभूत कार्य है जिसे दांडिक विधि के माध्यम से पूरा किया जा सकता है । आज समाज विधि-विरुद्धता से संक्रमित हो गया है जिसने सामाजिक व्यवस्था को बुरी तरह से अस्त-व्यस्त कर दिया है । विधि का उद्देश्य समाज की संरक्षा और आपराधिक दुष्प्रवृत्ति का समूल नष्ट करना होना चाहिए, जिसे समुचित दंडादेश अधिरोपित करके प्राप्त किया जा सकता है । इसलिए इस संदर्भ में, इस न्यायालय के लिए जिस महत्वपूर्ण कार्य का निर्वहन करना अपेक्षित है, वह इस चुनौती का सामना करने के लिए दंडात्मक प्रणाली में परिवर्तन करना है । प्रत्येक मामले के तथ्य और विद्यमान परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, वह रीति जिसमें इसकी योजना बनाई गई और इसे कारित किया गया, अभियुक्त का आचरण तथा अन्य विद्यमान परिस्थितियां वे सुसंगत तथ्य हैं जिन पर विचार करना होगा । मामले के तथ्यों के आधार पर इस न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि उसे जहां आवश्यक हो वहां कठोरता दिखानी चाहिए और जहां आवश्यकता हो वहां दयालुता दिखानी चाहिए ।

24. इस संदर्भ में, उस रीति की अवेक्षा करना उपयोगी होगा जिसमें इस न्यायालय ने कतिपय गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों के संबंध में दंडादेशात्मक नीति पर विचार किया है ।

25. **रामनरेश** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों को शासित करने वाले सिद्धांतों को अधिकथित करने के लिए **बच्चन सिंह** (उपरोक्त) और **माछी सिंह**

[1] (2012) 4 एस. सी. सी. 257.

(उपरोक्त) वाले मामलों को निर्दिष्ट किया । इन परिस्थितियों को इसमें नीचे निर्दिष्ट करना उपयोगी रहेगा :–

"गुरुतरकारी परिस्थितियां –

(1) अभियुक्त, जिसका मृत्यु से दंडनीय महापराध के लिए दोषसिद्धि का पूर्व रिकार्ड रहा हो, द्वारा हत्या, बलात्संग, सशस्त्र डकैती, व्यपहरण आदि जैसे जघन्य अपराध करना या ऐसे व्यक्ति द्वारा किए गए अपराध जिसका गंभीर हमले और आपराधिक दोषसिद्धियों का पर्याप्त इतिवृत्त रहा है ।

(2) अपराध तब किया गया था जब अपराधी कोई अन्य गंभीर अपराध करने में लगा था ।

(3) अपराध जन-साधारण में डर पैदा करने के लिए किया गया था और अपराध सार्वजनिक स्थल पर ऐसे आयुध या औजार से कारित किया गया हो जो स्पष्ट रूप से एक से अधिक व्यक्तियों के जीवन के लिए खतरनाक हो सकता था ।

(4) हत्या का अपराध फिरौती के लिए किया गया हो या धन अथवा धनीय फायदे के लिए इसी प्रकार का अपराध किया गया हो ।

(5) भाड़े पर हत्या करना ।

(6) अपराध विपदग्रस्त के साथ अमानवीय व्यवहार और यातना देने में अंतर्ग्रस्त रहते हुए निर्दयतापूर्वक केवल अभिलाषा के लिए किया गया हो ।

(7) किसी व्यक्ति द्वारा अपराध विधिपूर्ण अभिरक्षा में रहते हुए किया गया हो ।

(8) हत्या या अपराध विधिपूर्ण रूप से अपने कर्तव्य का पालन कर रहे व्यक्ति को जैसे गिरफ्तारी या विधिपूर्ण परिरोध के किसी स्थल में स्वयं अथवा किसी अन्य की अभिरक्षा को निवारित करने के लिए किया गया हो । उदाहरण के लिए, ऐसे व्यक्ति की हत्या करना जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 43 के अधीन अपने कर्तव्य के विधिपूर्ण निर्वहन में लगा हो ।

(9) जब अपराध की मात्रा उच्च कोटि की हो, जैसे संपूर्ण परिवार की या किसी विशिष्ट समुदाय के सदस्यों की हत्या का प्रयत्न करना ।

(10) जब अपराध का शिकार व्यक्ति निर्दोष, असहाय है या ऐसा व्यक्ति है जो नातेदारी के विश्वास और सामाजिक सन्नियमों पर निर्भर हो, जैसे कोई बालक, असहाय स्त्री, कोई पुत्री या भतीजी जो पिता/चाचा के साथ रह रही है और ऐसे विश्वासी व्यक्ति द्वारा उसके साथ अपराध किया जाता है ।

(11) जब हत्या ऐसे हेतु के लिए की जाती है जिससे पूर्ण दुराचारिता और नीचता दर्शित होती हो ।

(12) जब हत्या प्रकोपन के बिना निर्दयता से की गई हो ।

(13) अपराध इतनी बर्बरता से कारित किया जाता है कि उससे न केवल न्यायिक अंतश्चेतना को अपितु समाज की अंतश्चेतना को भी गहरी ठेस या सदमा पहुंचा हो ।

न्यूनकारी परिस्थितियां –

(1) जिस रीति में और जिन परिस्थितियों के अधीन अपराध कारित किया गया, उदाहरण के लिए, गहन मानसिक या भावनात्मक व्याकुलता अथवा प्रसामान्य अनुक्रम में की इन सभी स्थितियों के प्रतिकूल उच्चकोटि का प्रकोपन हो ।

(2) अभियुक्त की आयु एक सुसंगत बात है किंतु स्वतः एक निश्चायक कारक नहीं है ।

(3) अपराधी के अपराध में पुनः संलिप्त न होने की संभावना और अभियुक्त के सुधरने या पुनर्वासित होने की अधिसंभाव्यता ।

(4) अभियुक्त की दशा से यह दर्शित होता है कि वह मानसिक रूप से विकृत था और विकृति के कारण आपराधिक आचरण की परिस्थितियों का मूल्यांकन करने की उसकी क्षमता का ह्रास हो गया था ।

(5) ऐसी परिस्थितियां, जिनसे जीवन के प्रसामान्य अनुक्रम में ऐसा व्यवहार करना संभव हो जाता है और लगातार तंग किए जाने जैसी प्रस्तुत स्थिति में मानसिक असंतुलन हो जाना संभव है या वस्तुतः, मानवीय व्यवहार ऐसा हो जाता है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अभियुक्त यह सोचता है कि उसने अपराध करके नैतिक रूप से ठीक किया है ।

(6) जहां साक्ष्य का उचित मूल्यांकन करने के पश्चात् न्यायालय

का यह मत है कि अपराध पूर्व-निर्धारित रीति में कारित नहीं किया गया था और मृत्यु कोई अन्य अपराध करने के अनुक्रम में हुई थी तथा इसका यह अर्थान्वयन लगाए जाने की संभाव्यता हो कि यह अपराध मूल अपराध कारित करने के परिणामस्वरूप हुआ था ।

(7) जहां किसी एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के परिसाक्ष्य का अवलंब लेना पूर्णतः असुरक्षित हो, हालांकि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त के दोष को सिद्ध कर दिया हो ।"

26. इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अपर्याप्त दंडादेश अधिरोपित करके बरती गई असम्यक् सहानुभूति से न्याय व्यवस्था को अधिक हानि उठानी पड़ेगी तथा विधि की प्रभावोत्पादकता में लोक विश्वास कम होगा (**महेश** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] **सेवक पेरुमल** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[2] और **मोफिल खान** बनाम **झारखंड राज्य**[3] वाले मामले देंखे) । अभियुक्त को कमतर दंड देना देश की न्यायिक व्यवस्था को संदेहास्पद बनाना होगा । यदि न्यायालय क्षतिग्रस्त का संरक्षण नहीं करते हैं, तो फिर क्षतिग्रस्त व्यक्तिगत तौर पर बदला लेने की सोचेंगे । इसलिए प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि अपराध की प्रकृति और उस रीति को जिसमें अपराध निष्पादित किया गया या कारित किया गया आदि को ध्यान में रखते हुए उचित दंडादेश अधिनिर्णीत करें ।

27. **बी. ए. उमेश** बनाम **कर्नाटक उच्च न्यायालय**[4] वाले मामले में अपीलार्थी एक महिला के साथ बर्बरतापूर्वक बलात्संग करने और हत्या करने का अभियुक्त था । चिकित्सीय साक्ष्य से यह पाया गया कि मृतका की हत्या करने से पूर्व उसके साथ हिंसात्मक बलात्संग किया गया था और मृत्यु श्वासोवरुद्ध होने के कारण हुई थी । इसके अतिरिक्त, चिकित्सीय रिपोर्ट में यह पाया गया कि मृतका के शरीर पर कई सारी खरोंचें और विदारण-जन्य क्षतियां थीं । इस न्यायालय ने अपराध कारित करने की बर्बर और हिंसात्मक रीति को ध्यान में रखते हुए अभियुक्त को दिए गए मृत्यु दंडादेश की पुष्टि की । यह अभिनिर्धारित किया गया कि :–

"84. जैसा कि निचले न्यायालयों द्वारा उपदर्शित किया गया है,

---

[1] (1987) 3 एस. सी. सी. 80.
[2] (1991) 3 एस. सी. सी. 471.
[3] (2015) 1 एस. सी. सी. 67.
[4] (2011) 3 एस. सी. सी. 85.

अपीलार्थी के पूर्ववृत्त और उसके पश्चात्वर्ती आचरण से यह उपदर्शित होता है कि वह समाज के लिए खतरा है और उसे पुनर्वासित नहीं किया जा सकता है । अपीलार्थी द्वारा कारित किए गए अपराध न तो विबाध्यतावश और न ही प्रकोपन के अधीन किए गए हैं और उसके द्वारा विपदग्रस्त के साथ हिंसात्मक रूप से बलात्संग करने के पश्चात् एक निर्दोष के जीवन का अंत कर दिया गया ।"

28. **सेवक पेरुमल** (उपरोक्त) वाले मामले में उसमें के अपीलार्थियों की ओर से काउंसेल ने यह दलील दी कि अभियुक्तों की अल्प आयु पर विचार करते हुए यह बात मृत्यु दंडादेश को कम करने के लिए एक मजबूत न्यूनकारी परिस्थिति है । उस मामले में यह दलील दी गई कि अभियुक्त अपने परिवार के रोजी-रोटी कमाने वाले हैं और उनके परिवार में युवा पत्नी, अप्राप्तवय बालक और वृद्ध माता-पिता हैं । तथापि, इस न्यायालय ने उक्त दलील में कोई बल न पाते हुए यह मत व्यक्त किया कि अनुकम्पा के ऐसे आधार अधिकांश मामलों में विद्यमान रहते हैं और ऐसे आधार मृत्यु दंडादेश देने में हस्तक्षेप करने के लिए सुसंगत नहीं हैं । **मोफिल खान** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायधीशों की न्यायपीठ द्वारा इस सिद्धांत की अभिपुष्टि की गई है कि जब अपराध भयावह हो और सोच-समझकर तथा बर्बर रीति में कारित किया गया हो, तब अभियुक्त की आयु एक सुसंगत कारक नहीं हो सकता है ।

29. इस न्यायालय के दृष्टिकोण को बल देने वाले पूर्वोक्त विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए अब हम वर्तमान मामले में निचले न्यायालयों के विनिश्चय पर विचार करेंगे । सेशन न्यायालय ने वर्तमान मामले को **धनंजय चटर्जी** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के समान पाया । इसलिए सेशन न्यायालय ने उस विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान मामला मृत्यु की शास्ति का दंडादेश, न कि इससे कम, देने के लिए उचित है । सेशन न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है :–

" .....वर्तमान मामले में अभियुक्त ड्राइवर ने सह-अभियुक्त के साथ मिलकर अपराध की सावधानीपूर्वक योजना बनाकर उस असहाय और निराश्रित युवा लड़की के साथ बलात्संग किया और उसकी हत्या कर दी जिसका उस पर पूर्ण भरोसा और विश्वास था और अपराध को बर्बर रीति में कारित किया । **धनंजय चटर्जी** (उपरोक्त) वाले मामले में के निर्णय को मानदंड के रूप में लेते हुए

यह अभिलिखित करने में कोई संकोच नहीं है कि प्रस्तुत मामला विरल से विरलतम मामला है जिसमें अभियुक्तों को कोई और नहीं अपितु मृत्यु की शास्ति दिए जाने की आवश्यकता है ..... ।"

30. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट और अखंडनीय रूप से सिद्ध की गई परिस्थितियों की शृंखला के संबंध में सेशन न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों के प्रति सहमति व्यक्त की है । गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों के तुलन-पत्र के विषय में उच्च न्यायालय ने सेशन न्यायालय के निष्कर्ष और मताभिव्यक्तियों के अतिरिक्त यह अभिनिर्धारित किया है कि गुरुतरकारी परिस्थितियां न्यूनकारी परिस्थितियों से कहीं अधिक भारी हैं । इसलिए उच्च न्यायालय ने यह अभिलिखित किया है कि सेशन न्यायालय द्वारा यथा अधिनिर्णीत मृत्यु दंडादेश की पुष्टि करने के सिवाय कोई अनुकल्प नहीं है ।

31. इस प्रक्रम पर, **धनंजय चटर्जी** (उपरोक्त) वाले मामले की अवेक्षा करना उचित होगा । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, सेशन न्यायालय द्वारा उक्त मामला वर्तमान मामले के तथ्यों से बहुत अधिक मिलता-जुलता पाया गया । **धनंजय चटर्जी** (उपरोक्त) वाले मामले में अभियुक्त को लगभग 18 वर्ष आयु की एक युवा लड़की के साथ बर्बर बलात्संग करने और उसकी हत्या करने के लिए दोषसिद्ध किया गया था । उस मामले में अभियुक्त उस भवन के सुरक्षा गार्ड के रूप में नियोजित था जहां मृतका रहती थी और इसलिए उसे उसकी सुरक्षा और संरक्षा सुनिश्चित करने का उत्कृष्ट कार्य सौंपा गया था । उस मामले में का तर्काधार इस न्यायालय की दंडादेशात्मक नीति को परिवर्तित करने का माध्यम रहा है और इसलिए उक्त मामले के सुसंगत पैराओं को उद्धृत करना उपयोगी होगा :–

"15. हमारी राय में, किसी प्रस्तुत मामले में दंड की मात्रा अपराध की बर्बरता, अपराधी के आचरण और अपराध के शिकार व्यक्ति के प्रतिरक्षा-विहीन तथा असुरक्षित दशा पर निर्भर करनी चाहिए । समुचित दंड का अधिरोपण एक ऐसी रीति है जिसके द्वारा न्यायालय समाज की अपराधियों के विरुद्ध न्याय की पुकार का उत्तर देते हैं । न्याय की यह मांग है कि न्यायालयों को अपराध के अनुरूप दंड अधिरोपित करना चाहिए जिससे कि न्यायालय अपराध के प्रति जनता की घृणा को प्रतिबिम्बित कर सकें । न्यायालयों को समुचित दंड के

अधिरोपण पर विचार करते समय केवल अपराधी के अधिकारों को ही ध्यान में नहीं रखना चाहिए अपितु अपराध के शिकार व्यक्ति और बृहत समाज के अधिकारों को भी ध्यान में रखना चाहिए ।

16. उस सुरक्षा गार्ड की घृणास्पद घटना ने, जिसका पुनीत कर्तव्य अपार्टमेंट में फ्लैटों में रहने वाले व्यक्तियों की संरक्षा और कल्याण को सुनिश्चित करना था, उन फ्लैटों में से एक फ्लैट की निवासी, मृतका को अपनी वासना की पूर्ति के लिए शिकार बनाया और उसकी शिकायत पर किए गए अपने स्थानांतरण का बदला लेने के लिए फिर उसकी हत्या कर दी, इससे अपराध और भी जघन्य हो जाता है । चिकित्सीय साक्ष्य और जिस दशा में मृतका का शव पाया गया था, को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि एक 18 वर्षीय विद्यालय में पढ़ने वाली असहाय और प्रतिरक्षा-विहीन लड़की के साथ अति जघन्य प्रकार का पैशाचिक बलात्संग किया गया और उसकी हत्या कर दी गई थी । यदि सुरक्षा गार्ड इस रीति में बर्ताव करेंगे तो ऐसे गार्डों से सुरक्षा कौन उपलब्ध कराएगा ? गार्ड के ऐसे पैशाचिक कृत्य से समाज का विश्वास पूरी तरह से उठ गया है और उसकी न्याय के लिए पुकार बुलंद हो गई है । निर्ममता से बलात्संग और फिर निर्दयता से हत्या का यह अपराध अमानवीय और पैशाचिक ही नहीं, अपितु समाज की गरिमा के लिए अपमानजनक है । अपराध की इस पाश्विक प्रकृति ने हमारी न्यायिक अंतश्चेतना को सदमा पहुंचाया है । इस मामले में किसी प्रकार की कोई गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियां नहीं हैं । हम इस बात से सहमत हैं कि न्यायालयों द्वारा मृत्यु दंडादेश की पुष्टि करते समय मानव जीवन की गरिमा के वास्तविक और पालनीय सरोकार को ध्यान में रखा जाना चाहिए किंतु एक 18 वर्षीय निर्दोष और प्रतिरक्षा-विहीन युवा लड़की के साथ सुरक्षा गार्ड द्वारा बलात्संग करने के पश्चात् निर्दयतापूर्वक पूर्व-योजनाबद्ध, किसी प्रकोपन के बिना, निर्मम हत्या करने से यह मामला निश्चित रूप से विरल से विरलतम मामला है जिसमें मृत्यु दंड से भिन्न कोई अन्य दंड अपेक्षित नहीं है और हम तद्नुसार अपीलार्थी पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए अधिरोपित मृत्यु दंड की पुष्टि करते हैं । निचले न्यायालयों द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 376 और 380 के अधीन अपराधों के लिए अपीलार्थी पर अधिरोपित दंडादेश के आदेश की भी इससे संबंधित इस निदेश की पुष्टि की जाती है क्योंकि अपीलार्थी को

फांसी देने की स्थिति में ये दंडादेश अव्यवहारिक बनकर रह जाएंगे । यह अपील असफल होती है और तद्द्वारा खारिज की जाती है ।"

32. अब इस न्यायालय के लिए गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों के तुलन-पत्र पर विचार करना आवश्यक है । प्रस्तुत मामले में, अभियुक्त-अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अभियुक्तों की आयु, उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि और आपराधिक पृष्ठभूमि न होने की बात पर जोर दिया है । इसके अतिरिक्त, विद्वान् काउंसेल ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि अभियुक्त-अपीलार्थियों में सुधार हो सकता है और इसलिए आजीवन कारावास का कमतर दंड दिया जाना चाहिए ।

33. हमारी सुविचारित राय में, वर्तमान मामले के तथ्यों में केवल आयु एक न्यूनकारी परिस्थिति के रूप में सर्वोपरि ध्यान में रखने वाली बात नहीं हो सकती है । इसी प्रकार, अभियुक्तों की पारिवारिक पृष्ठभूमि को भी एक न्यूनकारी परिस्थिति होना नहीं कहा जा सकता है । जहां तक अभियुक्त सं. 1 का संबंध है, यह दलील दी गई है कि उसका सुखी विवाहित जीवन था और सुसंगत समय पर उसकी पत्नी गर्भवती थी । तथापि, अभियुक्त सं. 1 ने उक्त अपराध कारित करते समय अपनी पत्नी और अपनी माता की दशा पर विचार नहीं किया और परिणामस्वरूप उसकी पत्नी ने उसका परित्याग कर दिया और उसकी विधवा माता की देखरेख उसके भतीजे और भतीजी द्वारा की जा रही है । जहां तक अभियुक्त सं. 2 का संबंध है, उसकी दो बहिनें हैं जो उसकी विधवा माता की देखरेख कर रही हैं । आपराधिक पृष्ठभूमि न होना भी न्यूनकारी परिस्थिति नहीं माना जा सकता है विशिष्ट रूप से अपराध की जघन्य प्रकृति और नृशंसता तथा उस सोची-समझी रीति पर विचार करते हुए जिसमें अभियुक्तों द्वारा यह अपराध कारित गया था ।

34. हमारी सुविचारित राय में, विरल से विरलतम मामला तब होगा जब अभियुक्त समाज के लिए संकट या खतरा हो और समाज में सौहार्द बनाए रखने के विसंगत हो । ऐसे मामले में जहां अभियुक्त प्रकोपन पर या क्षणभर में कार्य न करके सावधानीपूर्वक एक सोचा-समझा, निर्दयतापूर्ण और पूर्व-योजनाबद्ध अपराध, इसके परिणामों की ओर तनिक भी ध्यान दिए बिना, निष्पादित करता है, वहां हमारे दांडिक न्यायशास्त्र द्वारा प्रतिपादित दंडादेशात्मक नीति के अनुसार अनुमित झुकाव मृत्यु दंडादेश की ओर जाएगा । यह न्यायालय इस स्थिर सिद्धांत से अभिज्ञ है कि दांडिक विधि में दंड अधिनिर्णीत करने में आनुपातिकता के नियम का कड़ाई से पालन करने

की आवश्यकता है और यह दंड आपराधिक कृत्य की आपराधिकता के अनुसार होना चाहिए । इसके अतिरिक्त, न्यायसंगत दंड अधिनिर्णीत न करने पर समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का भी इस न्यायालय को भान है ।

35. वर्तमान तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, अभियुक्त सं. 1 ने अभियुक्त सं. 2 की सहायता से मृतका का व्यपहरण किया और उसके पश्चात् उन्होंने उसके साथ बलात्संग किया और हत्या कर दी । उन्होंने जघन्य अपराध करने के दौरान और न ही उसके पश्चात् किसी भी समय पर कोई पछतावा, खेद या अनुताप नहीं दिखाया, बल्कि अपराध करने के पश्चात् विशृंखल रूप से प्रसामान्य रीति में कार्य किया । मजबूत और सटीक साक्ष्य द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि घृणास्पद अपराध करने के पश्चात् अभियुक्त सं. 2 दूसरे व्यक्ति को लेने के लिए अभियुक्त सं. 1 के साथ रहा था और कंपनी के द्वार पर पहुंचने से पूर्व ही कैब से उतरा था । इसके अतिरिक्त, अभिलेख पर यह लाया गया है कि अभियुक्त सं. 1 ने कैब के ठिकाने तथा कार्यस्थल पर विलंब से पहुंचने के कारण के बारे में मिथ्या अभिलेख बनाने का प्रयत्न किया था । इसके अतिरिक्त, यह पाया गया है कि यद्यपि अभि. सा. 12 अभियुक्त-अपीलार्थी को देख गया था, मृतका उनसे अप्रायिक रास्ते पर जाने के बारे में बार-बार प्रश्न कर रही थी, या यात्रा के दौरान मृतका फोन पर अपने एक मित्र से बात कर रही थी, इन सबके बावजूद वे जघन्य अपराध करने से नहीं रुके । वास्तव में, सेशन न्यायालय ने यह पाया कि अपराध करने के दौरान अभियुक्त-अपीलार्थियों से अभि. सा. 11 द्वारा उसे लेने में विलंब होने के बारे में पूछा था, तथापि, यह बात भी उन्हें अपराध करने से नहीं रोक पाई ।

36. इस प्रकार वह रीति, जिसमें जिस सतर्कता और सावधानीपूर्वक अपराध करने की योजना बनाई गई और इसके साथ-साथ अपराध निष्पादित करने में बरती गई घोर नृशंसता और मानवता के प्रति निष्ठुरता से उनके द्वारा भविष्य में इसी प्रकार का अपराध करने की पूरी संभाव्यता है । यह स्पष्ट है कि दोनों अभियुक्तों के भविष्य में समाज के लिए खतरा होने की बात साबित की गई है, जो जोरदार रूप से इस अधिसंभाव्यता को नकारती है कि उन्हें सुधारा या पुनर्वासित किया जा सकता है । हमारी सुविचारित राय में, वर्तमान तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में न्यूनकारी परिस्थितियों का पूरी तरह से अभाव है । यह अपील ऐसा मामला नहीं है जहां अभियुक्तों द्वारा अपराध अत्यंत मानसिक और भावनात्मक विकृति के प्रभाव के अधीन किया गया हो, न ही यह ऐसा मामला है जहां यह तर्क दिया जा

सकता हो कि अपराध आवेश में किया गया अपराध हो या क्षणभर में कारित किया गया हो । ऐसा कोई प्रश्न नहीं है कि अभियुक्तों का यह विश्वास हो कि उन्होंने असहाय और प्रतिरक्षा-विहिन युवा लड़की के साथ अपराध करके नैतिक रूप से न्यायोचित किया है ।

37. अतः, उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए और दंड की आनुपातिकता के पूर्वोक्त सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए यह न्यायालय निचले न्यायालयों के इस तर्काधार से सहमत है कि जिस घोर निर्दयता से मृतका की मृत्यु कारित की गई और इसके साथ-साथ अभियुक्त सं. 1 द्वारा धारित न्यास-स्थिति सहित अन्य कारकों से गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों का संतुलन अत्यधिक रूप से अभियुक्त-अपीलार्थियों के विरुद्ध जाता है । ऐसी विपदग्रस्त, जो अभियुक्त पर विश्वास करती थी, के साथ बलात्संग करने के बर्बर कार्य के साथ-साथ उक्त विपदग्रस्त की निर्दयता और नृशंसता से हत्या करने तथा अभियुक्तों का अपराध करने के पश्चात् के सोचे-समझे और पश्चाताप-विहिन आचरण से हमें यह निष्कर्ष निकालना होगा कि अपीलार्थियों के अपराध की निर्दयता से मृत्यु दंड की शास्ति से भिन्न कोई कमतर दंडादेश नहीं बनता है ।

38. उपरोक्त के अतिरिक्त, इस न्यायालय के लिए ऐसे अपराध का समुदाय और विशिष्ट रूप से उन स्त्रियों पर पड़ने वाले प्रभाव की अवेक्षा करना आवश्यक हो जाता है जो पुणे में, जिसे सूचना प्रौद्योगिकी का केन्द्र माना जाता है, रात्रि की पारी में काम करती हैं । हाल के वर्षों में, अपराध की बढ़ती हुई दर, विशिष्ट रूप से स्त्रियों के विरुद्ध हिंसात्मक अपराधों ने न्यायालयों द्वारा अपनाई जाने वाली दांडिक दंडादेश की नीति को एक चिंता का विषय बना दिया है । ऐसे मामलों में न्यायालयों द्वारा अपनाई गई दंडादेशात्मक नीति के अधिक कड़े मानदंड होने चाहिएं ताकि भयोपरतिकारी के रूप में कार्य कर सके । हैरान करने वाले ऐसे अनेक मामले हैं जहां अभियुक्त को दिया गया दंडादेश अपराध की गंभीरता और परिमाण के अनुपात में नहीं होता है जिससे अपराधियों का दुस्साहस बढ़ता है और अंततोगत्वा ऐसे न्याय से व्यवस्था की विश्वसनीयता कमजोर होती है । दंडादेशात्मक नीति का उद्देश्य यह देखना होना चाहिए कि अपराध दंड-विहिन न रह जाए और अपराध के शिकार व्यक्ति के साथ-साथ समाज भी इस बात से संतुष्ट हो कि उसके साथ न्याय हुआ है । **माछी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि मृत्यु का अधिकतम दंड ऐसे मामलों में दिया जाना न्यायोचित और

आवश्यक होगा जहां समाज की सामूहिक अंतश्चेतना इस प्रकार हिल कर रह जाए कि वे अपनी व्यक्तिगत राय को विचार में लाए बिना न्यायिक शक्ति के धारकों से यह प्रत्याशा करते हों कि मृत्यु की शास्ति ही दी जाएगी ।

39. यह बात सत्य है कि बलात्संग और हत्या के किसी भी मामले से समाज को धक्का पहुंचेगा किंतु हो सकता है ऐसे सभी अपराधों से समाज में प्रतिक्रिया न हो । कतिपय अपराध ऐसे होते हैं जो न्यायालय और समाज की सामूहिक अंतश्चेतना को धक्का पहुंचाते हैं । एक निर्दोष और असहाय युवा लड़की के साथ उन अभियुक्तों द्वारा सामूहिक बलात्संग किया जाना जिन पर उसने अपना विश्वास जताया हो और उसके पश्चात् निर्दयता से उसकी हत्या कर देना तथा अपराध को छिपाने का सोचा-समझा प्रयास करना अपराध का एक ऐसा दृष्टांत है जिससे समाज और न्यायालय की सामूहिक अंतश्चेतना को धक्का पहुंचा है और पराभूत किया है । इसलिए पूर्वोक्त स्थिर सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि यह मामला "विरल से विरलतम" कोटि के अंतर्गत आता है, जिसमें मृत्यु की शास्ति, न कि कोई और, दंड दिया जाना उचित है । इस अपराध ने समाज की सामूहिक अंतश्चेतना को इस प्रकार हिला कर रख दिया कि अभियुक्तों पर आनुकल्पिक दंडादेश अर्थात् आजीवन कारावास अधिरोपित करने से न्याय की पूर्ति नहीं होगी । बल्कि, इससे अन्य संभावी अपराधी ऐसे अपराध करने के लिए प्रेरित होंगे और आजीवन कारावास जैसे कमतर/हल्के दंड पाकर बच जाएंगे ।

40. परिणामतः, अभिलेख के संपूर्ण साक्ष्य के साथ-साथ निचले न्यायालयों के निर्णयों का अति विस्तार से समालोचनात्मक मूल्यांकन करने के पश्चात्, हम विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थियों को मृत्यु दंडादेश देते हुए अभिलिखित किए गए और उच्च न्यायालय द्वारा उसकी पुष्टि करते हुए दिए गए कारणों से सहमत हैं । हमारे सुविचारित मत में, निचले न्यायालयों द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश में किसी प्रकार की कोई त्रुटि नहीं है ।

41. अतः, यह अपील नामंजूर की जाती है और अभियुक्त-अपीलार्थियों को दिए गए मृत्यु दंडादेश की पुष्टि की जाती है । तद्नुसार, उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश की अभिपुष्टि की

जाती है ।

42. इस अपील का उपरोक्त निबंधनों के अनुसार निपटारा किया जाता है ।

तद्नुसार आदेश किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

[2015] 3 उम. नि. प. 133

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

बनाम

अनिल कुमार शर्मा और एक अन्य

14 मई, 2015

न्यायमूर्ति दीपक मिश्र, न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल और न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 173(2) और 207 – न्यायिक अधिकारिता का प्रयोग – दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन अन्वेषक अधिकारी के लिए आरोप पत्र के साथ अभियुक्त को पेश करने की कोई अपेक्षा नहीं है इसलिए उच्च न्यायालय ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित करने के लिए फाइल की गई रिट याचिका को लोक हित वाद मानकर विधि की गलती की और पर्याप्त आंकड़े और सामग्री के बिना व्यापक निदेश जारी किए ।

मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार है कि अनिल कुमार शर्मा आगरा के ई. एस. आई. अस्पताल में लिपिक था । उसे आगरा के के. आर. वी. अस्पताल में 23 मई, 2012 को स्थानांतरित और तैनात किया गया । उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अधीन दंडनीय अपराध के बाबत आगरा जिले के हरि पर्वत पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई जिसे 2012 के अपराध मामला सं. 1044 के रूप में दर्ज किया गया । रिट याची द्वारा यह अभिवचन किया गया कि उसे जांच और रजिस्ट्रीकरण काउंटर का काम दिया गया था जिसका दवाइयों के खरीदने

या भंडारी के रूप में काम करने से कुछ लेना-देना नहीं था । इस प्रकार उसके विरुद्ध दर्ज प्रश्नगत ऐसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित किए जाने योग्य है । तारीख 7 जनवरी, 2013 को उच्च न्यायालय ने रिट याची की गिरफ्तारी का अंतरिम रोक मंजूर किया और आश्चर्य की बात है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 173(2) के अधीन रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय पुलिस द्वारा अभियुक्त की गिरफ्तारी सहित विभिन्न कारकों के कारण विचारण में होने वाले विलंब से संबंधित कतिपय मताभिव्यक्तियां व्यक्त कीं । यह अपील 2013 की दांडिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 62 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 24 मई, 2013 के आदेश के विरुद्ध की गई है जिसे निरर्थक होने के पश्चात् भी जीवित रखा गया है । इस अपील में विधि का यह सारवान् प्रश्न उठाया गया है कि किस सीमा तक उच्च न्यायालय आपराधिक विचारण में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया से संबंधित न्यायिक पक्ष की ओर से निदेश जारी करने में अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त आपराधिक विचारणों में विलंब की चिंता की प्रसंशा करता है किंतु ऐसी रीति जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा इस मामले में कई निदेश जारी किए गए हैं विशेषकर ऐसा निदेश जो दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अनुरूप नहीं है, की प्रसंशा नहीं की जा सकती है । कोई कितना भी सशक्तवान क्यों न हो, विधि से ऊपर नहीं है । कोई संस्था न्यायपालिका सहित जवाबदेही से मुक्त नहीं है । न्यायपालिका की अपने न्यायिक कृत्यों और आदेशों के बाबत जवाबदेही अपील आदेशों के प्रत्यावर्तन या पुनर्विलोकन के उपबंधों द्वारा कृपापूर्वक प्रदान की जाती है । उपरोक्त विमर्शित इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए न्यायालय का यह मत है कि उच्च न्यायालय ने उस रिट याचिका को लोक हित वाद मानने की विधि की गलती की है, जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित करने के लिए फाइल की गई थी, और निरर्थक हो गई और निदेश पारित करने के लिए उसके समक्ष पर्याप्त आंकड़े और सामग्री के बिना अनेक निदेश जारी किए । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन अन्वेषक अधिकारी के लिए आरोप पत्र के साथ अभियुक्त को पेश करने की कोई अपेक्षा नहीं है । उच्च न्यायालय ने यह देखने की सावधानी नहीं बरती कि जहां कई अभियुक्त हैं और उनमें से केवल कुछ को ही गिरफ्तार और न्यायिक अभिरक्षा में रिमांड किया जा सकता हो और दूसरे अन्य जमानत पर हों तो वहां उनमें से सब को कैसे पुलिस द्वारा एक साथ पेश किया जा सकता है । उच्च न्यायालय

को यह महसूस करना चाहिए कि विचाराधीन कैदियों के विचारण को मामले में फरार अभियुक्त की उपस्थिति के अभाव में विलंबित किए जाने की अनुज्ञा दी जा सकती है । विद्वान् महाधिवक्ता ने न्यायालय के समक्ष यह तर्क किया कि कई हजार आरोप पत्र न्यायालयों में फाइल किए जाने से उच्च न्यायालय के कई निदेशों के कारण रुके पड़े हैं । तथापि, राज्य के विद्वान् महाधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि आरोप पत्र फाइल किए जाने के पूर्व कागजों की प्रतियां तैयार करने के सभी प्रबंध किए गए हैं जिससे कि वह अभियुक्त व्यक्तियों को तामिल किया जा सके । उनके द्वारा यह भी स्वीकार किया गया है कि अभियुक्त व्यक्तियों को पकड़ने के सभी प्रयास किए गए हैं जिससे कि विचारण शीघ्रता से किया जा सके । जैसाकि न्यायालय के समक्ष विद्वान् महाधिवक्ता द्वारा एक रियायत है जो विधि से संगत है और यह कि राज्य को इसका पालन करना चाहिए जिससे कि इन आधारों पर विलंब न हो । न्यायालय यह उल्लेख करना भी उपयुक्त समझता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 में ऐसा कोई अधिदेश नहीं है जो पुलिस से आरोप पत्र फाइल करने से पूर्व सभी कागजों की प्रतियां तैयार करने की अपेक्षा करता हो । उदाहरणार्थ, मजिस्ट्रेट द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अभिलिखित संस्वीकृत कथनों को अन्वेषक अधिकारी के पास छोड़ने की ईप्सा नहीं की जा सकती । जहां तक पुलिस थानों में फोटोकापी की मशीन की अपेक्षा का संबंध है इसी प्रकार की मशीनों की व्यवस्था न्यायालयों में किए जाने का निदेश दिया जा सकता है । न्यायालय की राय में उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 209 के उपबंध के अनुसार सेशन न्यायालयों को मजिस्ट्रेट द्वारा मामलों की सुपुर्दगी की अपेक्षा के मामले में पालन रिपोर्ट फाइल करने की राज्य प्राधिकारियों से कहने में अपनी अधिकारिता से परे अपराध किया है । यहां यह उल्लेख करना सुसंगत है कि केंद्रीय सरकार रिट याचिका में पक्षकार भी नहीं थी जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता को संशोधित करने का निदेश जारी किया गया था । (पैरा 13, 25, 26, 27 और 28)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2015] (2015) 2 एस. सी. सी. 796 :
जनगणना आयुक्त और अन्य बनाम **आर. कृष्णमूर्ति** ; 20

[2014] (2014) 11 एस. सी. सी. 477 :
प्रवासी भलाई संगठन बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 16

[2011] (2011) 13 एस. सी. सी. 77 :
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम **महिन्द्रा और महिन्द्रा लिमिटेड** ; 14

[2008] (2008) 16 एस. सी. सी. 1 :
मनोज शर्मा बनाम **राज्य और एक अन्य** ; 18

[2007] (2007) 8 एस. सी. सी. 279 :
एस. सी. चन्द्र और अन्य बनाम **झारखंड राज्य और अन्य** ; 22

[2007] (2007) 6 एस. सी. सी. 586 :
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम **जीत एस. बिष्ट और एक अन्य** ; 23

[1997] (1997) 4 एस. सी. सी. 65 :
बृजकिशोर ठाकुर बनाम **भारत संघ** ; 21

[1990] (1990) 2 एस. सी. सी. 533 :
ए. एम. माथुर बनाम **प्रमोद कुमार गुप्ता** ; 24

[1977] 1977 (2) डब्ल्यू. एल. आर. 234, पृष्ठ 267 :
लेकर एयरवेज । 19

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2015 की दांडिक अपील सं. 789.

2013 की दांडिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 62 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 24 मई, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री विजय बहादुर सिंह, महाधिवक्ता, रवि प्रकाश मल्होत्रा, सैयद अली मुर्तजा, विभू तिवारी, आशुतोष कुमार शर्मा, उदय प्रताप सिंह और अशोक कुमार लाल

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अशोक कुमार श्रीवास्तव, राकेश कुमार शर्मा, और सूर्यकांत

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत ने दिया ।

न्या. पंत – इजाजत दी गई ।

2. इस अपील में विधि का यह सारवान् प्रश्न उठाया गया है कि किस सीमा तक उच्च न्यायालय आपराधिक विचारण में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया से संबंधित न्यायिक पक्ष की ओर से निदेश जारी करने में अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है ।

3. यह अपील 2013 की दांडिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 62 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 24 मई, 2013 के आदेश के विरुद्ध की गई है जिसे निरर्थक होने के पश्चात् भी जीवित रखा गया है ।

4. मामले का संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार है कि प्रत्यर्थी सं. 1, अनिल कुमार शर्मा (रिट याची) आगरा के ई. एस. आई. अस्पताल में लिपिक था । उसे आगरा के के. आर. वी. अस्पताल में 23 मई, 2012 को स्थानांतरित और तैनात किया गया । उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता (आई. पी. सी.) की धारा 409 के अधीन दंडनीय अपराध के बाबत आगरा जिले के हरि पर्वत पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (एफ. आई. आर.) दर्ज की गई जिसे 2012 के अपराध मामला सं. 1044 के रूप में दर्ज किया गया । उक्त प्रत्यर्थी ने निम्नलिखित अनुरोध के साथ 3 जनवरी, 2013 को उच्च न्यायालय के समक्ष 2013 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 62 फाइल की :–

> "आगरा जिले के हरि पर्वत थाने में भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अधीन 2012 के अपराध मामला सं. 1044 में तारीख 21 दिसंबर, 2012 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित करते हुए रिट, आदेश जारी करें या उत्प्रेषण प्रकृति का निदेश दें ।"

5. रिट याची द्वारा यह अभिवचन किया गया कि उसे जांच और रजिस्ट्रीकरण काउंटर का काम दिया गया था जिसका दवाइयों के खरीदने या भंडारी के रूप में काम करने से कुछ लेना-देना नहीं था । इस प्रकार उसके विरुद्ध दर्ज प्रश्नगत ऐसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित किए जाने योग्य है ।

6. तारीख 7 जनवरी, 2013 को उच्च न्यायालय ने रिट याची की गिरफ्तारी का अंतरिम रोक मंजूर किया और आश्चर्य की बात है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सी. आर. पी. सी.) की धारा 173(2) के अधीन रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय पुलिस द्वारा अभियुक्त की गैर गिरफ्तारी सहित विभिन्न कारकों के कारण विचारण में होने वाली विलंब से संबंधित कतिपय मताभिव्यक्तियां व्यक्त कीं ।

7. अगली तारीख अर्थात् 17 जनवरी, 2013 को उच्च न्यायालय ने उपरोक्त आदेश के संबंध में शपथपत्र के साथ अनुपालन रिपोर्ट और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के अधीन प्रतियों की आपूर्ति से संबंधित भी रिपोर्ट अपीलार्थी प्राधिकारियों को फाइल करने का निदेश दिया ।

8. इसके पश्चात् तारीख 5 फरवरी, 2013 को यद्यपि प्रश्नगत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अब भी अन्वेषणाधीन थी किंतु उच्च न्यायालय ने स्वप्रेरणा से आपराधिक विचारणों से संबंधित प्रक्रियागत मुद्दों को निर्दिष्ट किया जिनका उल्लेख कभी रिट याचिका में नहीं किया गया था और पुलिस प्राधिकारियों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के अधीन आपूर्ति किए जाने के लिए अपेक्षित प्रतियां तैयार करने हेतु पुलिस थानों पर फोटोकापी मशीनें लगाए जाने का निदेश दिया । इस पर तारीख 8 मार्च, 2013 को राज्य सरकार के गृह विभाग में तारीख 5 मार्च, 2013 को हुई बैठक का कार्यवृत्त रखते हुए तारीख 5 फरवरी, 2013 के आदेश के उत्तर के पालन में शपथपत्र फाइल किया ।

9. आगे तारीख 24 मई, 2013 को उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित किया जिसमें यह उल्लेख करने के पश्चात् भी कि अंतिम समापन रिपोर्ट प्रश्नगत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (यद्यपि रिट याचिका निरर्थक हो गई थी) की बाबत फाइल की गई है । उसने राज्य के आपराधिक विचारणों में तेजी लाने की प्रक्रिया की मानीटरिंग आरंभ किया ।

10. हमारे समक्ष अपीलार्थियों द्वारा यह अभिवेदन किया गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालयों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन रिपोर्ट तब तक स्वीकार न करने के जब तक अभियुक्त पेश नहीं किया जाता है, के सामान्य निदेश के कारण हजारों मामले रुके पड़े हैं जिसमें न्यायालयों में रिपोर्टें फाइल नहीं की जा सकीं । आगे यह अन्वेषण किया गया कि उच्च न्यायालय ने सेशन न्यायालयों के समक्ष सीधे सेशन मामले के संबंध में आरोप पत्र फाइल करने हेतु पुलिस को समर्थ बनाने के संबंध में और मजिस्ट्रेट द्वारा सुपुर्दगी की प्रक्रिया से मुक्त कराने सहित दंड प्रक्रिया संहिता में सुझाए गए संशोधनों पर फीडबैक उपलब्ध कराने पर बल दिया (दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 209 के अधीन अपेक्षित है यद्यपि केंद्रीय सरकार रिट याचिका में पक्षकार नहीं थी) । उच्च न्यायालय ने आगे 24 मई, 2013 के अपने आदेश द्वारा गृह, वित्त और राज्य सरकार के विधि विभाग के मुख्य सचिवों और राज्य के निदेशक (अभियोजन) को उसके द्वारा जारी निदेशों के अनुपालन से संबंधित अपने व्यक्तिगत शपथपत्र

फाइल करने का निदेश दिया । राज्य सरकार की ओर से यह आग्रह किया गया कि 19 जुलाई, 2013 को जब अपीलार्थियों द्वारा और समय की मांग की गई क्योंकि अपेक्षित मुद्दे पर केंद्रीय सरकार से व्यापक परामर्श की अपेक्षा थी तो उच्च न्यायालय ने केवल तारीख 23 जुलाई, 2012 तक अर्थात् रविवार सहित तीन दिन निदेश का अनुपालन करने का समय दिया ।

11. इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत याचिका फाइल किए जाने के पश्चात् उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के समक्ष मध्यवर्ती के रूप में पैराग्राफ 6 में यह कहते हुए, 2013 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 20573 फाइल की कि क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 (2012 के अपराध मामला सं. 1044 में अभियुक्त) हो सकता है अपना हित खो चुके हों क्योंकि अंतिम रिपोर्ट फाइल हो चुकी है फिर भी आपराधिक न्याय प्रदान में महत्व और विचारण में विलंब से संबंधित कुछ तथ्यों को अभिलेख पर लाया जाना अपेक्षित है । याचिका के पैरा तीन में उच्च न्यायालय ने विचारणों के विलंब के चार प्रक्रमों को वर्गीकृत किया अर्थात् – (i) अन्वेषण पूरा किए जाने और आरोप पत्र फाइल करने में विलंब ; (ii) आरोप पत्र फाइल किए जाने के पहले ही नहीं बल्कि इसके पश्चात् भी गिरफ्तारी के रोक से संबंधित मामले ; (iii) अभियुक्त को उपलब्ध कराए जाने वाले अभियोजन कागजों की प्रतियों की तैयारी में विलंब और अभियुक्त की उपस्थिति उपाप्त करने में विलंब ; और (iv) अभियोजन साक्षियों की उपस्थिति और उनकी प्रतिपरीक्षा उपाप्त करने में विलंब ।

12. हमने उत्तर प्रदेश राज्य के विद्वान् महाधिवक्ता और मध्यवर्ती के विद्वान् काउंसेल को विस्तार से सुना ।

13. हम उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त आपराधिक विचारणों में विलंब की चिंता की प्रसंशा करते हैं किंतु ऐसी रीति जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा इस मामले में कई निदेश जारी किए गए हैं विशेषकर ऐसा निदेश जो दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अनुरूप नहीं है, की प्रसंशा नहीं की जा सकती है ।

14. **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** बनाम **महिन्द्रा और महिन्द्रा लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने विधान-मंडल को निदेश जारी करने के मुद्दे पर उच्च न्यायालय की शक्ति और व्याप्ति के संबंध में पैरा 10 में निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

---

[1] (2011) 13 एस. सी. सी. 77.

"10. अपने संविधान के भीतर हमने विनिर्दिष्ट रूप से शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांतों को अधिकथित करते हुए समाज के तीनों अंगों की शक्ति और सीमाओं की परिधि को विनिर्दिष्ट रूप से रेखांकित किया है जिसका पालन देश के लोकतांत्रिक कार्यकरण करने के लिए किया जा रहा है । जहां तक विधान का संबंध है अनन्य क्षेत्र विधायिका के भीतर हैं । अधीनस्थ विधानों की विरचना कार्यपालिका द्वारा कानून द्वारा प्रदत्त प्रत्यायोजित शक्ति का प्रयोग करते हुए किया जाता है जो नियम बनाने की शक्ति है । न्यायपालिका में पूर्वोक्त विधानों का निवर्चन करने और उन्हें प्रभावी बनाने की शक्ति निहित है क्योंकि दोनों अंगों की अधिकारिता के पैरामीटर चिह्नित किए गए हैं अतः प्रत्येक अंगों को अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर कार्य करना हमेशा तर्कसंगत है । न्यायालयों को अधिनियम बनाने का अधिदेश जारी करने और किसी विशिष्ट रीति से अधीनस्थ विधान बनाने के लिए भी निदेश जारी करना अनुचित है । इस विशिष्ट मामले में उच्च न्यायालय ने विशिष्ट रीति से अधीनस्थ विधान को शब्दों को प्रतिस्थापित करने का निदेश दिया और तद्द्वारा स्वयं पर्यवेक्षणीय प्राधिकार की भूमिका को ग्रहण किया जो हमारे अनुसार उच्च न्यायालय में विहित शक्ति नहीं है ।"

15. इस न्यायालय ने बारंबार यह अभिनिर्धारित किया है कि कोई न्यायालय विशिष्ट विधि को अधिनियमित करने के लिए विधायिका को अधिदेश जारी नहीं कर सकता ।

16. **प्रवासी भलाई संगठन** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने उनकी सीमाओं की बाबत न्यायालयों को इस प्रकार अनुस्मारक जारी की :–

"..... इस न्यायालय ने निरंतर यह अभिनिर्धारित किया है कि हमारा संविधान स्पष्टतः शक्तियों के पृथक्करण का उपबंध करता है और न्यायालय मात्र उन विधियों को लागू करता है जो वह विधायिका से पाता है । परिणामतः एंग्लो सेक्शन विधिक परंपरा में यह बल दिया है कि न्यायाधीशों को पूर्वापेक्षित परिणामों, निष्पक्षता या लोक नीति के विचार पर ध्यान दिए बिना केवल विधि का प्रतिबिंबन करना चाहिए और न्यायाधीश साधारणतः विधि बनाने के लिए प्राधिकृत नहीं है ।

[1] (2014) 11 एस. सी. सी. 477.

'यदि कोई भी है तो न्यायाधीश निश्चित रूप से इसे प्रवृत्त कर सकते हैं किंतु न्यायाधीश विधि सृजित कर इसे प्रवृत्त करने की इच्छा नहीं कर सकते ।' न्यायालय इस उचित कारण से कि उसे विधान बनाने की कोई शक्ति नहीं है, विधान का पुनर्लेखन, पुनर्रचन या पुनर्विरचन नहीं कर सकते । विधान बनाने की शक्ति न्यायालयों को प्रदत्त नहीं की गई है तथापि, इस समय भारत में वरिष्ठ न्यायालयों की न्यायिक सक्रियता ने बारंबार सार्वजनिक जागरुकता पैदा की है ....।"

17. **प्रवासी भलाई संगठन** (पूर्वोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने पैरा 23 और 24 में आगे इस प्रकार यह मत व्यक्त किया :–

"23. आगे न्यायालय को ऐसा अनुतोष मंजूर नहीं करना चाहिए या आदेश/निदेश पारित नहीं करना चाहिए जो क्रियान्वयन योग्य नहीं है । इस न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य खंजी विकास निगम संघर्ष समिति [(2008) 12 एस. सी. सी. 675] (एस. सी. सी. पृष्ठ 690-91 पैरा 48) वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया –

'48. हमारे समक्ष ऐसे मामलों में विचारार्थ मुद्दों में से एक यह है कि क्या पारित आदेश या जारी निदेश क्रियान्वयन या प्रवर्तन के अध्यधीन है और यदि इसे क्रियान्वित नहीं किया जाता है तो क्या समुचित कार्यवाही जिसके अंतर्गत न्यायालय के आदेश की जानबूझकर की गई अवज्ञा की कार्यवाही है, विपक्षी पक्षकार के विरुद्ध आरंभ की जा सकती है । उच्च न्यायालय द्वारा जारी निदेश इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता और उस आधार पर ही आदेश दोषपूर्ण है ।'

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया)

24. न्यायिक पुनर्विलोकन न्यायिक अवरोध के सिद्धांतों के अधीन है और अन्य पहलुओं में अप्रबंधयोग्य नहीं होना चाहिए । [किंग एम्परर **बनाम** ख्वाजा नजीर अहमद (ए. आई. आर. 1945 पी. सी. 18) हरियाणा राज्य **बनाम** भजन लाल [(1992) सप्ली. (1) एस. सी. सी.] और अखिलेश यादव **बनाम** विश्वनाथ चतुर्वेदी (2013) 2 एस. सी. सी. 1]"

18. **मनोज शर्मा** बनाम **राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 की व्याप्ति पर चर्चा करते हुए इस न्यायालय ने इस प्रकार निर्धारित किया :–

> "न्यायिक अवरोध के सिद्धांत जिस पर इस न्यायालय द्वारा अरावली गोल्फ क्लब **बनाम** चंदर हास, (2008) 1 एस. सी. सी. 683 और आंध्र प्रदेश राज्य **बनाम** पी. लक्ष्मी देवी, (2008) 4 एस. सी. सी. 720 वाले मामलों में न्यायालय की शक्ति के अवरोध पर बार-बार बल दिया है और मामूली तौर पर विधायिका या कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र में दखल देने की न्यायालय अनुज्ञा नहीं देता । जैसाकि उपरोक्त विनिश्चयों में इस न्यायालय द्वारा मत व्यक्त किया गया है, संविधान में शक्तियों का व्यापक पृथक्करण है और राज्य के एक अंग द्वारा दूसरे अंग के अधिकार क्षेत्र में दखल करना उचित नहीं होगा ।"

19. **लेकर एयरवेज**[2] वाले मामले में लार्ड जस्टिस लाटन द्वारा नीति बनाने की बाबत विचारों को उद्धृत करते हुए तत्कालीन न्यायमूर्ति ए. एस. आनन्द ने इस सिद्धांत को दोहराया कि "न्यायाधीश की भूमिका एक मध्यस्थ की भूमिका है । मैं अपनी न्यायिक सीटी तब बजा सकता हूं जब गेंद मैदान से बाहर चली जाए ; लेकिन जब खेल पुनः शुरू होता है तो न तो मैं इसमें भाग ले सकता हूं न ही खिलाड़ियों को यह कह सकता हूं कि वह कैसे खेलें" । न्यायमूर्ति आनन्द ने आगे यह कहा :–

> "न्यायिक सीटी किसी प्रयोजन के लिए और सतर्कता से ही बजाए जाने की आवश्यकता है । यह स्मरण रखना आवश्यक है कि न्यायालय सरकार नहीं चला सकती । उसे संवैधानिक सुरक्षोपायों को क्रियान्वित करने का कर्तव्य है जो व्यक्तिगत अधिकारों का संरक्षण करता है किंतु वह चुनौतीधीन अतिक्रमण को समायोजित करने के लिए संविधान की सीमाओं को पीछे नहीं ढकेल सकते ।"

20. **जनगणना आयुक्त और अन्य** बनाम **आर. कृष्णमूर्ति**[3] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "25. ..... विधान बनाना न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के भीतर

---

[1] (2008) 16 एस. सी. सी. 1.

[2] 1977 (2) डब्ल्यू. एल. आर. 234, पृष्ठ 267.

[3] (2015) 2 एस. सी. सी. 796.

नहीं आता है । न्यायालय विधि का निर्वचन करते हैं और ऐसे निर्वचन में कतिपय सृजनात्मक प्रक्रिया अंतर्वलित है । न्यायालयों को विधि को असंवैधानिक घोषित करने की अधिकारिता है । वह भी वहां जहां इसकी आवश्यकता हो । न्यायालय संवैधानिक मौन या अभिस्वीकृति के सिद्धांत को लागू कर कतिपय क्षेत्र में अंतराल को भी भर सकता है । किंतु न्यायालयों को परमादेश की रिट जारी करने के माध्यम से नीति में कुछ जोड़कर नीति बनाने के कार्य में नहीं कूदना चाहिए । न्यायिक अवरोध को स्मरण रखने की आवश्यकता है जिसका उल्लेख हमने आरंभ में किया है .....।"

21. **बृजकिशोर ठाकुर** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

"2. न्यायिक अवरोध एक विशिष्टता है । ऐसी विशिष्टता जो प्रत्येक न्यायिक स्थिति के सहवर्ती होगी । यह ऐसे न्यायाधीश का गुण है जिसका वह अपीली या पुनरीक्षण या अन्य पर्यवेक्षणीय अधिकारिता के प्रयोग में उसके समक्ष मामलों पर विशेष रूप से विचार करते समय, समय-समय पर फिर से चमकाने के लिए आबद्ध है .....।"

22. **एस. सी. चन्द्र और अन्य** बनाम **झारखंड राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि :–

"34. संविधान के अधीन शक्तियों का व्यापक पृथक्करण है तथा न्यायपालिका को साधारणतः कार्यपालिका या विधायिका के अधिकार क्षेत्र में दखल नहीं करना चाहिए । फ्रेंच दार्शनिक माटेसक्यू द्वारा अपनी पुस्तक द स्प्रीट आफ ला में सर्वप्रथम प्रतिपादित शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत आज भी भारत में व्यापक रूप से लागू है । इस प्रकार, आशीफ हमीद **बनाम** जम्मू-कश्मीर राज्य, [(1989) सप्ली (2) एस. सी. सी. 364] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने (पैरा 17 से 19 द्वारा) : (एस. सी. सी. पृ. 373-374) इस प्रकार मत व्यक्त किया –

'17. इन अपीलों में अंतर्वलित प्रत्यक्ष संविवाद पर विचार करने

---

[1] (1997) 4 एस. सी. सी. 65.

[2] (2007) 8 एस. सी. सी. 279.

के पूर्व हमें हमारे संविधान के अधीन लोकतंत्र के तीनों अंगों के पारस्परिक कार्यकरण पर नए सिरे से विचार करना चाहिए । यद्यपि शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत अपनी अत्यन्त कठोरता के साथ संविधान में मान्य नहीं ठहराया गया है किंतु संविधान निर्माताओं ने राज्य के विभिन्न अंगों के कार्यकरण को अति सावधानी से परिभाषित किया है । विधायिका कार्यपालिका और न्यायपालिका को संविधान के अधीन अपने निजी रेखांकित क्षेत्रों के भीतर कार्य करना पड़ता है । कोई अंग दूसरे अंग के समनुदेशित कृत्यों को हड़प नहीं सकता । संविधान उसमें विहित प्रक्रिया का कड़ाई से पालन कर अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने और इन अंगों के निर्णय पर विश्वास करता है । लोकतंत्र का कार्यकरण इसके प्रत्येक अंगों की शक्ति और स्वाधीनता पर निर्भर करता है । लोगों की इच्छा के दो पहलू अर्थात् विधायिका और कार्यपालिका को वित्त सहित सभी शक्तियां हैं । न्यायपालिका को कार्यपालिका या वित्त पर कोई शक्ति नहीं है इसके बावजूद इसे यह सुनिश्चित करने की शक्ति है कि राज्य के पूर्वोक्त दो मुख्य अंग संवैधानिक सीमाओं के भीतर कार्य करें । यह लोकतंत्र का प्रहरी है । न्यायिक पुनर्विलोकन विधायिका और कार्यपालिका द्वारा सत्य के असंवैधानिक प्रयोग को अवरोध करने के लिए एक सशक्त हथियार है । न्यायिक पुनर्विलोकन के विस्तारी परिक्षेत्र ने सामाजिक और आर्थिक न्याय की अवधारणा को इसके दो परत में लिया है । यद्यपि विधायिका और कार्यपालिका द्वारा शक्तियों का प्रयोग न्यायिक अवरोध के अधीन है फिर भी शक्ति के अपने लिए प्रयोग पर केवल नियंत्रण न्यायिक अवरोध का स्व अधिरोपित अनुशासन है ।

18. ट्रॉप **बनाम** डल्स [2 ए. ई. डी. 2डी. 630 = 356 यू. एस. 86 (1958)] वाले मामले के संविवादित विस्तारी मामले में विसम्मत व्यक्त करते हुए यू. एस. उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति फ्रेंकफर्टर ने (यू. एस. पृ. 119-20) इस प्रकार मत व्यक्त किया है –

> 'मैडिसन मुहावरे में, सभी शक्ति 'दखलकारी प्रकृति' की है ..... न्यायिक शक्ति इस मानवीय कमजोरी से उन्मुक्त नहीं है । इसकी उचित सीमाओं से परे दखल करने के विरुद्ध इसकी भी चौकसी करनी चाहिए और इतना कम नहीं क्योंकि इस पर केवल अवरोध स्व-अवरोध का है .....।
>
> प्राधिकार के प्रश्न और प्रज्ञा के प्रश्नों के बीच सत्य की

सीमाओं और सत्य के बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयोग के अंतर के कठोर पालन के लिए इस निर्णय के सर्वाधिक सतर्क मूल्यांकन की अपेक्षा है किंतु ऐसी दो अवधारणाओं जिन्हें आसानी से सम्मिलित किया जा सकता हो के सूक्ष्म संबंध को ध्यान में रखना आवश्यक है । अंतर का पालन करने के लिए अनुशासित इच्छा की अधिक आवश्यकता होती है । अपनी निजी ठोस मत की अवज्ञा करने के लिए जो क्रियाकलापों के संचालन में बुद्धिसंगत है, अलग-अलग मत व्यक्त करना और बुद्धिमत्ता की कमी को अभिभावी होने के लिए अनुज्ञात करना आसान नहीं है । किंतु नीति उद्घोषित करना इस न्यायालय का कारबार नहीं है । अपनी निजी शक्ति पर सीमाओं के बारे में सुकुमारता अपनाना चाहिए और यह अपनी निजी धारणा की क्या बुद्धिसंगत है या नीतिगत है को प्रभावी बनाने के लिए न्यायालय को अपवर्जित करता है । यह कि आत्म नियंत्रण न्यायिक शपथ के पालन का सार है क्योंकि संविधान ने न्यायाधीशों को इस बुद्धिमत्ता का निर्णय करने के लिए प्राधिकृत नहीं किया है जो विधायिका और कार्यपालिका की शाखाएं करती हैं ।'

19. जब राज्य की किसी कार्रवाई की चुनौती दी जाती है तो न्यायालय का कार्य विधि के अनुसार कार्रवाई की परीक्षा करना और यह अवधारित करना है कि क्या विधायिका या कार्यपालिका ने संविधान के अधीन समनुदेशित शक्तियों और कृत्यों के भीतर कार्य किया है और यदि नहीं तो न्यायालय को कार्रवाई को अभिखंडित करना चाहिए । ऐसा करते समय न्यायालय को अपनी स्व-अधिरोपित सीमाओं के भीतर बने रहना चाहिए । न्यायालय सरकार के सहवर्ती शाखा की कार्रवाई पर निर्णय कर सकता है । प्रशासनिक कार्रवाई के न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करते समय न्यायालय अपील प्राधिकारी नहीं है । संविधान न्यायालय को नीति के मामलों में कार्यपालिका को निदेश देने या सलाह देने या ऐसे किसी मामले के संबंध में उपदेश देने जो संविधान के अधीन विधायिका या कार्यपालिका के परिक्षेत्र के भीतर आता है, अनुज्ञा नहीं देती बशर्ते कि ये प्राधिकारी अपनी संवैधानिक सीमाओं या कानूनी शक्तियों का उल्लंघन न करते हों ।'''

23. **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** बनाम **जीत एस. बिष्ट और एक**

अन्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "49. न्यायिक अवरोध राज्य की तीन स्वतंत्र शाखाओं के बीच शक्तियों के संतुलन से संगत और अनुपूरक है । यह दो माध्यमों से इसे पूरा करता है । पहला, न्यायिक अवरोध न केवल न्यायपालिका से अन्य दो शाखाओं की समता को मान्यता प्रदान करता है बल्कि यह न्यायपालिका द्वारा अंतर-शाखा हस्तक्षेप को कम कर उस समता का पोषण भी करता है । इस विश्लेषण में न्यायिक अवरोध को न्यायिक सम्मान भी कहा जा सकता है अर्थात् न्यायालय द्वारा अन्य सह-समान शाखाओं का सम्मान । इसके प्रतिकूल न्यायिक सक्रियता का असंभाव्य परिणाम न्यायपालिका को चलायमान लक्ष्य बनाता है और इस प्रकार सह-शाखाओं के बीच समता बनाए रखने की योग्यता को कम करता है । अवरोध न्यायपालिका को स्थिर बनाता है ताकि यह अंतर-शाखा समता की प्रणाली में बेहतर कार्य कर सके ।"

24. **ए. एम. माथुर** बनाम **प्रमोद कुमार गुप्ता**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि न्यायिक अवरोध और अनुशासन न्याय के सुव्यवस्थित प्रशासन के लिए आवश्यक हैं । अवरोध का कर्तव्य और विनम्रता न्यायाधीश के लिए एक अपरिहार्य गुण है क्योंकि विनिश्चय करने में उक्त गुण न्यायाधीश के लिए उतना ही आवश्यक है जितना न्यायपालिका की स्वतंत्रता के संरक्षण के बाबत सम्मान करने के लिए । **ए. एम. माथुर** बनाम **प्रमोद कुमार गुप्ता और अन्य**[2] वाले मामले का पैरा 13 इस प्रकार है :–

> "13. न्यायिक अनुरोध और अनुशासन न्याय के सुव्यवस्थित प्रशासन के लिए उतना आवश्यक है जितना वे सेना के लिए प्रभावपूर्ण है । अवरोध का कर्तव्य, और विनम्रता का कार्य हमारे न्यायाधीशों की सतत सोच होनी चाहिए । विनिश्चय करने में यह गुण न्यायाधीशों के लिए सम्मान पाने हेतु उतना आवश्यक है जितना न्यायपालिका की स्वतंत्रता का संरक्षण करने के लिए । इस बाबत न्यायिक अवरोध को न्यायिक सम्मान अर्थात् न्यायपालिका द्वारा सम्मान बेहतर रूप से कहा जा सकता है । वे लोग जो न्यायालय और राज्य के अन्य समवर्ती शाखाओं, कार्यपालिका और विधायिका

---

[1] (2007) 6 एस. सी. सी. 586.

[2] (1990) 2 एस. सी. सी. 533.

के समक्ष आते हैं, का सम्मान करना चाहिए । आपस में पारस्परिक सम्मान होना चाहिए । जब ये गुण असफल हो जाते हैं या जब वादकारी या आम जनता विश्वास करती है कि न्यायाधीश में ये गुण नहीं रह गए हैं तो यह न तो न्यायाधीश के लिए और न ही न्यायिक प्रक्रिया के लिए बेहतर होगा ।"

25. कोई कितना भी सशक्तवान क्यों न हो, विधि से ऊपर नहीं है । कोई संस्था न्यायपालिका सहित जवाबदेही से मुक्त नहीं है । न्यायपालिका की अपने न्यायिक कृत्यों और आदेशों के बाबत जवाबदेही अपील आदेशों के प्रत्यावर्तन या पुनर्विलोकन के उपबंधों द्वारा कृपापूर्वक प्रदान की जाती है ।

26. उपरोक्त विमर्शित इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने उस रिट याचिका को लोक हित वाद मानने की विधि की गलती की है, जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित करने के लिए फाइल की गई थी, और निरर्थक हो गई और निदेश पारित करने के लिए उसके समक्ष पर्याप्त आंकड़े और सामग्री के बिना अनेक निदेश जारी किए । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन अन्वेषक अधिकारी के लिए आरोप पत्र के साथ अभियुक्त को पेश करने की कोई अपेक्षा नहीं है । उच्च न्यायालय ने यह देखने की सावधानी नहीं बरती कि जहां कई अभियुक्त हैं और उनमें से केवल कुछ को ही गिरफ्तार और न्यायिक अभिरक्षा में रिमांड किया जा सकता हो और दूसरे अन्य जमानत पर हों तो वहां उनमें से सब को कैसे पुलिस द्वारा एक साथ पेश किया जा सकता है । उच्च न्यायालय को यह महसूस करना चाहिए कि विचाराधीन कैदियों के विचारण को मामले में फरार अभियुक्त की उपस्थिति के अभाव में विलंबित किए जाने की अनुज्ञा दी जा सकती है । विद्वान् महाधिवक्ता ने हमारे समक्ष यह तर्क किया कि कई हजार आरोप पत्र न्यायालयों में फाइल किए जाने से उच्च न्यायालय के कई निदेशों के कारण रुके पड़े हैं । तथापि, राज्य के विद्वान् महाधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि आरोप पत्र फाइल किए जाने के पूर्व कागजों की प्रतियां तैयार करने के लिए सभी प्रबंध किए गए हैं जिससे कि वह अभियुक्त व्यक्तियों को तामील किया जा सके । उनके द्वारा यह भी स्वीकार किया गया है कि अभियुक्त व्यक्तियों को पकड़ने के सभी प्रयास किए गए हैं जिससे कि विचारण शीघ्रता से किया जा सके । जैसाकि हमारे समक्ष विद्वान् महाधिवक्ता द्वारा एक रियायत है जो विधि से संगत है और यह कि राज्य

को इसका पालन करना चाहिए जिससे कि इन आधारों पर विलंब न हो ।

27. हम यह उल्लेख करना भी उपयुक्त समझते हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 में ऐसा कोई अधिदेश नहीं है जो पुलिस से आरोप पत्र फाइल करने से पूर्व सभी कागजों की प्रतियां तैयार करने की अपेक्षा करता हो । उदाहरणार्थ, मजिस्ट्रेट द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अभिलिखित संस्वीकृत कथनों को अन्वेषक अधिकारी के पास छोड़ने की ईप्सा नहीं की जा सकती । जहां तक पुलिस थानों में फोटोकापी की मशीन की अपेक्षा का संबंध है इसी प्रकार की मशीनों की व्यवस्था न्यायालयों में किए जाने का निदेश दिया जा सकता है ।

28. हमारी राय में उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 209 के उपबंध के अनुसार सेशन न्यायालयों को मजिस्ट्रेट द्वारा मामलों की सुपुर्दगी की अपेक्षा के मामले में पालन रिपोर्ट फाइल करने की राज्य प्राधिकारियों से कहने में अपनी अधिकारिता से परे अपराध किया है । यहां यह उल्लेख करना सुसंगत है कि केंद्रीय सरकार रिट याचिका में पक्षकार भी नहीं थी जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता को संशोधित करने का निदेश जारी किया गया था ।

29. उपरोक्त विमर्शित कारणों से हमारी यह सुविचारित राय है कि 2013 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 62 में पारित 24 मई, 2013 के आक्षेपित आदेश जिसके द्वारा उच्च न्यायालय द्वारा व्यापक निदेश दिए गए हैं, अपास्त किए जाने योग्य हैं । तदनुसार अपील मंजूर की जाती है और आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है । तथापि, विद्वान् महाधिवक्ता द्वारा दिए गए रियायत के आधार पर राज्य को उपरोक्त पैरा 26 के निदेश का कर्तव्यनिष्ठा से पालन किया जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

पा.

मद्रास बार एसोसिएशन

बनाम

भारत संघ

14 मई, 2015

मुख्य न्यायमूर्ति एच. एल. दत्तू, न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी, न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा, न्यायमूर्ति रोहिंगटन फाली नरीमन और न्यायमूर्ति अमिताव राय

कंपनी अधिनियम, 2013 (2013 का 48) – धारा 408 और 410 – राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण और राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण की संवैधानिक विधिमान्यता – उच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को नहीं छीना गया है और राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण के आदेश के विरुद्ध विधि के प्रश्न पर अपील की जा सकती है क्योंकि किसी अपीली मंच के समक्ष अपील करने का एक अधिकार सुस्वीकृत मान है जिसे स्वस्थ्य परंपरा समझा जाता है – राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण और राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण का गठन संवैधानिकतः विधिमान्य है ।

कंपनी अधिनियम, 2013 – धारा 409 और 411 – अर्हताएं – राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण के अध्यक्ष और सदस्यों तथा राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण के सभापति और सदस्यों की अर्हताएं – अधिकरण के न्यायिक सदस्य की नियुक्ति केवल न्यायाधीशों और अधिवक्ताओं में से ही की जानी चाहिए और तकनीकी सदस्यों की नियुक्ति विज्ञान, तकनीक, अर्थशास्त्र, बैंकिंग, उद्योग और औद्योगिक वित्त, औद्योगिक प्रबंध, औद्योगिक पुनर्रचना विनिधान और लेखा कर्म में 20 वर्ष का अनुभव रखने वाले ऐसे व्यक्तियों में से, जो सचिव और अपर सचिव हैं, जो भारतीय विधिक सेवा या भारतीय कंपनी विधि सेवा के सदस्य हैं, किया जाना चाहिए ।

कंपनी अधिनियम, 2013 – धारा 412 – चयन समिति का गठन – राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण और राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण के सदस्यों के चयन के लिए गठन समिति – चयन समिति का गठन भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उसके नामनिर्देशिती, उच्चतम न्यायालय का वरिष्ठ न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, वित्त और कंपनी कार्य मंत्रालय का सचिव और विधि और न्याय मंत्रालय के सचिव से मिलकर

गठित चार सदस्यों वाली समिति होनी चाहिए ।

इस बाबत याची द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल की गई थी जिसकी पराकाष्ठा तारीख 30 मार्च, 2004 के निर्णय से हुई । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि एन. सी. एल. टी. का सृजन और यहां उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की गई शक्तियों का निहित किया जाना और उक्त अधिकरण में कंपनी ला बोर्ड (संक्षेप में "सी. एल. बी.") का सृजन असंवैधानिक नहीं है । तथापि, वहीं उच्च न्यायालय ने 1956 के भाग 1ख और भाग 1ग के कतिपय उपबंधों विशेषकर धारा 10चघ(3)(च)(छ)(ज), 10चङ; 10चच, 10चठ(2), 10चद(3), 10चन धाराओं में कतिपय खामियां इंगित कीं । यह घोषित करते हुए कि यथाविद्यमान ये उपबंध शक्तियों के पृथक्करण की आधारभूत संवैधानिक स्कीम पर प्रहार करते हैं, यह अभिनिर्धारित किया कि जब तक ऐसी खामियां जिन्हें विनिर्दिष्ट रूप से स्पष्ट किया गया है, दूर कर समुचित संशोधन नहीं किया जाता, ऐसी अधिकारिता जिसका प्रयोग उच्च न्यायालय या सी. एल. बी. द्वारा किया जा रहा है, का प्रयोग करने के लिए एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. का गठन किया जाना असंवैधानिक होगा । याची ने निर्णय के उस भाग द्वारा व्यथित महसूस किया जिसके द्वारा एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. के गठन को संवैधानिक अभिनिर्धारित किया गया था । दूसरी ओर, भारत सरकार ने निर्णय के अन्य भाग द्वारा असंतुष्ट महसूस किया जिसके द्वारा अधिनियम, 1956 के भाग 1ख और भाग 1ग के पूर्वोक्त उपबंधों को विभिन्न विधिक और संवैधानिक कमियों से ग्रसित पाया गया था । इस प्रकार भारत संघ और याची दोनों ने मद्रास उच्च न्यायालय के उस निर्णय के विरुद्ध अपीलें फाइल कीं । इन अपीलों का विनिश्चय यथा पूर्वोक्त संविधान न्यायपीठ द्वारा किया गया । उच्चतम न्यायालय द्वारा रिट याचिका भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – सर्वप्रथम एन. सी. एल. ए. टी. के गठन का सृजन विनिर्दिष्ट रूप से 2010 के निर्णय में अभिनिर्धारित किया गया है । यह इनकार नहीं किया जा सकता है कि इस याची ने अपनी पूर्व रिट याचिका में एन. सी. एल. ए. टी. की संवैधानिक विधिमान्यता को विनिर्दिष्ट रूप से प्रश्नगत किया था और इस विवाद्यक पर तर्क भी दिए थे । इस तथ्य का उल्लेख विनिर्दिष्ट रूप से उक्त निर्णय में किया गया है । अपील अधिकरण के गठन विषयक उपबंध अर्थात् कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 10चद पर सम्यक् ध्यान दिया गया था । इस आधार पर एन. सी. एल. टी. और

एन. सी. एल. ए. टी. की स्थापना को चुनौती दी गई थी कि संसद् में सामान्य न्यायालयों से शक्तियों को छीनकर अधिकरणीकरण का अवलंब लिया था जो अनिवार्यतः न्यायिक कृत्य था और विधान-मंडल की यह चेष्टा उस विनिश्चय करने वाले की निष्पक्षता, ऋजुता और युक्तियुक्तता का अतिक्रमण है जो न्यायपालिका विशेषकर न्यायिक कृत्य का प्रमाण-चिह्न है । आगे यह तर्क दिया गया कि यह विधि के नियम को अस्वीकार करने और शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को कुचलने के समान है जो भारत के संविधान का आधारभूत लक्षण है । न्यायालय इस बात पर बल दे रहा है कि याचिकाओं में इन सामान्य आधारों पर एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. दोनों की संवैधानिक विधिमान्यता पर आक्रमण किया गया है । न्यायालय ने विनिर्दिष्ट रूप से उठाए गए इन सभी तर्कों की परिधि पर विचार किया और बलपूर्वक इसका खंडन किया । इसके पश्चात् संविधान न्यायपीठ ने "क्या कंपनी अधिनियम के भाग 1ख और 1ग के अधीन एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. का गठन विधिमान्य है" शीर्षक के अधीन एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. की संवैधानिक विधिमान्यता पर सुस्पष्टतः विचार किया और इस विषय की विस्तृत चर्चा को आधार बनाया । उपरोक्त से यह प्रकट होता है कि एन. सी. एल. ए. टी. की विधिमान्यता का प्रश्न प्रत्यक्षतः और स्पष्टतः विवाद्यक बिंदु है । इन दो मंच की विधिमान्यता के लिए अधिकथित चुनौती के विभिन्न पहलुओं पर सांगोपांग विचार-विमर्श किया गया है । निःसंदेह पैरा 107 से 119 की अधिकांश चर्चा एन. सी. एल. टी. के बारे में है । तथापि, इन पैराग्राफों में अंतर्विष्ट उक्त चर्चा का परिशीलन करने से सुस्पष्टतः यह प्रकट होता है कि इसमें एन. सी. एल. ए. टी. भी शामिल है । निर्णय के पैराग्राफ 121 में जिसे पहले ही ऊपर उद्धृत किया गया है, न्यायालय ने उच्च न्यायालय के विनिश्चय की विनिर्दिष्टतः पुष्टि की है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया कि एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. का सृजन असंवैधानिक नहीं था । इसको ध्यान में रखते हुए याची इस मुद्दे पर बहस करने के लिए भी स्वतंत्र नहीं है क्योंकि इस पर स्पष्टतः पूर्व-न्याय लागू होता है । दूसरा, राष्ट्रीय कर अधिकरण के मामले में संविधान न्यायपीठ के निर्णय के पढ़ने से यह प्रकट होता है कि न केवल 2010 के निर्णय पर ध्यान दिया गया बल्कि इसका अनुसरण भी किया गया । न्यायालय ने एक ओर एन. सी. एल. टी./एन. सी. एल. ए. टी. के बीच विभेदकारी लक्षणों का उल्लेख किया और दूसरी ओर एन. टी. टी. वाले मामले में भिन्न निष्कर्ष निकाला ।

तीसरा, एन. टी. टी. ऐसा मामला था जहां विधि के विशुद्ध सारवान् प्रश्न का विनिश्चय करने में उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को एन. टी. टी. में निहित कर छीने जाने की ईप्सा की गई थी जिसे अननुज्ञेय ठहराया गया था । वर्तमान मामले में ऐसी कोई स्थिति नहीं है । प्रतिकूलतः एन. सी. एल. टी. अधिनियम, 2013 में गठित अर्ध न्यायिक मंच के अधिकरण का प्रथम मंच है । इस प्रकार एन. सी. एल. टी. उसके समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले मामले में न केवल विधि के प्रश्न पर विचार करेगा बल्कि तथ्यात्मक विवाद/पहलू को भी सुलझाने का विचार करेगा । इस परिदृश्य में एन. सी. एल. ए. टी. जो एन. सी. एल. टी. द्वारा पारित आदेशों की विधिमान्यता की परीक्षा करने के लिए 2013 अधिनियम के अधीन उपबंधित प्रथम अपील मंच है, को तथ्यात्मक तथा विधिक मुद्दों पर पुनर्विचार करना होगा । अतः स्थिति एन. टी. टी. जैसी नहीं है । अपील अधिकरण की अधिकारिता स्वयं धारा 410 में वर्णित है जिसमें यह उपबंध है कि एन. सी. एल. ए. टी. का गठन अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई करने के लिए किया जाएगा । यह अधिकारिता किसी भी प्रकार के किसी प्रकृति की किसी परिसीमाओं द्वारा सीमित नहीं है और उसकी विवक्षा यह है कि अपील तथ्य के प्रश्नों और विधि के प्रश्नों दोनों पर की जाएगी । इसी प्रकार धारा 421 की उपधारा (4) के अधीन जो उपबंध अधिकरण के आदेशों से अपील के बारे में है, में यह उपबंध है कि एन. सी. एल. ए. टी. सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् उस पर ऐसे आदेश जिसके विरुद्ध अपील की गई है, को परिवर्तित करते हुए, विरचित करते हुए या अपास्त करते हुए आदेश पारित कर सकेगा जो वह ठीक समझे । इसके पश्चात् एन. सी. एल. टी. के आदेश से 2013 अधिनियम की धारा 423 के अधीन उच्चतम न्यायालय ने आगे अपील किए जाने का उपबंध है । यहां उच्चतम न्यायालय को अपील की व्याप्ति केवल "ऐसे आदेश से उद्भूत विधि के प्रश्न को" तक केवल सीमित है । चौथा, यह एक अपील मंच उपबंध करना अज्ञात किंतु आम लक्षण/आचरण है जहां कहीं कोई अधिनियमिति न्यायिक उपचार उपलब्ध कराने की संपूर्ण संहिता है । अपील मंच के समक्ष अपील का एक अधिकार उपलब्ध कराना सुस्वीकृत मानक है जिसे स्वस्थ्य परंपरा स्वीकार किया गया है । (पैरा 11, 13, 15, 16 और 17)

पैरा 120 का परिशीलन करने से, विशेषकर इसका उप-पैरा (ii) पढ़ने से यह प्रकट होता है कि केवल ऐसे अधिकारी जो सचिव या अपर सचिव

की पंक्ति धारित करते हैं, एन. सी. एल. टी. के तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए विचार किए जाएंगे । धारा 10चघ की उपधारा (2) के खंड (ग) और (घ) तथा उपधारा (3) के खंड (क) और (ख) के उपबंध जो कतिपय अनुभव वाले संयुक्त सचिवों को पात्र बनाते हैं, को विनिर्दिष्टतः अविधिमान्य घोषित किया गया था । इसके होते हुए भी, 2013 अधिनियम की धारा 409(3) पुनः भारत सरकार के संयुक्त सचिव या समतुल्य अधिकारी को नियुक्ति का पात्र बनाती है यदि वह भारतीय कारपोरेट विधि सेवा या भारतीय विधिक सेवा के सदस्य के रूप में पंद्रह वर्ष का अनुभव रखता है जिसमें से कम से कम तीन वर्ष का अनुभव संयुक्त सचिव के वेतनमान में होना चाहिए । यह स्पष्टतः 2010 के निर्णय में सुनाए गए विनिश्चय का सार है । प्रति-शपथपत्र में प्रत्यर्थियों ने यह कहते हुए इस उपबंध को न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया कि यह परिवर्तन भारतीय कारपोरेट विधि सेवा में अपर सचिव स्तर के अधिकारियों की उपलब्धता की कमी के कारण किया गया था । आगे यह उल्लेख किया गया है कि कार्यतः अपर सचिव और संयुक्त सचिव का स्तर समान है । इन अधिकारियों के पास कंपनियों के प्रचालनों और कार्यकरण से संबंधित विशिष्ट मुद्दों की जानकारी है और कंपनी ला में उनकी विशेषज्ञता है जो एन. सी. एल. टी. के फायदे के लिए प्रत्याशित है । 2010 के निर्णय के स्पष्ट अधिदेश को ध्यान में रखते हुए ऐसा स्पष्टीकरण वैधतः मान्य नहीं है । न्यायालय यह इंगित करना चाहता है कि सचिव और अपर सचिव के ऐसे पदों के लिए विचारार्थ सीमित करने के लिए अन्य कारणों के अलावा न्यायालय के पास एक बहुत बाध्यकारी कारक है अर्थात् न्यायपालिका की स्वाधीनता का धीरे-धीरे ह्रास जिसे चिंता का विषय माना गया है । इस पहलू को ऐसे मामलों जिसका विनिश्चय उच्च न्यायालय द्वारा पहले किया जाता था, के विनिश्चय के लिए व्यक्तियों के लिए विहित स्तर और अर्हताओं का धीरे-धीरे अपघटन कर कतिपय अधिनियमितियों में विनिर्दिष्ट उदाहरण प्रदर्शित किए गए । इस प्रकार न्यायालय उस चर्चा को दोहराना उचित समझता है कि जो प्रत्यर्थियों द्वारा उठाए गए पूर्वोक्त का संपूर्ण उत्तर उपलब्ध कराता है । 2010 निर्णय के पूर्वोक्त स्पष्ट और सुनिश्चित आदेश को ध्यान में रखते हुए उससे छेड़छाड़ करना ऐसे मानक से समझौता करने की संभावना प्रकट होगा जो 2010 निर्णय से प्राप्त करने के बजाय इतने उत्साहपूर्वक अर्जित करने की ईप्सा की गई थी । इस प्रकार न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि धारा 409(3)(क) और (ग) अविधिमान्य है क्योंकि ये उपबंध उन्हीं दोष से ग्रस्त हैं । इसी प्रकार

धारा 411(3) की भाषा जो तकनीकी सदस्यों के अर्हताओं का उपबंध करते हैं, को भी अविधिमान्य ठहराया जाता है । एन. सी. एल. टी. के तकनीकी सदस्यों की नियुक्ति के लिए 2010 निर्णय के पैरा 120 के उप-पैरा (ii), (iii), (iv), (v) के निदेशों का ईमानदारी से पालन किया जाएगा और उसमें अंतर्विष्ट खामियों को ठीक करने के लिए धारा 409(3) में ये सुधार किए जाने अपेक्षित हैं । न्यायालय तदनुसार मुद्दा सं. 2 का निपटान करते हुए आदेश देता है । (पैरा 22, 23 और 24)

2013 अधिनियम की धारा 412(2) में अंतर्विष्ट चयन समिति की संरचना को प्रत्यर्थियों द्वारा यह तर्क देते हुए न्यायोचित ठहराने की ईप्सा की गई है कि 2010 निर्णय में सिफारिश की गई संरचना व्यापक निबंधनों में थी । यह तर्क दिया गया है कि बी. आई. एफ. आर. और ए. ए. आई. एफ. आर. के संनिवेशन को ध्यान में रखते हुए जो वित्तीय सेवा विभाग की प्रशासनिक अधिकारिता में है, डी. एफ. एस. सचिव को शामिल किया गया है । अध्यक्ष को कोई निर्णायक मत नहीं दिया गया है जैसाकि कालांतर से ऐसी समितियों के चयन प्रक्रियाओं को ऐसी रीति से स्पष्ट किया गया है कि सिफारिशें एक मत से हों और कारपोरेट कार्य मंत्रालय ने ऐसी समितियों में मतदान का ऐसा कोई दृष्टांत नहीं है । फिर भी अन्य समरूप कानूनी निकायों/अधिकरणों में भी चयन समिति के अध्यक्ष के पास "निर्णायक मत" का उपबंध नहीं है । इसके अतिरिक्त समिति अधिनियम के उपबंध के अनुसार अपनी रूपात्मकताएं स्वयं विनिश्चित करेंगी । इस उपबंध को न्यायोचित ठहराने के लिए भी निम्नलिखित तर्क दिए हैं – (i) चयन समितियों के विचार-विमर्श में संतुलित और स्वस्थ्य प्रक्रियाएं विकसित की जाएं । अब तक ऐसी समितियों में किसी महत्वपूर्ण असहमति का कोई मामला ज्ञात नहीं हुआ है । (ii) चयन समिति में सुसंगत अनुभव और ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों को रखने का आशय है । न्यायालय की यह राय है कि यह पुनः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कोई विधिमान्य या विधिक औचित्य गठित नहीं करता कि इस मुद्दे को 2010 निर्णय द्वारा अंतिम रूप दिया गया है जो अब एक बाध्यकारी पूर्व निर्णय और इस प्रकार प्रत्यर्थी को भी सामान्यतः आबद्ध करता है । न्यायपीठ की मस्तिष्क में मुख्य विचार यह था कि यह अध्यक्ष अर्थात् भारत का मुख्य न्यायमर्ति या उसका नामनिर्देशिती है जिसे निर्णायक मत रखने के अधिकार के साथ चयन के मामले में अंतिम प्राधिकार दिया जाना चाहिए । यह निर्णय का तर्काधार है और ऐसी संरचना उपलब्ध कराने के लिए कारणों की ईप्सा नहीं की गई है । आबद्धकारी पूर्व निर्णय के रूप में इस मुद्दे पर उपलब्ध सभी अतिव्याप्ति

आदेश को देखते हुए आक्षेपित उपबंध के माध्यम से प्राप्त किए जाने के लिए ईप्सित किसी शिथिलता की कोई गुंजाइश नहीं है और न्यायालय इसे 2010 निर्णय के आज्ञापक आदेश से असंगत पाता है अतः न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि 2013 अधिनियम की धारा 412(2) के उपबंध विधिमान्य नहीं हैं और 2010 निर्णय के पैरा 120 के उप-पैरा (viii) के अनुसार इस उपबंध को लाकर खामी को दूर करने का निदेश दिया जाता है । अब न्यायालय याचिका में उठाए गए कुछ अन्य मुद्दों पर विचार करता है । श्री दातार द्वारा अस्पष्ट रूप से यह तर्क किया गया था कि अधिनियम की धारा 425 के अधीन एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. को दिए गए अवमान के लिए दंड करने की शक्ति ठीक नहीं है और इसे हटा दिया जाना चाहिए । यह भी तर्क दिया गया कि न्यायपीठ गठित करने हेतु केंद्रीय सरकार को दी गई शक्ति पुनः अननुज्ञेय है क्योंकि ऐसी शक्ति एन. सी. एल. टी. के अध्यक्ष या एन. एल. एल. ए. टी. के सभापति के पास होनी चाहिए । तथापि, न्यायालय इन तर्कों में कोई विधिक बल नहीं पाता । न्यायालय को इस बात पर ध्यान में रखना चाहिए कि ये उपबंध संसद् द्वारा अधिनियमित कानून में अंतर्विष्ट हैं और याची यह इंगित नहीं कर सकता कि कैसे ऐसे उपबंध असंवैधानिक हैं । (पैरा 27, 28 और 29)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2014]	(2014) 10 एस. सी. सी. 1 : **मद्रास बार एशोसिएशन** बनाम **भारत संघ** ;	10
[2010]	[2011] 1 उम. नि. प. 244 = (2010) 11 एस. सी. सी. 1 : **भारत सरकार** बनाम **आर. गांधी, अध्यक्ष, मद्रास बार एसोसिएशन** ।	1

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2013 की रिट याचिका (सिविल) सं. 1073.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री अरविन्द पी. दतार, वरिष्ठ अधिवक्ता, निखिल नय्यर, धनन्जय बैजाल और एन. साईं विनोद, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री पी. एस. पत्वालिया और (सुश्री) पिंकी आनन्द, अपर महासालिसिटर के. राधाकृष्णन, वरिष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) बीनू टमटा, ध्रुव टमटा, (सुश्री) माधवी दीवान, (सुश्री) रेखा पांडेय, ए. के. श्रीवास्तव, (सुश्री) सुषमा सूरी, बी. वी. बलराम दास, (सुश्री) कार्तिक सचदेवा, करण सेठी, प्रबल बग्गी, ध्रुव शेरोन, अर्चित उपाध्याय, (सुश्री) नताशा विनायक, (सुश्री) नैना पचनंदा और रजत सिंह, अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी ने दिया ।

न्या. सीकरी – याची अर्थात् मद्रास बार एसोसिएशन द्वारा फाइल रिट याचिका ऐसी पूर्व कार्यवाहियों का परिणाम है जिसकी पराकाष्ठा **भारत सरकार** बनाम **आर. गांधी, अध्यक्ष, मद्रास बार एसोसिएशन**[1] (जिसे इसमें इसके पश्चात् "2010 का निर्णय" कहा गया है) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय में हुई । मुकदमे के पूर्व चक्र में याची ने उससे संबंधित कतिपय अन्य उपबंधों के साथ-साथ जो विधान-मंडल द्वारा कंपनी अधिनियम, 1956 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "1956 का अधिनियम" कहा गया है) के भाग 1ख और भाग 1ग में कंपनी (दूसरा संशोधन) अधिनियम, 2002 द्वारा सम्मिलित किया गया था के साथ राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण (संक्षेप में "एन. सी. एल. टी.") और राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण (संक्षेप में "एन. सी. एल. ए. टी.") के सृजन की संवैधानिक विद्यमान्यता को चुनौती दी थी ।

2. इस बाबत याची द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल की गई थी जिसकी पराकाष्ठा तारीख 30 मार्च, 2004 के निर्णय से हुई । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि एन. सी. एल. टी. का सृजन और यहां उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की गई शक्तियों का निहित किया जाना और उक्त अधिकरण में कंपनी ला बोर्ड (संक्षेप में "सी. एल.

---

[1] [2011] 1 उम. नि. प. 244 = (2010) 11 एस. सी. सी. 1.

बी.") का सृजन असंवैधानिक नहीं है । तथापि, वहीं उच्च न्यायालय ने 1956 के भाग 1ख और भाग 1ग के कतिपय उपबंधों विशेषकर धाराओं 10चघ(3)(च)(छ)(ज), 10चङ; 10चच, 10चठ(2), 10चद(3), 10चन में कतिपय खामियां इंगित कीं । यह घोषित करते हुए कि यथा विद्यमान ये उपबंध शक्तियों के पृथक्करण की आधार भूत संवैधानिक स्कीम पर प्रहार करते हैं, यह अभिनिर्धारित किया कि जब तक ऐसी खामियां जिन्हें विनिर्दिष्ट रूप से स्पष्ट किया गया है, दूर कर समुचित संशोधन नहीं किया जाता, ऐसी अधिकारिता जिसका प्रयोग उच्च न्यायालय या सी. एल. बी. द्वारा किया जा रहा है, का प्रयोग करने के लिए एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. का गठन किया जाना असंवैधानिक होगा । याची ने निर्णय के उस भाग द्वारा व्यथित महसूस किया जिसके द्वारा एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. के गठन को संवैधानिक अभिनिर्धारित किया गया था । दूसरी ओर भारत संघ निर्णय के अन्य भाग द्वारा असंतुष्ट महसूस किया जिसके द्वारा अधिनियम, 1956 के भाग 1ख और भाग 1ग के पूर्वोक्त उपबंधों को विभिन्न विधिक और संवैधानिक कमियों से ग्रस्त पाया गया था । इस प्रकार भारत संघ और याची दोनों ने मद्रास उच्च न्यायालय के उस निर्णय के विरुद्ध अपीलें फाइल कीं । इन अपीलों का विनिश्चय यथा पूर्वोक्त संविधान न्यायपीठ द्वारा किया गया ।

3. संविधान न्यायपीठ ने उक्त निर्णय द्वारा अपने अनुमोदन की मुहर लगा दी जहां तक एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. की संवैधानिक विधिमान्यता का संबंध है । उसने अधिनियम, 1956 के भाग 1ख और भाग 1ग के पूर्वोक्त उपबंधों का परिशीलन किया और सारतः इन उपबंधों में मद्रास उच्च न्यायालय के विभिन्न खामियों के निष्कर्ष पर सहमत हुआ । इन खामियों को निर्णय के पैरा 120 में न्यायालय द्वारा सूचीबद्ध किया गया है जो इस प्रकार :–

> "120. हम अधिनियम के भाग 1ख और भाग 1ग की खामियों को ठीक करने के लिए अपेक्षित सुधारों को सूचीबद्ध करते हैं –
>
> (i) केवल न्यायाधीशों और अधिवक्ताओं को ही अधिकरण के न्यायिक सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए विचार किया जा सकता है । केवल उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या ऐसे न्यायाधीश जिन्होंने जिला न्यायाधीश की पंक्ति में कम से कम 5 वर्ष की सेवा की हो या ऐसा व्यक्ति जिसने अधिवक्ता के रूप में 10 वर्ष की सेवा की हो को न्यायिक सदस्य के रूप में

नियुक्ति के लिए विचार किया जा सकता है । ऐसे व्यक्ति जिन्होंने भारतीय कंपनी ला सेवा (विधिक शाखा) और भारतीय विधिक सेवा (श्रेणी 1) में अनुभव के साथ केंद्रीय या राज्य सरकार के अधीन समूह 'क' या समतुल्य पद धारित करते हैं को भी धारा 10चघ की उपधारा (2)(ग) और (घ) में यथा उपबंधित न्यायिक सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए विचार किया जा सकता है । कंपनी ला सेवा या भारतीय विधिक सेवा की विशेषज्ञता उन्हें तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए विचार के लिए समर्थ बनाएगी ।

(ii) जैसे ही एन. सी. एल. टी. उच्च न्यायालय के कृत्यों का ग्रहण करता है, सदस्यों की यथासंभव शीघ्र वही स्थिति और प्रास्थिति होनी चाहिए जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की है । यह सदस्यों को न केवल उच्च न्यायालय का वेतन और लाभ देकर प्राप्त किया जा सकता है बल्कि यह सुनिश्चित करके कि ऐसे व्यक्ति जिनकी पंक्ति, अनुभव या सक्षमता उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समान है, की नियुक्ति सदस्यों के रूप में की जाए । अतः केवल ऐसे अधिकारी जो सचिव या अपर सचिव की पंक्ति धारित करते हैं को राष्ट्रीय कंपनी ला अधिकरण के तकनीकी सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए विचार किया जा सकता है । धारा 10चघ की उपधारा (2) का खंड (ग) और (घ) तथा उपधारा (3) का खंड (क) और (ख) जो अधिकरण के सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हित होने हेतु समूह 'क' पद पर 15 वर्ष के अनुभव वाले व्यक्ति या संयुक्त सचिव या समतुल्य के पद धारित करने वाले व्यक्ति का उपबंध करता है, अविधिमान्य है ।

(iii) 'तकनीकी सदस्य' ऐसे क्षेत्र में अनुभव की पूर्व कल्पना करता है जिसका अधिकरण से संबंध है । भारतीय कंपनी ला सेवा का ऐसा सदस्य जिसने लेखा शाखा में कार्य किया है या ऐसे अन्य विभाग के अधिकारी जो कंपनी ला के किसी पहलू के संबंध में आनुषंगिकतः कार्य कर चुके हैं, को तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए 'विशेषज्ञ' के रूप में अर्हित नहीं माना जा सकता । अतः उपधारा (3) का खंड (क) और (ख) विधिमान्य नहीं है ।

(iv) 'तकनीकी सदस्य' ऐसे क्षेत्र में अनुभव की पूर्व कल्पना करता है जिसका अधिकरण से संबंध है । भारतीय कंपनी ला सेवा का ऐसा सदस्य जिसने लेखा शाखा में कार्य किया है या ऐसे अन्य विभाग के अधिकारी जो कंपनी ला के किसी पहलू के संबंध में आनुषंगिकतः कार्य कर चुके हैं, को तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए 'विशेषज्ञ' के रूप में अर्हित नहीं माना जा सकता । अतः उपधारा (3) का खंड (क) और (ख) विधिमान्य नहीं है । उपधारा (3) के खंड (च) का पहला भाग यह उपबंध करता है कि विज्ञान, तकनीक, अर्थशास्त्र, बैंकिंग, उद्योग में 15 वर्ष का विशेष ज्ञान या वृत्तिक अनुभव रखने वाले किसी व्यक्ति को कंपनी ला अधिकरण में तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए कंपनी विधि में विशेषज्ञता रखने वाला व्यक्ति माना जा सकता है, अविधिमान्य है ।

(v) योग्यता, सत्यनिष्ठा, प्रतिष्ठा और उद्योग वित्त, उद्योग प्रबंध, उद्योग पुनर्संरचना, विनिधान और लेखाकर में 15 वर्ष से अन्यून विशेष ज्ञान और वृत्तिक अनुभव रखने वाले व्यक्ति को कंपनियों के पुनर्वास/पुनरुज्जीवित करने में विशेषज्ञता रखने वाले व्यक्ति के रूप में विचार किया जा सकता है । अतः तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए विचार किए जाने का पात्र हैं ।

(vi) उपधारा (3) के खंड (छ) में निर्दिष्ट व्यक्तियों के प्रवर्ग के बारे में कम से कम 5 वर्ष का अनुभव विनिर्दिष्ट किया जाना चाहिए ।

(vii) धारा 10चघ की उपधारा (3) के केवल खंड (ग), (घ), (ङ), (च), (छ) और खंड (ज) का बाद वाला भाग और भारतीय कंपनी ला सेवा और भारतीय विधिक सेवा के सचिव या अपर सचिव पंक्ति के सिविल सेवा के अधिकारी को अधिकरण के तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्ति के प्रयोजन के लिए विचार किया जा सकता है ।

(viii) धारा 10चम में वर्णित अध्यक्ष के रूप में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (या उसके नामनिर्देशिती) और वित्त और कंपनी

कार्य मंत्रालय के दो सचिव और श्रम मंत्रालय के सचिव और विधि और न्याय मंत्रालय के सचिव सदस्य के रूप में पांच सदस्यीय चयन समिति के बजाय, चयन समिति मौटे तौर पर निम्नलिखित प्रकार से होना चाहिए –

(क) भारत का मुख्य न्यायमूर्ति या उसका नामनिर्देशिती – अध्यक्ष (निर्णायक मत के साथ) ;

(ख) उच्चतम न्यायालय का वरिष्ठतम न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति – सदस्य ;

(ग) वित्त और कंपनी कार्य मंत्रालय का सचिव – सदस्य ; और

(घ) विधि और न्याय मंत्रालय का सचिव – सदस्य ।

(ix) तीन वर्ष की पदावधि को एक और अवधि के लिए नियुक्ति की पात्रता के अधीन रहते हुए सात या पांच वर्ष की अवधि में परिवर्तित किया जाएगा । ऐसा इसलिए है क्योंकि संबद्ध क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए काफी समय की आवश्यकता होती है । तीन वर्ष की अवधि काफी कम है और जब तक सदस्य अपेक्षित ज्ञान, विशेषज्ञता और दक्षता प्राप्त करता है एक और अवधि बीत जाती है । इसके अतिरिक्त 65 वर्ष की सेवानिवृत्ति की आयु के साथ तीन वर्ष की उक्त अवधि पर विचार किया गया है क्योंकि यह ऐसे व्यक्तियों के लिए बनाया गया माना जाता है जो सेवानिवृत्त हो चुके हैं या हाल ही में सेवानिवृत्त होने वाले हैं और इन अधिकरणों को सेवानिवृत्त के पश्चात् स्वर्ग के रूप में माने जाने को प्रोत्साहित करता है । यदि इन अधिकरणों को प्रभावी और दक्षतापूर्ण कार्य करना है तो उन्हें नवयुवक सदस्यों को आकर्षित करना होगा जिनके पास सेवा की युक्तियुक्त अवधि हो ।

(x) अध्यक्ष या सदस्य के रूप में पद धारित करते समय अपने पैतृक काडर/मंत्रालय/विभाग के साथ अपना धारणाधिकार प्रतिधारित करने के लिए अध्यक्ष या सदस्यों को समर्थ बनाने वाली धारा 10चङ का दूसरा परंतुक सदस्यों की स्वतंत्रता के लिए अनुकूल नहीं होगा । सदस्य के रूप में नियुक्त किसी व्यक्ति को कार्यपालिका से स्वयं को पूर्णतः असहयोजित करने

के लिए तैयार होना चाहिए । अतः, धारणाधिकार एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए नहीं बढ़ाया जा सकता ।

(xi) सेवा में स्वतंत्रता और सुरक्षा बनाए रखने के लिए धारा 10चञ की उपधारा (3) और धारा 10चह में यह उपबंध होना चाहिए कि अधिकरण के अध्यक्ष/सभापति या सदस्य का निलंबन भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से ही हो सकता है ।

(xii) सभी अधिकरणों का प्रशासनिक समर्थन विधि और न्याय मंत्रालय से होना चाहिए । न तो अधिकरणों न ही इसके सदस्यों को संबद्ध प्रायोजक या पैतृक मंत्रालय या संबद्ध विभाग से सुविधाएं मांगनी चाहिए या उपलब्ध कराई जाए ।

(xiii) अधिकरण की दो सदस्यीय न्यायपीठ में हमेशा एक न्यायिक सदस्य होना चाहिए । जब कभी कोई वृहत या विशेष न्यायपीठ का गठन किया जाता है तो तकनीकी सदस्यों की संख्या न्यायिक सदस्यों से अधिक नहीं होगी ।"

4. पूर्वोक्त के आधार पर अपीलों को भागतः मंजूर करते हुए इसका निम्नलिखित निबंधनानुसार निपटान किया गया :–

"57. अतः हम इन अपीलों को निपटान उन्हें भागतः मंजूर करते हुए इस प्रकार करते हैं –

(i) हम उच्च न्यायालय के विनिश्चय को कायम रखते हैं कि राष्ट्रीय कंपनी ला अधिकरण और राष्ट्रीय कंपनी ला अपील अधिकरण का सृजन और कंपनी विधि मामलों से संबंधित उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों और अधिकारिता का उनमें निहित किया जाना असंवैधानिक नहीं है ।

(ii) हम यह घोषित करते हैं कि वर्तमान विनिर्मित अधिनियम का भाग 1ख और भाग 1ग पूर्ववर्ती पैरा में कथित कारणों से असंवैधानिक है । तथापि, अधिनियम के भाग 1ख और 1ग को उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश के अनुसरण में पहले ही संघ सरकार द्वारा व्यक्त सहमति के अलावा उपरोक्त यथा उपदर्शित उपयुक्त संशोधन लाकर इसे कार्यशील बनाया जाए ।"

5. यद्यपि एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. के सृजन को कायम रखते हुए अधिनिर्णय वर्ष 2010 में आया फिर भी इन दो निकायों को सृजित और इसके पश्चात् तत्काल कार्यशील नहीं बनाया जा सका और मामला एक या अन्य तरीके से उलझन में ही फंसा रहा । उन कारकों का पता लगाना आवश्यक नहीं है क्योंकि उनमें से कुछ रिट याचिका संख्या 267/2012 की विषयवस्तु हैं जो रिट याचिका इस याची द्वारा भी फाइल की गई है और विचारार्थ लंबित हैं । उक्त रिट याचिका को भी वर्तमान रिट याचिका के साथ इस न्यायपीठ के समक्ष सूचीबद्ध किया गया और कुछ हद तक याचिका में बहस की सुनवाई भी की गई । तथापि, उक्त याचिका में उठाए गए मुद्दों पर आगे भारत संघ से पक्षकारों की सहमति से जवाब मांगना आवश्यक हो गया इसलिए उत्तर की प्रतिक्षा करते हुए उस रिट याचिका में सुनवाई को आस्थगित करना उचित समझा गया । जहां तक वर्तमान रिट याचिका का संबंध है यद्यपि रिट याचिका सं. 267/2012 से संबद्ध होते हुए इस रिट याचिका में किए गए अनुरोध पूर्णतः भिन्न हैं और इस रिट याचिका की सुनवाई के साथ कार्यवाही आरंभ करने में कोई अवरोध या बाधा नहीं है । इन कारणों से इस मामले में अंतिम रूप से बहस की सुनवाई की गई ।

6. वर्तमान रिट याचिका पर विचार करते हुए यह पता चला कि संसद् में भारतीय कंपनी अधिनियम, 2013 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "2013 अधिनियम" कहा गया है) के रूप में नई कंपनी विधि पारित की है जो पूर्व अधिनियम, 1956 को प्रतिस्थापित करती है । इस अधिनियम में पुनः अधिष्ठायी उपबंध एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. की स्थापना के बारे में किए गए हैं । यह स्पष्ट है कि एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. के साथ, एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. की संरचना और गठन से संबंधित उपबंध, एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. दोनों के अध्यक्ष/सभापति और सदस्य (न्यायिक और तकनीकी) की नियुक्ति के लिए अर्हताओं से संबंधित उपबंध और उक्त सदस्यों के चयन के लिए चयन समिति के गठन से संबंधित उपबंध भी 2013 अधिनियम में सम्मिलित किए गए हैं । ये धारा 10चघ, 10चङ; 10चच, 10जठ, 10चद और 10चन के समतुल्य हैं जो कंपनी (संशोधन) अधिनियम, 2002 द्वारा 1956 के अधिनियम में शामिल किए गए थे । याची द्वारा इस याचिका को फाइल करने का कारण याची का यह अभिकथन है कि 2010 निर्णय में दिए गए विभिन्न निदेशों के होते हुए भी 2013 अधिनियम के नए उपबंध लगभग उसी तरह हैं जैसे 1956 अधिनियम में सम्मिलित किए गए थे अतः

ये उपबंध असंवैधानिकता और 2010 के तर्काधार को लागू करने के दोष से ग्रस्त हैं । इस प्रकार याची द्वारा यह बल दिया गया है कि वह उपबंध जो 2013 अधिनियम की धारा 408, 409, 411(3), 412, 413, 425, 431 और 434 में अंतर्विष्ट हैं, संविधान के अनुच्छेद 14 के उपबंधों के अधिकारातीत हैं अतः असंवैधानिक होने के कारण अभिखंडित किए जाने योग्य हैं । रिट याचिका में किया गया संक्षिप्त प्रार्थना इस प्रकार है :–

> "(i) यह घोषित करते हुए विशेषकर घोषणा की रिट की प्रकृति की रिट, आदेश या निदेश कि कंपनी अधिनियम, 2013 के अध्याय 27 के उपबंध, विशेषकर धारा 408, 409, 411(3), 412, 413, 425, 431 और 434 को संविधान के अनुच्छेद 14 के उपबंधों के अधिकारातीत होने और तदनुसार उक्त उपबंधों को असंवैधानिक होने के आधार पर अभिखंडित करने का आदेश दिया जाए ।
>
> (ii) वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में कोई आदेश या ऐसा अतिरिक्त आदेश पारित किया जाए जिसे ठीक और उचित समझा जाए ।"

7. आगे कार्यवाही आरंभ करने के पूर्व हम धारा 2(4), 2(90) और धारा 407 जिसमें कतिपय परिभाषाएं हैं, के साथ अधिनियम, 2013 के पूर्वोक्त उपबंधों को उपवर्णित करते हैं जो इस याचिका में उठाए गए संविवाद के संदर्भ में सुसंगत हैं :–

> "**2(4)**. 'अपील अधिकरण' से धारा 410 के अधीन गठित राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण अभिप्रेत है ;
>
> "**2(90)**. 'अधिकरण' से धारा 408 के अधीन गठित राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण अभिप्रेत है ;
>
> **407.** इस अध्याय में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,–
>
> (क) 'अध्यक्ष' से अपील अधिकरण का अध्यक्ष अभिप्रेत है ;
>
> (ख) 'न्यायिक सदस्य' से अधिकरण या अपील अधिकरण का ऐसा कोई सदस्य अभिप्रेत है जो उस रूप में नियुक्त किया गया है और इसके अंतर्गत, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति भी है ;
>
> (ग) 'सदस्य' से अधिकरण या अपील अधिकरण का कोई

ऐसा सदस्य चाहे वह न्यायिक या तकनीकी हो अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति भी है ;

(घ) 'अध्यक्ष' से अधिकरण का अध्यक्ष अभिप्रेत है ;

(ङ) 'तकनीकी सदस्य' से अधिकरण या अपील अधिकरण का ऐसा सदस्य अभिप्रेत है जिसे उस रूप में नियुक्त किया गया है ।

408. राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण का गठन – केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, ऐसी तारीख से, जो उसमें विनिर्दिष्ट की जाए, एक अधिकरण की स्थापना करेगी जिसका नाम 'राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण' होगा, जो अध्यक्ष और ऐसे न्यायिक और तकनीकी सदस्यों से मिलकर बनेगा, जिन्हें केन्द्रीय सरकार आवश्यक समझे, जिनकी नियुक्ति इस अधिनियम द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा प्रदत्त शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग और निर्वहन करने के लिए, उसके द्वारा, अधिसूचना द्वारा, की जाएगी ।

409. अधिकरण के अध्यक्ष और सदस्यों की अर्हता – (1) अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होगा, जो उच्च न्यायालय का पांच वर्ष के लिए न्यायाधीश है या रहा है ।

(2) कोई व्यक्ति न्यायिक सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा जब,–

(क) उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है ; या

(ख) कम से कम पांच वर्ष तक जिला न्यायाधीश है या रहा है ; या

(ग) वह किसी न्यायालय में कम से कम दस वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो ।

स्पष्टीकरण – खंड (ग) के प्रयोजनों के लिए ऐसी अवधि की संगणना करने में जिसके दौरान कोई व्यक्ति न्यायालय का अधिवक्ता रहा है, ऐसी अवधि जोड़ी जाएगी जिसके दौरान व्यक्ति उसके अधिवक्ता बनने के पश्चात् विधि का विशेष ज्ञान रखने वाले संघ या राज्य के अधीन किसी पद या अधिकरण के सदस्य के पद या न्यायिक पद पर रहा है ।

(3) कोई व्यक्ति, तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा, जब वह,–

(क) भारतीय कारपोरेट विधिक सेवा या भारतीय विधिक सेवा का कम से कम पंद्रह वर्ष तक सदस्य रहा हो, उस सेवा में, उसने कम से कम तीन वर्ष भारत सरकार के संयुक्त सचिव के या समतुल्य या उस सेवा से ऊपर की सेवा के वेतनमान में की हो ; या

(ख) चार्टर्ड अकाउंटेंट के रूप में कम से कम पन्द्रह वर्ष व्यवसाय किया है या करता रहा है ; या

(ग) लागत अकाउंटेंट के रूप में कम से कम पन्द्रह वर्ष व्यवसाय किया है या करता रहा है ; या

(घ) कंपनी सचिव के रूप में कम से कम पन्द्रह वर्ष व्यवसाय किया है या करता रहा है ; या

(ङ) ऐसा व्यक्ति हो, जिसको विधि, वित्त, औद्योगिक प्रबंध या प्रशासन, पुनर्निमाण, विनिधान लेखाकर्म, अर्थशास्त्र, श्रम मामलों या प्रबंध से संबद्ध ऐसी अन्य विद्याशाखाओं, कंपनियों के कार्यकलापों का संचालन, उनके पुनरुद्धार और पुनरुज्जीवन और परिसमापन में योग्यता, निष्ठा और विशेष ज्ञान हो तथा पंद्रह वर्ष से अन्यून का अनुभव हो ;

(च) औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अधीन गठित श्रम न्यायालय या अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण का कम से कम पांच वर्ष तक पीठासीन अधिकारी है या रहा है ।

410. अपील अधिकरण का गठन – केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, ऐसी तारीख से जो उसमें विनिर्दिष्ट की जाए, एक अपील अधिकरण की स्थापना करेगी, जिसका नाम "राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण" होगा, जो अध्यक्ष और ऐसे न्यायिक और तकनीकी सदस्यों से मिलकर बनेगा, जो ग्यारह से अनधिक न होंगे, जो केन्द्रीय सरकार आवश्यक समझे, जिनकी नियुक्ति अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई के लिए, अधिसूचना द्वारा की जाएगी ।

411. अपील अधिकरण के सभापति और सदस्यों की अर्हताएं – (1) अध्यक्ष, ऐसा व्यक्ति होगा, जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश

या उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति है या रहा है ।

(2) न्यायिक सदस्य, ऐसा व्यक्ति होगा, जिसे उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है या पांच वर्ष के लिए अधिकरण का न्यायिक सदस्य है ।

(3) तकनीकी सदस्य, वह व्यक्ति होगा जो विधि, वित्त, बैंककारी, प्रबंध, औद्योगिक प्रशासन, अर्थशास्त्र, श्रम मामलों में कंपनियों के प्रबंध कार्यकलापों के संचालन, पुनरुद्धार, पुनरुज्जीवन या परिसमापन से संबद्ध अन्य विद्याशाखाओं में योग्यता, निष्ठा और विशेष ज्ञान का कम से कम पच्चीस वर्ष से कम का अनुभव न हो ।

412. अधिकरण और अपील अधिकरण के सदस्यों का चयन – (1) अधिकरण का अध्यक्ष और अपील अधिकरण का सभापति और न्यायिक सदस्यों की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करने के पश्चात् की जाएगी ।

(2) अधिकरण के सदस्यों और अपील अधिकरण के तकनीकी सदस्यों की नियुक्ति चयन समिति की सिफारिशों पर की जाएगी, जो निम्नलिखित से मिलकर बनेगी,–

(क) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उसका नामनिर्देशिती – सभापति ;

(ख) उच्चतम न्यायालय का ज्येष्ठ न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति – सदस्य ;

(ग) कारपोरेट मामले मंत्रालय में सचिव – सदस्य ;

(घ) विधि और न्याय मंत्रालय में सचिव – सदस्य ; और

(ङ) वित्त मंत्रालय के वित्तीय सेवा विभाग का सचिव – सदस्य ।

(3) कारपोरेट मामले मंत्रालय का सचिव, चयन समिति का संयोजक होगा ।

(4) चयन समिति उपधारा (2) के अधीन व्यक्तियों की सिफारिश करने के लिए अपनी प्रक्रिया अवधारित करेगी ।

(5) अधिकरण या अपील अधिकरण के सदस्यों की कोई नियुक्ति केवल इस आधार पर अविधिमान्य नहीं होगी कि चयन समिति के गठन में कोई रिक्ति या कोई त्रुटि थी ।

413. अध्यक्ष, सभापति और अन्य सदस्यों की पदावधि – (1) अधिकरण का अध्यक्ष और प्रत्येक अन्य सदस्य अपने पद ग्रहण करने की तारीख से जिसको वह पद धारण करता है से पांच वर्ष की अवधि तक धारण करेगा, किन्तु पांच वर्ष के एक अन्य अवधि के लिए पुनःनियुक्ति के लिए पात्र होगा ।

(2) अधिकरण का कोई सदस्य तब तक पद धारण करेगा, जब तक कि वह,–

(क) अध्यक्ष की दशा में, सड़सठ वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेता है ;

(ख) किसी अन्य सदस्य की दशा में, पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेता है :

परन्तु वह सदस्य जिसने 50 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है वह सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होगा :

परन्तु यह और कि सदस्य पद धारण करते समय, यथास्थिति, अपने मूल काडर या मंत्रालय या विभाग में अपना धारणाधिकार एक वर्ष से अनधिक की अवधि तक प्रतिधारित कर सकेगा ।

(3) अपील अधिकरण का अध्यक्ष और सदस्य अपना पद, पद ग्रहण करने की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक धारण करेगा, किन्तु और पांच वर्ष के लिए पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र होगा ।

(4) अपील अधिकरण का कोई सदस्य तब तक अपना पद धारण करेगा, जब तक कि वह,–

(क) अध्यक्ष की दशा में, सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेता है ;

(ख) अन्य सदस्यों की दशा में, सड़सठ वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेता है :

परन्तु वह सदस्य जिसने 50 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है वह सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होगा :

परन्तु यह और कि सदस्य पद धारण करते समय, यथास्थिति, अपने मूल काडर या मंत्रालय या विभाग में अपना धारणाधिकार एक वर्ष से अनधिक की अवधि तक प्रतिधारित कर सकेगा ।

414. सदस्यों का वेतन, भत्ते और सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें – अधिकरण और अपील अधिकरण के सदस्यों का वेतन, भत्ते और सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी, जो विहित की जाएं :

परंतु सदस्यों के न तो वेतन और भत्ते में, न ही सेवा के अन्य निबंधन और शर्तों में, उनकी नियुक्ति के पश्चात् अलाभकारी परिवर्तन नहीं किए जाएंगे ।

425. अवमान के लिए दंड देने की शक्ति – अधिकरण और अपील अधिकरण को उनकी अवमानना के लिए वहीं अधिकारिता, शक्तियां और प्राधिकार प्राप्त होगा, जो उच्च न्यायालय को प्राप्त हैं तथा इस प्रयोजन के लिए वे न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के उपबंधों के अधीन शक्तियों का निम्नलिखित उपांतरणों के अधीन रहते हुए, प्रयोग कर सकेंगे,–

(क) उसमें उच्च न्यायालय के प्रतिनिर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि उसमें अधिकरण और अपील अधिकरण को प्रतिनिर्देश सम्मिलित हैं ; और

(ख) उक्त अधिनियम की धारा 15 में महाधिवक्ता के प्रतिनिर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह ऐसे विधि अधिकारियों के प्रतिनिर्देश है, जो केन्द्रीय सरकार इस निमित्त अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे ।

8. अनुरोध खंड में धारा 415, 418, 424, 426, 431 और 434 की संवैधानिक विधिमान्यता को भी प्रश्नगत किया गया है । सुनवाई के दौरान पूर्वोक्त उपबंधों पर याची के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री दातार द्वारा कोई तर्क नहीं किया गया है । अतः इन उपबंधों की बाबत हम अपनी चर्चा इससे दूर रखते हैं ।

9. पूर्वोक्त उपबंधों के पढ़ने और बार की ओर से दिए गए तर्कों को ध्यान में रखते हुए हम चुनौती को इस प्रकार तीन भागों में सुविधापूर्वक वर्गीकृत कर सकते हैं :–

(i) एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. के गठन की विधिमान्यता की चुनौती ;

(ii) एन. सी. एल. टी. के अध्यक्ष और सदस्य तथा एन. सी. एल. ए. टी. के सभापति और सदस्य की पदावधि और वेतन भत्ते

आदि सहित अर्हताओं के आदेश की चुनौती ;

(iii) एन. सी. एल. टी. के अध्यक्ष/सदस्य तथा एन. सी. एल. ए. टी. के सभापति/सदस्य की नियुक्ति के लिए चयन समिति के ढांचे की चुनौती ।

धारा 425 में यथावर्णित अवमान के लिए दंडित करने हेतु इन निकायों को दी गई शक्ति और न्यायपीठ गठित करने के लिए केंद्रीय सरकार को शक्ति देने से संबंधित आनुषंगिक मुद्दे ही याची द्वारा उठाए गए हैं ।

जैसाकि हम इसमें इसके पश्चात् चर्चा करेंगे, ये सभी मुद्दे मद्रास बार एशोसिएशन (पूर्वोक्त) द्वारा उठाए गए थे और इन प्रश्नों के उत्तर उसमें उपलब्ध हैं । वस्तुतः प्रत्येक मुद्दे पर विस्तृत चर्चा के पश्चात् न्यायालय ने अधिमत की घोषणा की । अतः उठाए गए मुद्दों का निदान करते समय हम उसी उपचार का प्रबंध करेंगे जो उस निर्णय में विहित है ।

मुद्दा संख्या 1

विषय : एन. सी. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. की संवैधानिक मान्यता

2013 अधिनियम की धारा 408 एन. सी. एल. टी. के गठन के बारे में है । इस धारा के आधार पर, केंद्रीय सरकार "राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण" के नाम से ज्ञात अधिकरण गठित करने के लिए अधिसूचना जारी करने हेतु सशक्त है । इस अधिकरण में अध्यक्ष और न्यायिक तथा तकनीकी सदस्यों की ऐसी संख्या होगी जो केंद्रीय सरकार उसके द्वारा नियुक्त किए जाने के लिए आवश्यक समझे । 12 सितंबर, 2013 की अधिसूचना द्वारा केंद्रीय सरकार ने एन. सी. एल. टी. का गठन किया है । इसी प्रकार 2013 अधिनियम की धारा 410 केंद्रीय सरकार को अधिसूचना द्वारा एन. सी. एल. ए. टी. के गठन की शक्ति प्रदान करती है । इस एन. सी. एल. ए. टी. में भी सभापति और 11 सदस्यों से अनधिक ऐसे न्यायिक और तकनीकी सदस्य होंगे जो केंद्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा नियुक्त किए जाने के लिए ठीक समझे । तारीख 12 सितंबर, 2013 की पूर्वोक्त अधिसूचना द्वारा, एन. सी. एल. ए. टी. का भी गठन केंद्रीय सरकार द्वारा किया गया है ।

10. यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि अनुरोध खंड में यद्यपि

चुनौती धारा 408 की शक्तिमत्ता पर आधारित है फिर भी यह सुप्रकटतः धारा 410 का लोप करता है और इस प्रकार सारतः जहां तक अनुतोष के दावे का संबंध है, एन. सी. एल. ए. टी. के गठन की चुनौती नहीं दी गई है । फिर भी जैसाकि ऊपर इंगित किया गया है संपूर्ण रिट याचिका 2010 के निर्णय में संविधान न्यायपीठ के निर्णय के अधीन असंतोष व्यक्त करती है । तथापि, बहस के समय श्री दातार ने मुख्यतः एन. सी. एल. टी. के गठन पर चुनौती देने के किसी गंभीर प्रयास के बिना एन. सी. एल. ए. टी. की संवैधानिक मान्यता की चुनौती दी है । जहां तक एन. सी. एल. टी. का संबंध है उन्होंने लगभग यह स्वीकार किया कि उसकी विधिमान्यता को 2010 निर्णय में कायम रखा गया है और बहस करने के लिए कुछ अधिक नहीं है । एन. सी. एल. ए. टी. के बाबत यद्यपि उन्होंने यह माना कि उसकी विधिमान्यता भी पूर्वोक्त निर्णय में कायम रखी गई है फिर भी उनका प्रयास यह प्रदर्शित करना था कि जहां तक एन. सी. एल. ए. टी. का संबंध है पूरे निर्णय में कोई चर्चा नहीं की गई है अतः निष्कर्ष जो उक्त निर्णय के अंत में उल्लिखित है को इस विवाद्यक को विनिश्चित करने के रूप में आबद्धकर या लिया गया नहीं माना जाना चाहिए । उनका यह निवेदन था कि **मद्रास बार एशोसिएशन** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की पश्चात्वर्ती संविधान न्यायपीठ के निर्णय को ध्यान में रखते हुए जहां राष्ट्रीय कर अधिकरण की स्थापना को असंवैधानिक अभिनिर्धारित किया गया है वहां राष्ट्रीय कर अधिकरण से संबंधित उक्त निर्णय में अभिलिखित कारणों से धारा 410 के साथ भी वही बर्ताव करना चाहिए । विभिन्न कारणों से यह तर्क पचाना काफी कठिन है जिसे हम इसके पश्चात् चर्चा में अभिलिखित करते हैं ।

11. सर्वप्रथम एन. सी. एल. ए. टी. के गठन का सृजन विनिर्दिष्ट रूप से 2010 के निर्णय में अभिनिर्धारित किया गया है । यह इनकार नहीं किया जा सकता है कि इस याची ने अपनी पूर्व रिट याचिका में एन. सी. एल. ए. टी. की संवैधानिक विधिमान्यता को विनिर्दिष्ट रूप से प्रश्नगत किया था और इस विवाद्यक पर तर्क भी दिए थे । इस तथ्य का उल्लेख विनिर्दिष्ट रूप से उक्त निर्णय में किया गया है । अपील अधिकरण के गठन विषयक उपबंध अर्थात् कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 10चद पर सम्यक् ध्यान दिया गया था । इस आधार पर एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. की स्थापना को चुनौती दी गई थी कि संसद् में सामान्य

---

[1] (2014) 10 एस. सी. सी. 1.

न्यायालयों से शक्तियों को छीनकर अधिकरणीकरण का अवलंब लिया था जो अनिवार्यतः न्यायिक कृत्य था और विधान-मंडल की यह चेष्टा उस विनिश्चय करने वाले की निष्पक्षता, ऋजुता और युक्तियुक्तता का अतिक्रमण है जो न्यायपालिका विशेषकर न्यायिक कृत्य का प्रमाण-चिह्न है । आगे यह तर्क दिया गया कि यह विधि के नियम को अस्वीकार करने और शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को कुचलने के समान है जो भारत के संविधान का आधार भूत लक्षण है । हम इस बात पर बल दे रहे हैं कि याचिकाओं में इन सामान्य आधारों पर एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. दोनों की संवैधानिक विधिमान्यता पर आक्रमण किया गया है । न्यायालय ने विनिर्दिष्ट रूप से उठाए गए इन सभी तर्कों की परिधि पर विचार किया और बलपूर्वक इसका खंडन किया ।

12. न्यायालय ने विनिर्दिष्ट रूप से इस दलील का खंडन किया कि न्यायालयों द्वारा परंपरागत रूप से किए जाने वाले न्यायिक कृत्य का अधिकरणों को अंतरण संविधान के आधारभूत ढांचे पर प्रहार करता है और इस बाबत स्थिति को इस प्रकार संक्षेप में स्पष्ट किया :–

> "हम स्थिति को संक्षेप में इस प्रकार स्पष्ट करते हैं –
>
> (क) विधान-मंडल किसी विनिर्दिष्ट विषय (उन विषयों से भिन्न जो संविधान के व्यक्त उपबंधों द्वारा न्यायालयों में निहित हैं) की बाबत न्यायालयों द्वारा प्रयोग्तव्य अधिकारिता को किसी अधिकरण को अंतरित करने के लिए विधि अधिनियमित कर सकता है ।
>
> (ख) सभी न्यायालय अधिकरण हैं । ऐसा कोई अधिकरण जिसे न्यायालयों की किसी विद्यमान अधिकारिता का अंतरण किया जाता है, भी न्यायिक अधिकरण होना चाहिए । इसका यह अर्थ है कि ऐसे अधिकरण में, न्यायालय की पंक्ति, प्रास्थिति और क्षमता के समान यथासंभव पंक्ति, क्षमता और प्रास्थिति के सदस्य होने चाहिए जो उस समय तक ऐसे मामलों पर विचार कर रहे थे तथा अधिकरण के सदस्यों को न्यायिक अधिकरण से सहयोजित अवधि की स्वाधीनता और सुरक्षा होनी चाहिए ।
>
> (ग) जब कभी 'अधिकरण' की आवश्यकता होती है ऐसी कोई उपधारणा नहीं है कि अधिकरणों में तकनीकी सदस्य होने

चाहिए । जब न्यायालयों में विचाराधीनता और विलंब के आधार पर किसी अधिकारिता को न्यायालयों से अधिकरणों में अंतरित किया जाता है और इस प्रकार अंतरित अधिकारिता में विशेषज्ञों की सहायता की अपेक्षा करते हुए कोई तकनीकी पहलू अंतर्वलित नहीं है तो अधिकरणों में प्रसामान्यतः न्यायिक सदस्य होना चाहिए । केवल यहां अधिकारिता के प्रयोग में तकनीकी या विशेष पहलू की जांच और विनिश्चय अंतर्वलित है, जहां तकनीकी सदस्यों की उपस्थिति सार्थक और आवश्यक है अधिकरणों में तकनीकी सदस्य होने चाहिए । सभी अधिकरणों में तकनीकी सदस्यों की धुआंधार नियुक्ति न्यायपालिका की स्वतंत्रता को कम करेगी और प्रतिकूल प्रभाव डालेगी ।

(घ) विधान-मंडल न्यायिक अधिकरणों के अधिकारिताओं को पुनर्गठित कर सकती है । उदाहरणार्थ यह उपबंध कर सकती है कि किसी उच्चतर न्यायालय द्वारा विचारणीय मामलों के विनिर्दिष्ट प्रवर्ग का विचारण निचले न्यायालय या विलोमतः द्वारा किया जा सकता है (मानक दृष्टांत न्यायालयों की धनीय सीमाओं का परिवर्तन है) । इसी प्रकार अधिकरण गठित करते समय विधान-मंडल अर्हताएं/पात्रता मापदंड विहित कर सकता है । तथापि, यह न्यायिक पुनर्विलोकन का विषय है । यदि न्यायिक पुनर्विलोकन का प्रयोग करने वाले न्यायालय का यह मत है कि ऐसे अधिकरणीकरण से न्यायपालिका की क्षमता या न्यायपालिका के स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तो न्यायालय न्यायपालिका की स्वतंत्रता और स्तर के संरक्षण के लिए हस्तक्षेप कर सकेगा । ऐसा प्रयोग शक्तियों के पृथक्करण को बनाए रखने के नियंत्रण और विधायिका या कार्यपालिका द्वारा साशय या आशय रहित किसी दखल को रोकने के लिए नियंत्रण और संतुलन उपायों का भाग होगा ।"

13. इसके पश्चात् संविधान न्यायपीठ ने "क्या कंपनी अधिनियम के भाग 1ख और 1ग के अधीन एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. का गठन विधिमान्य है" शीर्षक के अधीन एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. की संवैधानिक विधिमान्यता पर सुस्पष्टतः विचार किया और इस विषय की विस्तृत चर्चा को आधार बनाया । उपरोक्त से यह प्रकट होता है कि एन. सी. एल. ए. टी. की विधिमान्यता का प्रश्न प्रत्यक्षतः और

स्पष्टतः विवाद्यक बिंदु है । इन दो मंच की विधिमान्यता के लिए अधिकथित चुनौती के विभिन्न पहलुओं पर सांगोपांग विचार-विमर्श किया गया है । निःसंदेह पैरा 107 से 119 की अधिकांश चर्चा एन. सी. एल. टी. के बारे में है । तथापि, इन पैराग्राफों में अंतर्विष्ट उक्त चर्चा का परिशीलन करने से सुस्पष्टतः यह प्रकट होता है कि इसमें एन. सी. एल. ए. टी. भी शामिल है । निर्णय के पैराग्राफ 121 में जिसे पहले ही ऊपर उद्धृत किया गया है, न्यायालय ने उच्च न्यायालय के विनिश्चय की विनिर्दिष्टतः पुष्टि की है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया कि एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. का सृजन असंवैधानिक नहीं था । इसको ध्यान में रखते हुए याची इस मुद्दे पर बहस करने के लिए भी स्वतंत्र नहीं है क्योंकि इस पर स्पष्टतः पूर्व-न्याय लागू होता है ।

14. निःसंकोच श्री दातार पूर्वोक्त परिसीमा से भिज्ञ थे । फिर भी उन्होंने इस आधार पर एन. सी. एल. ए. टी. के गठन पर हमला किया कि जहां तक इस अपील फोरम का संबंध है उक्त निर्णय में कोई कारण नहीं बताया गया है और इसके पश्चात् इस पहलू पर एन. टी. टी. निर्णय में अधिक विस्तार से विचार किया गया जिसमें राष्ट्रीय कर अधिकरण की रचना को असंवैधानिक अभिनिर्धारित किया गया । याची की ओर से यह तिकरम पूर्णतः अनाधारित है । पहली नजर में जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है जहां तक एन. सी. एल. ए. टी. का संबंध है इसकी विधिमान्यता को पहले ही कायम रखा गया है और इस मुद्दे को पुनः नहीं उठाया जा सकता । 2010 निर्णय वाले मामले का निर्णय संविधान पीठ का निर्णय है और सहवर्ती न्यायपीठ का वह निर्णय इस न्यायपीठ को भी आबद्ध करता है ।

15. दूसरा, राष्ट्रीय कर अधिकरण के मामले में संविधान न्यायपीठ के निर्णय के पढ़ने से यह प्रकट होता है कि न केवल 2010 के निर्णय पर ध्यान दिया गया बल्कि इसका अनुसरण भी किया गया । न्यायालय ने एक ओर एन. सी. एल. टी./एन. सी. एल. ए. टी के बीच विभेदकारी लक्षणों का उल्लेख किया और दूसरी ओर एन. टी. टी. वाले मामले में भिन्न निष्कर्ष निकाला ।

16. तीसरा, एन. टी. टी. ऐसा मामला था जहां विधि के विशुद्ध सारवान् प्रश्न का विनिश्चय करने में उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को एन. टी. टी. में निहित कर छीने जाने की ईप्सा की गई थी जिसे अननुज्ञेय ठहराया गया था । वर्तमान मामले में ऐसी कोई स्थिति नहीं है । प्रतिकूलतः एन. सी. एल. टी.

अधिनियम, 2013 में गठित अर्ध न्यायिक मंच के अधिकरण का प्रथम मंच है । इस प्रकार एन. सी. एल. टी. उसके समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले मामले में न केवल विधि के प्रश्न पर विचार करेगा बल्कि तथ्यात्मक विवाद/पहलू को भी सुलझाने का विचार करेगा । इस परिदृश्य में एन. सी. एल. ए. टी. जो एन. सी. एल. टी. द्वारा पारित आदेशों की विधिमान्यता की परीक्षा करने के लिए 2013 अधिनियम के अधीन उपबंधित प्रथम अपील मंच है, को तथ्यात्मक तथा विधिक मुद्दों पर पुनर्विचार करना होगा । अतः स्थिति एन. टी. टी. जैसी नहीं है । अपील अधिकरण की अधिकारिता स्वयं धारा 410 में वर्णित है जिसमें यह उपबंध है कि एन. सी. एल. ए. टी. का गठन अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई करने के लिए किया जाएगा । यह अधिकारिता किसी भी प्रकार के किसी प्रकृति की किसी परिसीमाओं द्वारा सीमित नहीं है और उसकी विवक्षा यह है कि अपील तथ्य के प्रश्नों और विधि के प्रश्नों दोनों पर की जाएगी । इसी प्रकार धारा 421 की उपधारा (4) के अधीन जो उपबंध अधिकरण के आदेशों से अपील के बारे में है, में यह उपबंध है कि एन. सी. एल. ए. टी. सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् उस पर ऐसे आदेश जिसके विरुद्ध अपील की गई है, को परिवर्तित करते हुए, विरचित करते हुए या अपास्त करते हुए आदेश पारित कर सकेगा जो वह ठीक समझे । इसके पश्चात् एन. सी. एल. टी. के आदेश से 2013 अधिनियम की धारा 423 के अधीन उच्चतम न्यायालय में आगे अपील किए जाने का उपबंध है । यहां उच्चतम न्यायालय को अपील की व्याप्ति केवल "ऐसे आदेश से उद्भूत विधि के प्रश्न का" तक केवल सीमित है ।

17. चौथा, यह अज्ञात नहीं है अपितु एक ऐसी सामान्य प्रक्रिया है जिसके अधीन अपील मंच का उपबंध ऐसी स्थिति में किया गया है जहां कहीं भी कोई अधिनियमिति न्यायिक उपचार के लिए एक संपूर्ण संहिता हो । अपील मंच के समक्ष किसी को अपील का अधिकार उपलब्ध कराना सुस्वीकृत मानक है जिसे सकारात्मक परंपरा स्वीकार किया गया है ।

18. इन सभी कारणों से हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि इस मुद्दे में कोई सार नहीं है ।

मुद्दा संख्या 2

19. एन. सी. एल. टी. के अध्यक्ष और सदस्यों की अर्हताओं का उल्लेख 2013 के अधिनियम की धारा 409 में वर्णित है और एन. सी. एल. ए. टी. के सभापति और सदस्यों की अर्हताएं 2013 अधिनियम की

धारा 411 में अनुबंधित है । याची का अधिकरण के अध्यक्ष और न्यायिक सदस्यों तथा अपील अधिकरण के सभापति और न्यायिक सदस्यों के लिए वर्णित अर्हताओं के बारे में कोई विवाद नहीं है । तथापि, यह तर्क दिया गया है कि जहां तक एन. सी. एल. टी./एन. सी. एल. ए. टी के तकनीकी सदस्यों का संबंध उपबंध लगभग एक जैसा है जो 1956 के अधिनियम में संशोधन के माध्यम से अंतःस्थापित किया गया था और उन उपबंधों की चुनौती को उसमें पाई गई खामियों को विनिर्दिष्टतः कायम रखा गया है । इस तर्क के मूल्यांकन के लिए हम 1956 अधिनियम और 2013 अधिनियम में अंतर्विष्ट तुलनात्मक उपबंधों को दर्शाते हैं :–

1956 अधिनियम	2013 अधिनियम
(3) कोई व्यक्ति तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा जब वह, –	(3) कोई व्यक्ति, तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा, जब वह, –
(क) केन्द्रीय या राज्य सरकार के अधीन समूह 'क' का पद या उसके समतुल्य पद कम से कम पन्द्रह वर्ष तक धारण करता रहा हो जिसमें से उस सेवा में ज्येष्ठ प्रशासनिक श्रेणी में कम से कम तीन वर्ष की सेवा भारतीय कंपनी विधि सेवा (लेखा शाखा) के सदस्य के रूप में की हो ; या	(क) भारतीय कारपोरेट विधिक सेवा या भारतीय विधिक सेवा का कम से कम पंद्रह वर्ष तक सदस्य रहा हो, जिसमें से कम से कम तीन वर्ष की सेवा भारत सरकार के संयुक्त सचिव या समतुल्य या उससे उस सेवा से ऊपर के वेतनमान में होगी ; या
(ख) केन्द्रीय कर्मचारिवृन्द स्कीम के अधीन भारत सरकार के संयुक्त सचिव के रूप में या केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन कोई अन्य पद कम से कम पांच	(ख) चार्टर्ड अकाउंटेंट के रूप में कम से कम पन्द्रह वर्ष व्यवसाय किया है या कर रहा है ; या

वर्ष तक धारण करता रहा हो या कर रहा हो जिसका वेतनमान भारत सरकार के संयुक्त सचिव के वेतनमान से कम न हो और जिसे कंपनी विधि से संबंधित समस्याओं के निपटाने का पर्याप्त ज्ञान और अनुभव हो; या	
(ग) चार्टर्ड अकाउंटेंट अधिनियम, 1949 (1949 का 38) के अधीन चार्टर्ड अकाउंटेंट के रूप में कम से कम पन्द्रह वर्ष से व्यवसाय में हो या रहा हो ; या	(ग) लागत अकाउंटेंट के रूप में कम से कम पन्द्रह वर्ष व्यवसाय किया है या कर रहा है ; या
(घ) लागत और संकर्म लेखापाल अधिनियम, 1959 (1959 का 23) के अधीन लागत लेखापाल के रूप में कम से कम पन्द्रह वर्ष से व्यवसाय में हो या रहा हो ; या	(घ) कंपनी सचिव के रूप में कम से कम पन्द्रह वर्ष व्यवसाय किया है या कर रहा है ; या
	(ङ) ऐसा व्यक्ति हो, जिसको विधि, वित्त, औद्योगिक प्रबंध या प्रशासन, पुनर्निर्माण, विनिधान लेखाकर्म, अर्थशास्त्र, श्रम मामलों या प्रबंध से संबद्ध ऐसी अन्य विद्याशाखाओं, कंपनियों के कार्यकलापों का संचालन, उनके पुनरुद्धार और पुनरुज्जीवन और परिसमापन में योग्यता, निष्ठा और विशेष ज्ञान हो तथा पंद्रह

	वर्ष से अन्यून का अनुभव हो ;
	(च) औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अधीन गठित श्रम न्यायालय या अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण का कम से कम पांच वर्ष तक पीठासीन अधिकारी है या रहा है ।
(2)10चद **10चद.** अपील अधिकरण का गठन – (1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई के लिए, उस तारीख से जो उसमें विनिर्दिष्ट की जाए, राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण के नाम से ज्ञात अपील अधिकरण का गठन करेगी जो एक अध्यक्ष और दो से अनधिक ऐसे सदस्यों से मिलकर बनेगा, जिसकी नियुक्ति उस सरकार द्वारा की जाएगी ।	**(2) धारा 411(3)** **411(3).** तकनीकी सदस्य, वह व्यक्ति होगा जो विधि, वित्त, बैंककारी, प्रबंध, औद्योगिक प्रशासन, अर्थशास्त्र, श्रम मामलों में कंपनियों के प्रबंध कार्यकलापों के संचालन, पुनरुद्धार, पुनरुज्जीवन या परिसमापन से संबद्ध अन्य विद्याशाखाओं में योग्यता, निष्ठा और विशेष ज्ञान का कम से कम पच्चीस वर्ष से कम का अनुभव न हो ।
(2) अपील अधिकरण का अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होगा जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति रहा है ।	

(3) अपील अधिकरण का कोई सदस्य योग्यता, सत्यनिष्ठा और प्रतिष्ठा वाला ऐसा व्यक्ति होगा जिसे विज्ञान, प्रौद्योगिकी, अर्थशास्त्र, बैंककारी, उद्योग, विधि, श्रम संबंधी विषयों, औद्योगिक वित्त, औद्योगिक प्रबंध, औद्योगिक पुनर्निर्माण, प्रशासन, विनिधान, लेखा-कर्म, विपणन में विशेष ज्ञान और कम से कम पच्चीस वर्ष का वृत्तिक अनुभव हो, या किसी ऐसे अन्य विषय का विशेष ज्ञान या वृत्तिक अनुभव हो, जो केन्द्रीय सरकार की राय में अपील अधिकरण के लिए उपयोगी होगा ।	

20. यह इंगित किया गया कि 2010 निर्णय में, संविधान पीठ ने यह मत व्यक्त किया कि चूंकि एन. सी. एल. टी. अब कार्य कर रहा है जो उच्च न्यायालय द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ किया जा रहा है, इसलिए एन. सी. एल. टी./एन. सी. एल. ए. टी. के तकनीकी सदस्यों का चयन केवल उन अधिकारियों में से किया जाए जो सचिव या अपर सचिव की पंक्ति धारित करते हैं और जिनके पास तकनीकी विशेषज्ञता है । न्यायालय द्वारा निम्नलिखित पैराग्राफों में इन पहलुओं पर चर्चा की गई है :–

> 108. विधान-मंडल से यह उपधारणा की जाती है कि वह विधिसम्मत शासन के प्रतिकूल विधान न बनाए और इसलिए उसे इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि कहां विवादों का न्यायनिर्णयन न्यायालयों से भिन्न किसी न्यायिक निकाय द्वारा किया जाना है, उसके स्तर लगभग वैसे ही होने चाहिए जिसकी प्रत्याशा मुख्यधारा वाली न्यायपालिका से की जाती है । विधिसम्मत शासन केवल तभी अर्थपूर्ण हो सकता है जब न्याय करने के लिए एक स्वाधीन और

निष्पक्ष न्यायपालिका हो । कोई स्वाधीन न्यायपालिका केवल तभी विद्यमान हो सकती है जब न्यायिक संस्थाओं में निर्दोष आचरण वाले सक्षम, योग्य और स्वाधीन व्यक्ति हों । जब विधान-मंडल उच्च न्यायालय के स्थान पर ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए, जिसका प्रयोग उच्च न्यायालय कर रहा है, अधिकरण प्रतिस्थापित करने की प्रस्थापना करता है तो यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अधिकरण के न्यायिक सदस्यों से जिस स्तरमान की प्रत्याशा की जाती है और ऐसे सदस्यों को नियुक्त करने के लिए जो मानदंड लागू किए जाते हैं वे यथासंभव निकटतम रूप में वही होने चाहिए जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के हैं जो कि विधि में मूल डिग्री के अलावा विधि-व्यवसाय करने का अच्छा अनुभव, स्वतंत्र दृष्टिकोण, सत्यनिष्ठा, आचरण और अच्छी ख्याति हैं । इसमें यह भी विवक्षित है कि ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति ही, जिन्हें उस क्षेत्र में, जिससे अधिकरण संबंधित है, विशेष विशेषज्ञता प्राप्त है, तकनीकी सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र होंगे । अतः, केवल न्यायिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों, अर्थात्, उन व्यक्तियों के संबंध में, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहे हैं या हैं और विहित अनुभव वाले वकील, जो कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र हैं, न्यायिक सदस्यों की नियुक्ति के लिए विचार किया जा सकता है ।

109. प्रशासन में जीवनभर का अनुभव सिविल सेवा के किसी सदस्य को अच्छा और योग्य प्रशासक बना सकता है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह न्यायिक चित्त वाला ऐसा अच्छा, योग्य और निष्पक्ष अधिनिर्णायक बन सके जो ऐसे विनिश्चय करने में सक्षम हो जिनमें (i) पक्षकारों को विनिश्चय के कारणों के बारे में बताना होता है ; (ii) विनिश्चय की ऋजुता और शुद्धता तथा मनमानेपन का अभाव प्रदर्शित करना होता है ; और (iii) यह सुनिश्चित करना होता है कि न केवल न्याय किया गया है बल्कि ऐसा प्रतीत भी होता है कि न्याय किया गया है ।

* * * *

111. जहां तक तकनीकी सदस्यों का संबंध है, अधिकारी कम से कम सचिव स्तर का होना चाहिए और उसकी सक्षमता और सत्यनिष्ठा सुज्ञात हो । नियुक्ति के लिए मानदंडों या अर्हताओं को कम करने के परिणामस्वरूप अधिकरणों में विश्वसनीयता की हानि

होगी । हम यह जोड़ने की जल्दबाजी करते हैं कि हमारा आशय यह कहना नहीं है कि संयुक्त सचिव स्तर के व्यक्ति सक्षम नहीं हैं । अवर सचिव स्तर के व्यक्ति भी कृत्यों का निर्वहन करने में सक्षम हो सकते हैं । अनुभाग अधिकारियों या उच्च श्रेणी लिपिकों के रूप में काम करने वाले प्रतिभाशाली और सक्षम लोग हो सकते हैं किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उन्हें सदस्यों के रूप में नियुक्त किया जा सकता है । सक्षमता पद के लिए अपेक्षित अनुभव, परिपक्वता और प्रास्थिति से भिन्न है । उदाहरणार्थ, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद के लिए अधिवक्ता के रूप में 10 वर्ष का अनुभव विहित है । ऐसे अधिवक्ता हो सकते हैं जो 4 या 5 वर्ष के अनुभव के साथ 10 वर्ष के अनुभव वाले अधिवक्ताओं से अधिक प्रतिभाशाली हों । फिर भी, न केवल सक्षमता बल्कि विभिन्न अन्य कारक किसी व्यक्ति को उपयुक्त बनाते हैं । इसलिए, जब विधान-मंडल उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को अधिकरण के सदस्यों के स्थान पर रखता है तब लागू मानदंड उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के यथासंभव समान होने चाहिए । इसका अभिप्राय यह है कि केवल सचिव स्तर के ऐसे अधिकारी (अर्थात्, जो सचिव या अपर सचिव थे) जिनके पास विशेषज्ञीय ज्ञान या कौशल है, अधिकरण के तकनीकी सदस्यों के रूप में नियुक्त किए जा सकते हैं ।

* * * *

118. कंपनी अधिनियम के भाग 1ग और 1घ में कंपनी मामलों को न्यायालयों से अधिकरणों को अंतरित करना प्रस्थापित है जिसमें एक "न्यायिक सदस्य" और एक "तकनीकी सदस्य" विवादों का विनिश्चय करेगा । यदि सदस्यों का चयन इस प्रकार किया जाता है जैसा कि धारा 10चघ में अनुध्यात है तो इस बात की पूरी संभावना है कि अधिकांश सदस्यों के पास, जिसमें तथाकथित "न्यायिक सदस्य" भी हैं, कोई न्यायिक अनुभव या कंपनी विधि अनुभव न हो ऐसे सदस्यों से तथ्य और विधि संबंधी जटिल विवाद्यकों पर कार्यवाही करने और उन्हें विनिश्चित करने की अपेक्षा की जाए । यह विनिश्चित करना विधान-मंडल का कर्तव्य है कि अधिकरणों में केवल न्यायिक सदस्य होने चाहिए या न्यायिक और तकनीकी सदस्यों का संयोजन होना चाहिए । किन्तु यदि तकनीकी सदस्य होने चाहिए तो वे ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जिन्हें कंपनी विधि या सहबद्ध विषयों में सुविज्ञता प्राप्त हो और मात्र सिविल सेवा में अनुभव को कंपनी विधि में

तकनीकी सुविज्ञता के रूप में नहीं माना जा सकता है । धारा 10चघ की उपधारा 2(ग) और (घ) तथा उपधारा 3(क) और (ख) के अंतर्गत आने वाले अभ्यर्थियों के पास कंपनी मामलों को विनिश्चित करने का कोई अनुभव या सुविज्ञता प्राप्त नहीं है ।

119. इस संबंध में एक गलत धारणा है कि कंपनी विधि संबंधी मामलों में कतिपय विशेषज्ञीय कुशलता अपेक्षित होती है जो कि न्यायाधीशों में नहीं होती । समान रूप से यह भी गलत धारणा है कि सिविल सेवाओं के सदस्यों के पास (ऐसे समूह-क अधिकारी या संयुक्त सचिव स्तर के सिविल सेवक, जिन्होंने कभी भी किसी कंपनी विवाद के संबंध में कार्यवाही नहीं की है) न्यायिक अनुभव या कंपनी विधि में विशेषज्ञता होगी जिसके कारण उन्हें या तो न्यायिक सदस्य या तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्त किया जा सके । न ही ऐसे व्यक्तियों को, जिनके पास विज्ञान, प्रौद्योगिकी, औषध-विज्ञान, बैंककारी उद्योग में पन्द्रह वर्ष का अनुभव है, तकनीकी सदस्यों के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए कंपनी विधि में विशेषज्ञ माना जा सकता है । तकनीकी सदस्यों के रूप में विशेषज्ञ रखने की पद्धति उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त नहीं है जिनमें वृत्तिक विशेषज्ञों, औषध-विज्ञान, इंजीनियरिंग और वास्तुकला, इत्यादि में अर्हताप्राप्त व्यक्तियों की सहायता अपेक्षित होती है ।

21. पूर्वोक्त विचार-विमर्श के आधार पर 1956 अधिनियम के भाग 1ग और 1घ जैसा वे विद्यमान थे, को अविधिमान्य माना गया और इन उपबंधों को संवैधानिकता के परिधि के भीतर लाने के लिए न्यायालय ने उन सुधारों को इंगित किया जो इन विसंगतियों को दूर करने के लिए किया जाना अपेक्षित था । निर्णय का पैरा 120 प्रस्तुत मुद्दे का उत्तर देने के लिए बहुत सुसंगत है अतः हम उक्त पैरे को संपूर्ण रूप से दोहराते हैं :–

120. अब हम अधिनियम के भाग 1ख और 1ग में पाई जाने वाली त्रुटियों को सारणीबद्ध करेंगे –

(i) अधिकरण के न्यायिक सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए केवल न्यायाधीशों और अधिवक्ताओं के संबंध में विचार किया जा सकता है । केवल उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों या ऐसे न्यायाधीश, जिन्होंने कम से कम पांच वर्ष तक जिला न्यायाधीश की पंक्ति में सेवा की है या ऐसे व्यक्ति के संबंध में,

जिसने दस वर्ष के लिए वकील के रूप में व्यवसाय किया है, न्यायिक सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए विचार किया जा सकता है । ऐसे व्यक्तियों के संबंध में, जिन्होंने केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के अधीन समूह 'क' या समतुल्य पद धारण किया है और जिनके पास भारतीय कंपनी विधि सेवा (विधि शाखा) और भारतीय विधि सेवा (श्रेणी-I) में अनुभव है, न्यायिक सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए विचार नहीं किया जा सकता है, जैसा कि धारा 10चघ की उपधारा 2(ग) और (घ) में उपबंधित है । कंपनी विधि सेवा या भारतीय विधि सेवा में सुविज्ञता उन्हें अधिक से अधिक तकनीकी सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए विचार किए जाने हेतु समर्थ बनाएगी ।

(ii) चूंकि राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण उच्च न्यायालय के कृत्यों को ग्रहण करता है इसलिए उसके सदस्य यथासंभव निकटतम रूप से उसी स्थिति और हैसियत के होने चाहिए जैसे कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होते हैं । उन सदस्यों को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के वेतन और परिलब्धियां देकर इसकी पूर्ति नहीं की जा सकती है बल्कि यह सुनिश्चित करके की जा सकती है कि उन व्यक्तियों को सदस्यों के रूप में नियुक्त किया जाए जो पंक्ति, अनुभव या सक्षमता में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के यथासंभव समान हैं । इसलिए, केवल उन अधिकारियों के संबंध में, जो सचिवों या अपर सचिवों की पंक्ति धारण किए हुए हैं, राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण के तकनीकी सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए विचार किया जा सकता है । धारा 10चघ की उपधारा (2) के खंड (ग) और (घ) और उपधारा (3) के खंड (क) और (ख), जिनमें यह उपबंध है कि समूह 'क' पद में पन्द्रह वर्ष का अनुभव रखने वाले व्यक्ति या ऐसे व्यक्ति जो केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार में संयुक्त सचिव का पद या समतुल्य पद धारण किए हुए हैं, अधिकरण के सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हित है, अविधिमान्य है ।

(iii) किसी 'तकनीकी सदस्य' से उस क्षेत्र में अनुभव होने की पूर्वकल्पना की जाती है जिससे अधिकरण संबंधित है ।

भारतीय कंपनी विधि सेवा के ऐसे सदस्य को, जिसने लेखा शाखा में कार्य किया है या अन्य विभागों के ऐसे अधिकारियों को, जिन्होंने हो सकता है कि आनुषंगिक रूप से कंपनी विधि के किसी पहलू के संबंध में कार्यवाही की हो, तकनीकी सदस्यों के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए अर्हित 'विशेषज्ञ' के रूप में नहीं समझा जा सकता है । अतः, उपधारा (3) का खंड (क) और (ख) विधिमान्य नहीं हैं ।

(iv) उपधारा (3) के खंड (च) का प्रथम भाग, जिसमें यह उपबंध है कि ऐसा व्यक्ति, जिसे विज्ञान, प्रौद्योगिकी, अर्थशास्त्र, बैंककारी, उद्योग का विशेष ज्ञान है और पन्द्रह वर्ष का वृत्तिक अनुभव है, कंपनी विधि अधिकरण में तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए कंपनी विधि में सुविज्ञता रखने वाला व्यक्ति समझा जा सकता है, अविधिमान्य है ।

(v) तथापि, योग्यता, सत्यनिष्ठा, प्रतिष्ठा और विशेष ज्ञान वाले ऐसे व्यक्ति, जिनके पास औद्योगिक वित्त, औद्योगिक प्रबंध, औद्योगिक पुनर्निर्माण, विनिधान और लेखाकर्म में कम से कम पन्द्रह वर्ष का वृत्तिक अनुभव है, ऐसे व्यक्ति समझे जा सकते हैं जो कंपनियों के सुधार/पुनः प्रवर्तन में सुविज्ञता प्राप्त हैं और इसलिए वे तकनीकी सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के पात्र हैं ।

(vi) जहां तक उपधारा (3) के खंड (छ) में निर्दिष्ट प्रवर्ग के व्यक्तियों का संबंध है, कम से कम पांच वर्ष का अनुभव विनिर्दिष्ट किया जाना चाहिए ।

(vii) धारा 10चघ की उपधारा (3) के केवल खंड (ग), (घ), (ङ), (छ), (ज) और खंड (च) का पश्चात्वर्ती भाग और भारतीय कंपनी विधि सेवा और भारतीय विधि सेवा में सचिव या अपर सचिव के रैंक के सिविल सेवा के अधिकारियों के संबंध में अधिकरण के तकनीकी सदस्यों के रूप में नियुक्ति के प्रयोजनों के लिए विचार किया जा सकता है ।

(viii) धारा 10चभ में उल्लिखित पांच सदस्यीय चयन समिति की बजाय, जिसमें भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (या उसका नामनिर्देशिती) अध्यक्ष और वित्त और कंपनी कार्य मंत्रालय से दो

सचिव और श्रम मंत्रालय में सचिव और विधि और न्याय मंत्रालय में सचिव सदस्य हैं, चयन समिति व्यापक रूप से निम्नलिखित रूप में होनी चाहिए :–

(क) भारत का मुख्य न्यायमूर्ति या उसका नामनिर्देशिती (निर्णायक मत सहित) ; – अध्यक्ष

(ख) उच्च न्यायालय का एक ज्येष्ठ न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति ; – सदस्य

(ग) वित्त और कंपनी कार्य मंत्रालय में सचिव और ; – सदस्य

(घ) विधि और न्याय मंत्रालय में सचिव – सदस्य ।

(ix) तीन वर्ष की पदावधि सात या पांच वर्ष की अवधि में परिवर्तित की जाएगी जो कि एक और अवधि के लिए नियुक्ति हेतु पात्रता के अध्यधीन होगी । ऐसा इस कारण से होता है कि संबंधित क्षेत्र में सुविज्ञता प्राप्त करने के लिए पर्याप्त समय अपेक्षित होता है । तीन वर्ष की अवधि बहुत कम है और जब तक सदस्य अपेक्षित ज्ञान, सुविज्ञता और दक्षता प्राप्त करते हैं, तब तक एक अवधि समाप्त हो जाएगी । इसके अलावा, 65 वर्ष की सेवानिवृत्ति की आयु सहित तीन वर्ष की उक्त अवधि इसलिए बोधगम्य समझी गई क्योंकि वह ऐसे व्यक्तियों के तद्नुकूल थी जो सेवानिवृत्त हो गए हैं या शीघ्र ही सेवानिवृत्त होने वाले हैं और यह इन अधिकरणों को सेवानिवृत्ति-पश्चात् आश्रय के रूप में माने जाने के लिए बढ़ावा देती है । यदि इन अधिकरणों को प्रभावी रूप से और दक्षतापूर्वक कृत्य करना हैं तो ये युवा सदस्यों को आकर्षित करने में समर्थ होने चाहिए जिनके पास युक्तियुक्त सेवाकाल होगा ।

(x) धारा 10चङ का दूसरा परन्तुक, जो कि अध्यक्ष और सदस्यों को अध्यक्ष या सदस्यों के रूप में पद धारण करते समय अपने मूल काडर/मंत्रालय/विभाग में धारणाधिकार प्रतिधारित करने में समर्थ बनाता है, सदस्यों की स्वाधीनता के लिए साधक

नहीं होगा । सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया प्रत्येक सदस्य अपने आप को कार्यपालिका से पूर्णतः असहबद्ध करने के लिए तैयार होना चाहिए । अतः धारणाधिकार एक वर्ष की अवधि से अधिक नहीं हो सकता है ।

(xi) सेवा की स्वाधीनता और सुरक्षा बनाए रखने के लिए धारा 10चञ की उपधारा (3) और धारा 10चफ में यह उपबंध होना चाहिए कि किसी अधिकरण के अध्यक्ष या सदस्य का निलंबन केवल भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से हो सकता है ।

(xii) सभी अधिकरणों के लिए प्राधिकारपूर्ण समर्थन विधि और न्याय मंत्रालय से होना चाहिए । न तो अधिकरण और न ही उसके सदस्य अपने-अपने प्रवर्तक या मूल मंत्रालयों या संबंधित विभाग से सुविधाओं की ईप्सा करेंगे और न ही उन्हें वे प्रदान की जाएंगी ।

(xiii) अधिकरण की दो-सदस्यीय न्यायपीठों में सदैव एक न्यायिक सदस्य होना चाहिए । जब कभी किन्हीं बृहत्तर या विशेष न्यायपीठों का गठन किया जाए तो तकनीकी सदस्यों की संख्या न्यायिक सदस्यों की संख्या से अधिक नहीं होगी ।

22. पैरा 120 का परिशीलन करने पर विशेषकर इसका उप-पैरा (ii) पढ़ने से यह प्रकट होता है कि केवल ऐसे अधिकारी जो सचिव या अपर सचिव की पंक्ति धारित करते हैं, एन. सी. एल. टी. के तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए विचार किए जाएंगे । धारा 10चघ की उपधारा (2) के खंड (ग) और (घ) तथा उपधारा (3) के खंड (क) और (ख) के उपबंध जो कतिपय अनुभव वाले संयुक्त सचिवों को पात्र बनाते हैं, को विनिर्दिष्टतः अविधिमान्य घोषित किया गया था । इसके होते हुए भी, 2013 अधिनियम की धारा 409(3) पुनः भारत सरकार के संयुक्त सचिव या समतुल्य अधिकारी को नियुक्ति का पात्र बनाती है यदि वह भारतीय कारपोरेट विधि सेवा या भारतीय विधिक सेवा के सदस्य के रूप में पंद्रह वर्ष का अनुभव रखता है जिसमें से कम से कम तीन वर्ष का अनुभव संयुक्त सचिव के वेतनमान में होना चाहिए । यह स्पष्टतः 2010 के निर्णय में सुनाए गए विनिश्चय का सार है ।

23. प्रति-शपथपत्र में प्रत्यर्थियों ने यह कहते हुए इस उपबंध को

न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया कि यह परिवर्तन भारतीय कारपोरेट विधि सेवा में अपर सचिव स्तर के अधिकारियों की उपलब्धता की कमी के कारण किया गया था । आगे यह उल्लेख किया गया है कि कार्यतः अपर सचिव और संयुक्त सचिव का स्तर समान है । इन अधिकारियों के पास कंपनियों के प्रचालनों और कार्यकरण से संबंधित विशिष्ट मुद्दों की जानकारी है और कंपनी ला में उनकी विशेषज्ञता है जो एन. सी. एल. टी. के फायदे के लिए प्रत्याशित है । 2010 के निर्णय के स्पष्ट अधिदेश को ध्यान में रखते हुए ऐसा स्पष्टीकरण वैधतः मान्य नहीं है ।

हम यह इंगित करना चाहते हैं कि सचिव और अपर सचिव के ऐसे पदों के लिए विचारार्थ सीमित करने के लिए अन्य कारणों के अलावा न्यायालय के पास एक बहुत बाध्यकारी कारक है अर्थात् न्यायपालिका की स्वाधीनता का धीरे-धीरे ह्रास जिसे चिंता का विषय माना गया है । इस पहलू को ऐसे मामलों जिसका विनिश्चय उच्च न्यायालय द्वारा पहले किया जाता था, के विनिश्चय के लिए व्यक्तियों के लिए विहित स्तर और अर्हताओं का धीरे-धीरे अपघटन कर कतिपय अधिनियमितियों में विनिर्दिष्ट उदाहरण प्रदर्शित किए गए । इस प्रकार हम उस चर्चा को दोहराना उचित समझते हैं कि जो प्रत्यर्थियों द्वारा उठाए गए पूर्वोक्त का संपूर्ण उत्तर उपलब्ध कराता है । उक्त चर्चा के पैरा 112 और इसके उप-पैराओं की बातें इस प्रकार हैं :–

> "112. जिस बात की चिन्ता है वह यह है कि न्यायपालिका की स्वाधीनता का धीरे-धीरे क्षय हो रहा है और न्यायपालिका द्वारा अधिकृत स्थान संकुचित हो रहा है और सिविल सेवा के ऐसे व्यक्तियों की संख्या में क्रमिक वृद्धि हो रही है जो ऐसे कृत्यों का निर्वहन और ऐसी अधिकारिता का प्रयोग कर रहे हैं जिसका प्रयोग इससे पूर्व उच्च न्यायालय द्वारा किया जाता था । ऐसे मामलों को विनिश्चित करने के लिए, जो कि इससे पहले उच्च न्यायालयों द्वारा विनिश्चित किए जा रहे थे, व्यक्तियों के लिए विहित मानदंड और अर्हता में भी धीरे-धीरे कमी आ गई है । अब हम इसका अवलोकन करेंगे ।
>
> 112.1 प्रारंभ में, उच्च न्यायालय सिविल, दांडिक और कर संबंधी मामलों में अपीलों और पुनरीक्षणों से संबंधित अधिकारिता के अतिरिक्त (और कुछ उच्च न्यायालयों में मूल सिविल अधिकारिता), दो महत्वपूर्ण क्षेत्रों में मूल अधिकारिता का प्रयोग कर रहे थे ; जिनमें

से एक अधिकारिता अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 227 के अधीन रिट अधिकारिता है (जिसमें सेवा संबंधी मामलों में मूल अधिकारिता भी है) और दूसरी अधिकारिता कंपनी संबंधी मामलों की बाबत है ।

112.2 प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अधीन प्रशासनिक अधिकरणों के गठन के पश्चात्, सेवा विषयक मामलों से संबंधित मूल अधिकारिता के संबंध में अधिकारिता उच्च न्यायालयों से प्रशासनिक अधिकरणों को अंतरित कर दी गई थी । उक्त अधिनियम की धारा 6 अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हताओं के संबंध में है और उससे यह प्रकट होता है कि अध्यक्ष किसी उच्च न्यायालय का या तो आसीन न्यायाधीश या पूर्व न्यायाधीश होना चाहिए । न्यायिक सदस्य के लिए अर्हता यह थी कि वह किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होना चाहिए या उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनने के लिए अर्हित होना चाहिए (अर्थात्, उच्च न्यायालय का ऐसा अधिवक्ता जिसने दस वर्ष तक विधि-व्यवसाय किया है या जिसने दस वर्ष तक न्यायिक पद धारण किया है) या ऐसा व्यक्ति जिसने दो वर्ष की अवधि के लिए भारत सरकार के विधि कार्य विभाग में या विधायी विभाग में सचिव या भारत के विधि आयोग में सदस्य-सचिव का पद धारण किया है; या पांच वर्ष की अवधि के लिए भारत सरकार के विधि कार्य विभाग या विधायी विभाग में अपर सचिव का पद धारण किया है ।

112.3 प्रशासनिक सदस्य के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए अर्हता यह थी कि अभ्यर्थी ने भारत सरकार के सचिव के रूप में या केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के किसी ऐसे अन्य पद पर, जिसका वेतनमान भारत सरकार के सचिव के वेतनमान से कम नहीं है, कम से कम दो वर्ष सेवा की हो, या कम से कम पांच वर्ष की अवधि के लिए भारत सरकार के अपर सचिव का पद या केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार का कोई ऐसा अन्य पद धारण किया हो जिसका वेतनमान भारत सरकार के अपर सचिव के वेतनमान से कम नहीं है । दूसरे शब्दों में, उन मामलों को, जिनका विनिश्चय उच्च न्यायालयों द्वारा किया जाता था, किसी ऐसे अधिकरण द्वारा विनिश्चित किया जा सकता है जिसमें सचिव स्तर के ऐसे दो अधिकारी, जिनके पास दो वर्ष का अनुभव है या अपर सचिव स्तर के भी ऐसे दो अधिकारी, जिनके पास पांच वर्ष का अनुभव है, सदस्य हो सकते थे । यह पहला न्यूनीकरण था ।

112.4 सदस्यों के लिए पांच वर्ष की पदावधि का उपबंध किया गया था और वे 65 वर्ष की आयु तक पद धारण कर सकते थे और इन सदस्यों के वेतन और अन्य परिलब्धियां वही रखी गई थीं जो उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की थीं । इससे भी यह टिप्पणी करने का अवसर पैदा हुआ कि ये पद वस्तुतः कार्यपालिका के सदस्यों की सेवावधि को उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को लागू उच्चतर वेतनमान पर 60 वर्ष से 65 वर्ष तक करने, अर्थात् पांच वर्ष बढ़ाने के लिए आराम के पद के रूप में सृजित किए गए थे । अतः, कार्यपालिका के कुछेक सदस्य ही "न्यायिक कृत्यों का प्रयोग करने वाले अधिकरणों" के सदस्य बने ।

112.5 आगे हम सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 के प्रतिनिर्देश कर सकते हैं जिसमें एकल सदस्यीय साइबर अपील अधिकरण स्थापित करने का उपबंध था । उस अधिनियम की धारा 50 में यह उपबंध है कि ऐसा व्यक्ति, जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है या होने के लिए अर्हित है या ऐसा व्यक्ति, जो भारतीय विधि सेवा का सदस्य है या रहा है और उस सेवा की श्रेणी-I में कम से कम तीन वर्ष तक कोई पद धारण किए हुए है या धारण किया है, पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जा सकता है । अर्थात्, सचिव स्तर के अधिकारी की अपेक्षा भी समाप्त हो गई है । भारतीय विधि सेवा का कोई भी सदस्य, जो तीन वर्ष से श्रेणी-I पद धारण किए हुए है, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के स्थान पर रखा जा सकता है ।

112.6 अगला न्यूनीकरण तारीख 1 अप्रैल, 2003 से कंपनी अधिनियम, 1956 में अध्याय 1ख के अंतःस्थापन द्वारा किया गया है जिसमें राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण का गठन करने का उपबंध है जिसमें एक अध्यक्ष और काफी संख्या में न्यायिक और तकनीकी सदस्य (अधिकतम 62) हैं । राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण के, जो कि उच्च न्यायालय का प्रतिस्थानी है, परिसमापन संबंधी मामलों और अन्य मामलों की सुनवाई के लिए, जिनकी सुनवाई पहले उच्च न्यायालय द्वारा की जाती थी, सदस्यों के लिए अर्हताओं का भी न्यूनीकरण किया गया है । यह आवश्यक नहीं है कि कोई सदस्य सचिव या अपर सचिव स्तर का कोई अधिकारी भी हो । संयुक्त सचिव स्तर के सभी सिविल सेवक (जो कि पांच वर्ष से भारत सरकार के अधीन कार्य कर रहे हैं या केन्द्रीय सरकार और राज्य

सरकार के अधीन ऐसा पद धारण किए हुए हैं जिसका वेतनमान भारत सरकार के संयुक्त सचिव के वेतनमान से कम नहीं है) पात्र हैं । इसके अलावा, ऐसा कोई व्यक्ति जिसने 15 वर्ष तक समूह-क पद धारण किया है (इसका अभिप्राय यह है कि भारतीय डाक-तार लेखा और वित्त सेवा, भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा सेवा, भारतीय सीमा-शुल्क और केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क सेवा, भारतीय रक्षा लेखा सेवा, भारतीय राजस्व सेवा, भारतीय आर्डनेंस कारखाना सेवा, भारतीय डाक सेवा, भारतीय सिविल लेखा सेवा, भारतीय रेल यातायात सेवा, भारतीय रेल लेखा सेवा, भारतीय रेल वैयक्तिक सेवा, भारतीय रक्षा संपदा सेवा, भारतीय सूचना सेवा, भारतीय व्यापार सेवाओं या अन्य केन्द्रीय या राज्य सेवा का कोई भी व्यक्ति) जिसने भारतीय कंपनी विधि सेवा (लेखा) शाखा के सदस्य के रूप में तीन वर्ष सेवा की है या जिसने कंपनी विधि से संबंधित किसी समस्या के संबंध में कार्यवाही की है, सदस्य बन सकता है । इसका अर्थ यह है कि वे मामले जिनका विनिश्चय उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा किया जा रहा था, सिविल सेवा के दो सदस्यों द्वारा विनिश्चित किए जा सकते हैं - संयुक्त सचिव स्तर के अधिकारी या 15 वर्ष तक समूह "क" पद या समतुल्य पद धारण करने वाले अधिकारी अब उच्च न्यायालय के कृत्यों का निर्वहन कर सकते हैं । पुनः इस कारण भी यह टिप्पणी करने की गुंजाइश पैदा हुई कि विहित अर्हताएं तद्नुकूल बनाई गई हैं जिससे कि अधिकांश संयुक्त सचिव स्तर के अधिकारियों या ऐसे अधिकारियों के लिए, जो समूह "क" वाले पद धारण किए हुए हैं, न्यायिक कृत्यों का प्रयोग करते हुए अधिकरणों में 65 वर्ष तक सेवा करने के लिए आराम के पदों का उपबंध किया जा सके ।

112.7 मानदंडों का न्यूनीकरण यहां समाप्त नहीं होता है । प्रस्तावित कंपनी विधेयक, 2008 में यह अनुध्यात है कि भारतीय विधि सेवा या भारतीय कंपनी विधि सेवा (विधिक शाखा) का ऐसा कोई सदस्य जिसने केवल दस वर्ष की सेवा की है, जिसमें से तीन वर्ष की सेवा संयुक्त सचिव के वेतनमान में होनी चाहिए, न्यायिक सदस्य के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए अर्हित है । जिस गति से सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हताओं का न्यूनीकरण किया जा रहा है, वह कम से कम न्यायपालिका की स्वाधीनता के लिए बहुत बड़ी चिन्ता का विषय है ।"

24. 2010 निर्णय के पूर्वोक्त स्पष्ट और सुनिश्चित आदेश को ध्यान में रखते हुए उससे छेड़छाड़ करना ऐसे मानक से समझौता करने की संभावना प्रकट होगा जो 2010 निर्णय से प्राप्त करने के बजाय इतने उत्साहपूर्वक अर्जित करने की ईप्सा की गई थी । इस प्रकार हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि धारा 409(3)(क) और (ग) अविधिमान्य है क्योंकि ये उपबंध उन्हीं दोष से ग्रस्त हैं । इसी प्रकार धारा 411(3) की भाषा जो तकनीकी सदस्यों के अर्हताओं का उपबंध करते हैं, को भी अविधिमान्य ठहराया जाता है । एन. सी. एल. टी. के तकनीकी सदस्यों की नियुक्ति के लिए 2010 निर्णय के पैरा 120 के उप-पैरा (ii), (iii), (iv), (v) के निदेशों का ईमानदारी से पालन किया जाएगा और उसमें अंतर्विष्ट खामियों को ठीक करने के लिए धारा 409(3) में ये सुधार किए जाने अपेक्षित हैं । हम तदनुसार मुद्दा सं. 2 का निपटान करते हुए यह आदेश देते हैं ।

मुद्दा संख्या 3

25. यह मुद्दा एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. के सदस्यों के चयन के लिए चयन समिति के गठन से संबंधित है । इस बाबत उपबंध 2013 अधिनियम की धारा 412 में है । उसकी उपधारा (2) चयन समिति का उपबंध करती है जो निम्नलिखित से मिलकर बनेगी :–

(क) भारत का मुख्य न्यायमूर्ति या उसका नामनिर्देशिती – अध्यक्ष;

(ख) उच्चतम न्यायालय का ज्येष्ठ न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति – सदस्य;

(ग) कारपोरेट कार्य मंत्रालय का सचिव – सदस्य;

(घ) विधि और न्याय मंत्रालय का सचिव – सदस्य;

(ङ) वित्त मंत्रालय के वित्तीय सेवा विभाग का सचिव – सदस्य ।

इस बाबत उपबंध जो धारा 10चभ में था की विधिमान्यता को 2010 निर्णय में प्रश्नगत किया गया था जिसका आशय यह था :–

10चभ. चयन समिति – (1) अपील अधिकरण के अध्यक्ष और सदस्य तथा अधिकरण के अध्यक्ष और सदस्य, केन्द्रीय सरकार द्वारा एक चयन समिति की सिफारिशों पर नियुक्त किए जाएंगे, जो निम्नलिखित से मिल कर बनेगी, –

(क) भारत का मुख्य न्यायमूर्ति या उसका नामनिर्देशिती – अध्यक्ष;

(ख) वित्त और कंपनी कार्य मंत्रालय का सचिव – सदस्य;

(ग) श्रम मंत्रालय का सचिव – सदस्य;

(घ) विधि और न्याय मंत्रालय (विधि कार्य विभाग या विधायी विभाग) का सचिव – सदस्य;

(ङ) वित्त और कंपनी कार्य मंत्रालय (कंपनी कार्य विभाग) का सचिव – सदस्य ।

(2) इस अधिनियम से संबंधित केन्द्रीय सरकार के मंत्रालय या विभाग का भारसाधक संयुक्त सचिव, चयन समिति का संयोजक होगा ।

26. चयन समिति की पूर्वोक्त रचना को 2010 निर्णय में संविधान न्यायपीठ ने त्रुटिपूर्ण पाया । न्यायालय ने विनिर्दिष्ट रूप से यह टिप्पणी की कि पांच सदस्यों की चयन समिति के बजाय यह चार सदस्यों की चयन समिति होनी चाहिए और ऐसी समिति की रचना को भी पैरा 120 के निदेश संख्या (viii) में अधिदिष्ट किया गया था और इस उप-पैरा को पुनः नीचे दोहराया जा रहा है :–

> "(viii) पांच सदस्यीय चयन समिति की बजाय, जिसमें भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (या उसका नामनिर्देशिती) अध्यक्ष और वित्त और कंपनी कार्य मंत्रालय से दो सचिव और श्रम मंत्रालय में सचिव और विधि और न्याय मंत्रालय में सचिव सदस्य हैं, चयन समिति व्यापक रूप से निम्नलिखित रूप में होनी चाहिए –
>
> (क) भारत का मुख्य न्यायमूर्ति या उसका नामनिर्देशिती (निर्णायक मत सहित) ; – अध्यक्ष
>
> (ख) उच्च न्यायालय का एक ज्येष्ठ न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति ; – सदस्य
>
> (ग) वित्त और कंपनी कार्य मंत्रालय में सचिव और ; – सदस्य
>
> (घ) विधि और न्याय मंत्रालय में सचिव – सदस्य ।"

27. उपरोक्त के होते हुए भी चयन समिति की संरचना में अंतर है जो 2013 अधिनियम की धारा 412(2) में विहित है । अंतर इस प्रकार के हैं :–

(i) यद्यपि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उसके नामनिर्देशिती को अध्यक्ष के रूप में कार्य करना किंतु उसे निर्णायक मत की शक्ति नहीं दी गई है । यह इस कारण है कि चार सदस्यीय समिति के बजाय आक्षेपित उपबंध में समिति की संरचना पांच सदस्यों की है ।

(ii) इस न्यायालय ने एक ऐसे सदस्य का सुझाव दिया था जो वित्त मंत्रालय या कंपनी कार्य मंत्रालय का सचिव हो सकता है [हम यह इंगित करते हैं कि पैरा 120 के उप-पैरा (viii) के खंड (ग) में अंतर्विष्ट "और" शब्द टंकणीय भूल प्रतीत होता है और इसे "या" पढ़ा जाए अन्यथा इसका कोई अर्थ नहीं निकलता] ।

(iii) अब दोनों मंत्रालयों से अर्थात् कारपोरेट कार्य मंत्रालय और वित्त मंत्रालय प्रत्येक से एक सदस्य शामिल किया गया है । इस संरचना का आशय पांच सदस्यों की चयन समिति बनाना है जिसे 2010 निर्णय में विधिमान्य नहीं पाया गया था । कारण सामान्य है । इन पांच सदस्यों में से, न्यायपालिका से दो सदस्यों की तुलना में प्रशासनिक शाखा/नौकरशाही से तीन हैं जिसका परिणाम प्रशासनिक शाखा के सदस्यों की प्रमुखता होगा, ऐसी स्थिति है जिसे विनिर्दिष्टतः दूर किया गया था ।

2013 अधिनियम की धारा 412(2) में अंतर्विष्ट चयन समिति की संरचना को प्रत्यर्थियों द्वारा यह तर्क देते हुए न्यायोचित ठहराने की ईप्सा की गई है कि 2010 निर्णय में सिफारिश की गई संरचना व्यापक निबंधनों में थी । यह तर्क दिया गया है कि बी. आई. एफ. आर. और ए. ए. आई. एफ. आर. के संनिवेशन को ध्यान में रखते हुए जो वित्तीय सेवा विभाग की प्रशासनिक अधिकारिता में है, डी. एफ. एस. सचिव को शामिल किया गया है । अध्यक्ष को कोई निर्णायक मत नहीं दिया गया है जैसाकि कालांतर से ऐसी समितियों के चयन प्रक्रियाओं को ऐसी रीति से स्पष्ट किया गया है कि सिफारिशें एक मत से हों और कारपोरेट कार्य मंत्रालय ने ऐसी समितियों में मतदान का ऐसा कोई दृष्टांत नहीं है । फिर भी अन्य समरूप कानूनी निकायों/अधिकरणों में भी चयन समिति के अध्यक्ष के

पास 'निर्णायक मत' का उपबंध नहीं है । इसके अतिरिक्त समिति अधिनियम के उपबंध के अनुसार अपनी रूपात्मकताएं स्वयं विनिश्चित करेंगी । इस उपबंध को न्यायोचित ठहराने के लिए भी निम्नलिखित तर्क दिए हैं : (i) चयन समितियों के विचार-विमर्श में संतुलित और स्वस्थ प्रक्रियाएं विकसित की जाएं । अब तक ऐसी समितियों में किसी महत्वपूर्ण असहमति का कोई मामला ज्ञात नहीं हुआ है । (ii) चयन समिति में सुसंगत अनुभव और ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों को रखने का आशय है ।

28. हमारी यह राय है कि यह पुनः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कोई विधिमान्य या विधिक औचित्य गठित नहीं करता कि इस मुद्दे को 2010 निर्णय द्वारा अंतिम रूप दिया गया है जो अब एक बाध्यकारी पूर्व निर्णय और इस प्रकार प्रत्यर्थी को भी सामान्यतः आबद्ध करता है । न्यायपीठ की मस्तिष्क में मुख्य विचार यह था कि यह अध्यक्ष अर्थात् भारत का मुख्य न्यायमूर्ति या उसका नामनिर्देशिती है जिसे निर्णायक मत रखने के अधिकार के साथ चयन के मामले में अंतिम प्राधिकार दिया जाना चाहिए । यह निर्णय का तर्काधार है और ऐसी संरचना उपलब्ध कराने के लिए कारणों की ईप्सा नहीं की गई है । आबद्धकारी पूर्व निर्णय के रूप में इस मुद्दे पर उपलब्ध सभी अतिव्याप्ति आदेश को देखते हुए आक्षेपित उपबंध के माध्यम से प्राप्त किए जाने के लिए ईप्सित किसी शिथिलता की कोई गुंजाइश नहीं है और हम इसे 2010 निर्णय के आज्ञापक आदेश से असंगत पाते हैं अतः हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि 2013 अधिनियम की धारा 412(2) के उपबंध विधिमान्य नहीं हैं और 2010 निर्णय के पैरा 120 के उप-पैरा (viii) के अनुसार इस उपबंध को लाकर खामी को दूर करने का निदेश दिया जाता है ।

29. अब हम याचिका में उठाए गए कुछ अन्य मुद्दों पर विचार करते हैं । श्री दातार द्वारा अस्पष्ट रूप से यह तर्क किया गया था कि अधिनियम की धारा 425 के अधीन एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. को दिए गए अवमान के लिए दंड करने की शक्ति ठीक नहीं है और इसे हटा दिया जाना चाहिए । यह भी तर्क दिया गया कि न्यायपीठ गठित करने हेतु केंद्रीय सरकार को दी गई शक्ति पुनः अननुज्ञेय है क्योंकि ऐसी शक्ति एन. सी. एल. टी. के अध्यक्ष या एन. सी. एल. ए. टी. के सभापति के पास होनी चाहिए । तथापि, हम इन तर्कों में कोई विधिक बल नहीं पाते । हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ये उपबंध संसद् द्वारा अधिनियमित

कानून में अंतर्विष्ट हैं और याची यह इंगित नहीं कर सकता कि कैसे ऐसे उपबंध असंवैधानिक हैं ।

30. पूर्वोक्त चर्चा का परिणाम उपरोक्त वर्णित रीति से भागतः इस रिट याचिका को मंजूर करना है ।

31. समाप्त करने के पूर्व, हम यह उल्लेख करना चाहते हैं कि तारीख 7 मई, 2015 का शपथपत्र प्रत्यर्थियों की ओर से उसमें ऐसे उपायों का उल्लेख करते हुए फाइल किया गया है जो एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. के गठन की तारीख तक उठाए गए थे । यह इंगित किया गया है कि एन. सी. एल. ए. टी. के सभापति के एक पद और सदस्यों के पांच पदों के सृजन का अनुमोदन और एन. सी. एल. टी. के अध्यक्ष और सदस्यों के 62 पदों और एन. सी. एल. टी. तथा एन. सी. एल. ए. टी. दोनों के लिए एक-एक पद रजिस्ट्रार का तथा एन. सी. एल. टी. के सचिव के एक पद के सृजन का अनुमोदन अभिप्राप्त किया गया था और एन. सी. एल. टी. तथा एन. सी. एल. ए. टी. के समर्थक कर्मचारिवृंद के 246 पदों के सृजन का भी अनुमोदन अभिप्राप्त किया गया था । यह भी उल्लेखनीय है कि निम्नलिखित प्रारूप नियम पहले ही विधि मंत्रालय के विधायी विभाग के परामर्श से तैयार किए गए हैं :– (i) एन. सी. एल. ए. टी. (सभापति और अन्य सदस्यों के वेतन, भत्ते और सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें) नियम, 2014, (ii) एन. सी. एल. टी. (अध्यक्ष और अन्य सदस्यों के वेतन, भत्ते और सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें) नियम, 2013 । विधि मंत्रालय के विधायी विभाग के परामर्श से सहायक कर्मचारियों के लिए भी प्रारूप भर्ती नियम तैयार किए गए थे । आगे यह उल्लेखनीय है कि एन. सी. एल. टी./एन. सी. एल. ए. टी. के कार्यकरण की रीति से संबंधित प्रारूप नियम कंपनी अधिनियम, 2013 के उपबंधों के अनुसार अंतिम रूप दिए जाने के लिए एन. सी. एल. ए. टी./एन. सी. एल. टी. के सभापति/अध्यक्ष के समक्ष उनकी नियुक्ति पर रखे जाने के लिए तैयार किए गए थे । इन नियमों में एन. सी. एल. टी./एन. सी. एल. ए. टी. के कार्यकरण की रीति ; ऐसी रीति जिसमें विभिन्न अनुमोदनों के लिए आवेदन आवेदकों द्वारा किए जाएंगे और अनुमोदित किए जाएंगे ; और समझौता/ठहराव/समामेलन से संबंधित आवेदनों/मामलों से संबंधित विनिर्दिष्ट प्रक्रियागत अपेक्षाएं ; प्रताड़ना और कुप्रबंधन का निवारण ; रूग्ण कंपनियों का पुनर्जीवन और पुनर्वास ; समापन और अन्य प्रकीर्ण अपेक्षाओं से संबंधित उपबंध आते हैं । एन. सी. एल. टी. के प्रधानपीठ और अन्य

न्यायपीठों जिसके अंतर्गत बी. आई. एफ. आर. और ए. ए. आई. एफ. आर. के अंतरित मामलों से निपटने के लिए दिल्ली में विशेष पीठ है, के लिए स्थान की भी पहचान की गई थी । कुछ स्थानों पर जगह को किराये पर लेने के लिए प्रक्रिया आरंभ की गई थी जो लंबित याचिका को ध्यान में रखते हुए रोक दी गई थी, को संक्षिप्त नोटिस पर पुनः आरंभ किया जा सकता है । एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. के लिए व्यय को पूरा करने के लिए बजट शीर्ष का सृजन किया गया था । वर्ष 2014-2015 के लिए आबंटित निधियों को अधिकरणों के गठन में विलंब को ध्यान में रखते हुए अभ्यर्पित किया गया था ।

32. उपरोक्त की दृष्टि से यह प्रतीत होता है कि केवल एक उपाय जो छूट गया है यह है कि एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. को कार्यात्मक बनाने के लिए एन. सी. एल. टी. के अध्यक्ष और सदस्यों तथा एन. सी. एल. ए. टी. के सभापति और सदस्यों की नियुक्ति की जाए ।

33. चूंकि एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. का कार्यकरण अब तक आरंभ नहीं हुआ है और यह उचित समय है कि एक अधिकरण अब कार्यकरण आरंभ करें हम यह आशा करते हैं कि प्रत्यर्थी यथाशीर्ष इस निर्णय के अंतर्विष्ट निदेशों के अनुसार उपचारात्मक उपाय करेंगे जिससे कि एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. में पर्याप्त अधिकारी और कर्मचारी रखे जाएं तथा निकट भविष्य में कार्य आरंभ हो सके ।

34. रिट याचिका को पूर्वोक्त रीति से निपटाया गया ।

रिट याचिका भागतः मंजूर की गई ।

पा.

संसद् के अधिनियम

सूचना प्रदाता संरक्षण अधिनियम, 2011

(2014 का अधिनियम संख्यांक 17)

[9 मई, 2014]

किसी लोक सेवक के विरुद्ध भ्रष्टाचार के किसी अभिकथन पर या जानबूझकर शक्ति के दुरुपयोग अथवा जानबूझकर विवेकाधिकार के दुरुपयोग के प्रकटन से संबंधित शिकायतों को स्वीकार करने के लिए कोई तंत्र स्थापित करने तथा ऐसे प्रकटन की जांच करने या जांच कराने तथा ऐसी शिकायत करने वाले व्यक्ति के उत्पीड़न से पर्याप्त सुरक्षा का तथा उनसे संबंधित या आनुषंगिक विषयों के लिए उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के बासठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम सूचना प्रदाता संरक्षण अधिनियम, 2011 है ।

(2) इसका विस्तार, जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे और इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी और ऐसे किसी उपबंध में इस अधिनियम के प्रारंभ के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस उपबंध के प्रवृत्त होने के प्रति निर्देश है ।

2. इस अधिनियम के उपबंधों का विशेष संरक्षा ग्रुप को लागू न होना – इस अधिनियम के उपबंध संघ के सशस्त्र बलों को, जो विशेष संरक्षा ग्रुप अधिनियम, 1988 (1988 का 34) के अधीन गठित विशेष संरक्षा ग्रुप है, लागू नहीं होंगे ।

3. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "केन्द्रीय सतर्कता आयोग" से केन्द्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 (2003 का 45) की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन गठित आयोग अभिप्रेत है;

(ख) "सक्षम प्राधिकारी" से निम्नलिखित अभिप्रेत है, –

(i) संघ के मंत्रि-परिषद् के किसी सदस्य के संबंध में, प्रधानमंत्री;

(ii) मंत्री से भिन्न संसद् के किसी सदस्य के संबंध में, यथास्थिति, यदि ऐसा सदस्य राज्य सभा का सदस्य है तो राज्य सभा का सभापति या यदि ऐसा सदस्य लोक सभा का सदस्य है तो लोक सभा का अध्यक्ष;

(iii) किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में, मंत्रि-परिषद् के किसी सदस्य के संबंध में, यथास्थिति, उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र का मुख्यमंत्री;

(iv) किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के किसी मंत्री से भिन्न, उस विधान परिषद् या विधान सभा के किसी सदस्य के संबंध में, यथास्थिति, यदि ऐसा सदस्य विधान परिषद् का सदस्य है तो विधान परिषद् का सभापति या यदि ऐसा सदस्य विधान सभा का सदस्य है तो विधान सभा का अध्यक्ष;

(v) निम्नलिखित के संबंध में उच्च न्यायालय, –

(अ) कोई न्यायाधीश (उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के सिवाय) जिसके अंतर्गत स्वयं या व्यक्तियों के किसी निकाय के किसी सदस्य के रूप में किन्हीं न्यायनिर्णायक कृत्यों का निर्वहन करने के लिए विधि द्वारा सशक्त किया गया कोई व्यक्ति भी है; या

(आ) न्याय प्रशासन से संबंधित किसी कर्तव्य का पालन करने के लिए किसी न्यायालय द्वारा प्राधिकृत कोई व्यक्ति, जिसके अंतर्गत ऐसे न्यायालय द्वारा

नियुक्त किया गया कोई समापक, रिसीवर या कमिश्नर भी है; या

(इ) कोई मध्यस्थ या अन्य व्यक्ति, जिसे कोई वाद या विषय किसी न्यायालय द्वारा या किसी सक्षम लोक प्राधिकारी द्वारा विनिश्चय या रिपोर्ट के लिए निर्दिष्ट किया गया है;

(vi) निम्नलिखित के संबंध में, केंद्रीय सतर्कता आयोग या कोई अन्य प्राधिकरण, जिसे केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे –

(अ) केंद्रीय सरकार की सेवा या वेतन में या किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए फीस या कमीशन के रूप में केंद्रीय सरकार द्वारा पारिश्रमिक पर या किसी केंद्रीय अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी सोसाइटी या स्थानीय प्राधिकारी या किसी निगम या केंद्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या किसी निकाय या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित केंद्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी सरकारी कंपनी की सेवा या वेतन में कोई व्यक्ति (मंत्रियों, संसद् सदस्यों और संविधान के अनुच्छेद 33 के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग) या खंड (घ) में निर्दिष्ट सदस्यों या व्यक्तियों के सिवाय); या

(आ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर उसे निर्वाचक नामावली तैयार, प्रकाशित, बनाए रखने या पुनरीक्षित करने या संसद् या राज्य विधान-मंडल के निर्वाचनों के संबंध में किसी निर्वाचन या किसी निर्वाचन के भाग का संचालन करने के लिए सशक्त किया गया है; या

(इ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर उसे किसी लोक कर्तव्य

का पालन करने के लिए प्राधिकृत किया गया है या उससे अपेक्षा की गई है (मंत्रियों और संसद् सदस्यों के सिवाय); या

(ई) ऐसा कोई व्यक्ति, जो केंद्रीय सरकार से या किसी केंद्रीय अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी निगम से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही या प्राप्त करने वाली कृषि, उद्योग, व्यवसाय या बैंककारी में लगी किसी रजिस्ट्रीकृत सहकारी सोसाइटी का या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित केंद्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या उससे सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या निकाय या किसी सरकारी कंपनी का अध्यक्ष, सचिव या अन्य पदधारी है; या

(उ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी केंद्रीय सेवा आयोग या बोर्ड का, चाहे जो भी नाम हो, अध्यक्ष, सदस्य या कर्मचारी है या ऐसे आयोग या बोर्ड द्वारा उस आयोग या बोर्ड की ओर से किसी परीक्षा का संचालन या कोई चयन करने के लिए नियुक्त की गई किसी चयन समिति का सदस्य है; या

(ऊ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी केंद्रीय अधिनियम द्वारा स्थापित या केंद्रीय सरकार द्वारा स्थापित या उसके नियंत्रणाधीन या वित्तपोषित किसी विश्वविद्यालय का कुलपति या उसके शासी निकाय का सदस्य, आचार्य, सह-आचार्य, सहायक आचार्य, रीडर, प्राध्यापक या कोई अन्य अध्यापक या कर्मचारी, चाहे जो भी पदनाम हो, है या ऐसा कोई व्यक्ति, जिसकी सेवाओं का ऐसे विश्वविद्यालय या किसी ऐसे लोक प्राधिकरण द्वारा परीक्षाएं आयोजित या संचालित करने के संबंध में उपभोग किया गया है; या

(ए) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसी किसी शैक्षिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या अन्य संस्था जिसे किसी भी रीति में स्थापित किया गया है, का कोई पदधारी या कर्मचारी है जो केंद्रीय सरकार या किसी

स्थानीय या अन्य लोक प्राधिकरण से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही है या जिसने प्राप्त की है;

(vii) निम्नलिखित के संबंध में, राज्य सतर्कता आयोग, यदि कोई है, या राज्य सरकार का कोई अधिकारी या कोई अन्य प्राधिकारी, जिसे राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे –

(अ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो केंद्रीय सरकार की सेवा या वेतन में या किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए फीस या कमीशन के रूप में केंद्रीय सरकार द्वारा पारिश्रमिक पर या किसी प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी सोसाइटी या स्थानीय प्राधिकारी या किसी निगम या राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या उससे सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या किसी निकाय या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी सरकारी कंपनी की सेवा या वेतन में कोई व्यक्ति (मंत्रियों, राज्य की विधान परिषद् या विधान सभा के सदस्यों के सिवाय); या

(आ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर उसे निर्वाचक नामावली तैयार, प्रकाशित, बनाए रखने या पुनरीक्षित करने या राज्य में नगरपालिका या पंचायतों या अन्य स्थानीय निकाय के संबंध में किसी निर्वाचन या किसी निर्वाचन के भाग का संचालन करने के लिए सशक्त किया गया है; या

(इ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर उसे राज्य सरकार के कार्यकलापों के संबंध में किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए प्राधिकृत किया गया है या उससे अपेक्षा की गई है (मंत्रियों और राज्य की विधान परिषद् या विधान सभा के सदस्यों के सिवाय); या

(ई) ऐसा कोई व्यक्ति, जो राज्य सरकार से या किसी प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी निगम से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही या प्राप्त करने वाली कृषि, उद्योग, व्यवसाय या बैंककारी में लगी किसी रजिस्ट्रीकृत सहकारी सोसाइटी का या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या उससे सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या निकाय या किसी सरकारी कंपनी का अध्यक्ष, सचिव या अन्य पदधारी है; या

(उ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी राज्य सेवा आयोग या बोर्ड का, चाहे जो भी नाम हो, अध्यक्ष, सदस्य या कर्मचारी है या ऐसे आयोग या बोर्ड द्वारा उस आयोग या बोर्ड की ओर से किसी परीक्षा का संचालन या कोई चयन करने के लिए नियुक्त की गई किसी चयन समिति का सदस्य है; या

(ऊ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा स्थापित या राज्य सरकार द्वारा स्थापित या उसके नियंत्रणाधीन या वित्तपोषित किसी विश्वविद्यालय का कुलपति या उसके शासी निकाय का सदस्य, आचार्य, सह-आचार्य, सहायक आचार्य, रीडर, प्राध्यापक या कोई अन्य अध्यापक या कर्मचारी, चाहे जो भी पदनाम हो, है या ऐसा कोई व्यक्ति, जिसकी सेवाओं का ऐसे विश्वविद्यालय या किसी ऐसे लोक प्राधिकरण द्वारा परीक्षाएं आयोजित या संचालित करने के संबंध में उपभोग किया गया है; या

(ए) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसी किसी शैक्षिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या अन्य संस्था जिसे किसी भी रीति में स्थापित किया गया है, का कोई पदधारी या कर्मचारी है, जो राज्य सरकार या किसी स्थानीय या अन्य लोक प्राधिकरण से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही है या जिसने प्राप्त की है;

(viii) संविधान के अनुच्छेद 33 के खंड (क) या खंड

(ख) या खंड (ग) या खंड (घ) में निर्दिष्ट सदस्यों या व्यक्तियों के संबंध में, ऐसा कोई प्राधिकारी या ऐसे प्राधिकारी, जिसकी उनके संबंध में अधिकारिता है, जिसे, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे;

(ग) "शिकायतकर्ता" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो इस अधिनियम के अधीन प्रकटन के संबंध में कोई शिकायत करता है;

(घ) "प्रकटन" से, –

(i) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 45) के अधीन किसी अपराध को करने के प्रयत्न या अपराध किए जाने के संबंध में कोई शिकायत अभिप्रेत है;

(ii) जानबूझकर शक्ति के दुरुपयोग या जानबूझकर विवेकाधिकार के दुरुपयोग के संबंध में, जिसके कारण सरकार को प्रमाण्य सदोष होती है या लोक सेवक या किसी तृतीय पक्षकार को प्रमाण्य सदोष अभिलाभ उद्भूत होता है, कोई शिकायत अभिप्रेत है;

(iii) किसी लोक सेवक द्वारा किसी दांडिक अपराध को करने के प्रयत्न या अपराध किए जाने के संबंध में कोई शिकायत अभिप्रेत है,

जो लोक सेवक के विरुद्ध लिखित में या इलेक्ट्रानिक मेल द्वारा या इलेक्ट्रानिक मेल संदेश द्वारा की जाती है और जिसमें धारा 4 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट लोक हित प्रकटन सम्मिलित है;

(ङ) "इलेक्ट्रानिक मेल" या "इलेक्ट्रानिक मेल संदेश" से किसी कम्प्यूटर, कम्प्यूटर प्रणाली, कम्प्यूटर संसाधन या संचार यंत्र पर, कोई संदेश या सृजित या पारेषित या प्राप्त सूचना अभिप्रेत है, जिसमें पाठ, आकृति, श्रव्य, दृश्य तथा किसी अन्य इलेक्ट्रानिक अभिलेख के ऐसे संलग्नक सम्मिलित हैं, जो संदेश के साथ प्रेषित किए जाएं;

(च) "सरकारी कंपनी" से कंपनी अधिनियम, 1956 (1956

का 1) की धारा 617 में निर्दिष्ट कोई कंपनी अभिप्रेत है;

(छ) "अधिसूचना" से, यथास्थिति, भारत के राजपत्र या किसी राज्य के राजपत्र में प्रकाशित कोई अधिसूचना अभिप्रेत है;

(ज) "लोक प्राधिकारी" से सक्षम प्राधिकारी की अधिकारिता के अंतर्गत आने वाला कोई प्राधिकारी, निकाय या संस्था अभिप्रेत है;

(झ) "लोक सेवक" का वही अर्थ होगा, जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) की धारा 2 के खंड (ग) में है, किंतु इसके अंतर्गत उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश या किसी उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश नहीं होगा;

(ञ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है;

(ट) "विनियम" से इस अधिनियम के अधीन सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाए गए विनियम अभिप्रेत हैं ।

अध्याय 2

लोक हित प्रकटन

4. लोक हित प्रकटन की आवश्यकता – (1) शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 (1923 का 19) के उपबंधों में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कोई लोक सेवक या किसी गैर-सरकारी संगठन सहित कोई अन्य व्यक्ति सक्षम प्राधिकारी के समक्ष कोई लोक हित प्रकटन कर सकेगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन किए गए किसी प्रकटन को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए लोक हित प्रकटन माना जाएगा और उसे सक्षम प्राधिकारी के समक्ष किया जाएगा तथा प्रकटन करने वाली शिकायत को सक्षम प्राधिकारी की ओर से ऐसे प्राधिकारी द्वारा, जो सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, प्राप्त किया जाएगा ।

(3) प्रत्येक प्रकटन सद्भावपूर्वक किया जाएगा और प्रकटन करने

वाला व्यक्ति एक व्यक्तिगत घोषणा करते हुए यह कथन करेगा कि युक्तियुक्त रूप से उसका यह विश्वास है कि उसके द्वारा प्रकट की गई जानकारी और उसमें अन्तर्विष्ट अभिकथन सारभूत रूप से सत्य है ।

(4) प्रत्येक प्रकटन ऐसी प्रक्रिया के अनुसार जिसे विहित किया जाए, लिखित में या इलेक्ट्रानिक मेल या इलेक्ट्रानिक मेल संदेश द्वारा किया जाएगा और उसमें सभी विशिष्टियां होंगी तथा उसके साथ समर्थनकारी दस्तावेज या अन्य सामग्री, यदि कोई हो, संलग्न होगी ।

(5) सक्षम प्राधिकारी, यदि उचित समझता है तो प्रकटन करने वाले व्यक्ति से और अधिक जानकारी या विशिष्टियां मंगा सकेगा ।

(6) यदि प्रकटन में लोक हित प्रकटन करने वाले शिकायतकर्ता लोक सेवक की पहचान उपदर्शित नहीं की गई है या शिकायतकर्ता लोक सेवक की पहचान गलत या मिथ्या पाई जाती है तब सक्षम प्राधिकारी द्वारा लोक हित अथवा प्रकटन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी ।

अध्याय 3

लोक हित प्रकटन के संबंध में जांच

5. लोक हित प्रकटन के प्राप्त होने पर सक्षम प्राधिकारी की शक्तियां और कृत्य – (1) धारा 4 के अधीन किसी लोक हित प्रकटन के प्राप्त होने पर सक्षम प्राधिकारी इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, –

(क) शिकायतकर्ता या लोक सेवक से यह अभिनिश्चित करेगा कि क्या वह, वही व्यक्ति या लोक सेवक है या नहीं जिसने प्रकटन किया है;

(ख) शिकायतकर्ता की पहचान को तब तक छिपाएगा जब तक कि स्वयं शिकायतकर्ता ने अपनी पहचान किसी अन्य कार्यालय या प्राधिकारी को लोक हित प्रकटन करते समय या अपनी शिकायत में या अन्यथा प्रकटन न की हो ।

(2) सक्षम प्राधिकारी शिकायत प्राप्त करने और शिकायतकर्ता की पहचान छिपाने के पश्चात् सर्वप्रथम यह अभिनिश्चित करने के लिए कि प्रकटन का अन्वेषण करने के लिए आगे कार्यवाही करने का कोई आधार है या नहीं, सावधानीपूर्वक जांच, ऐसी रीति में और ऐसे समय

के भीतर करेगा जो विहित किया जाए ।

(3) यदि सक्षम प्राधिकारी की, या तो सावधानीपूर्वक जांच के परिणामस्वरूप या किसी जांच के बिना प्रकटन के आधार पर ही यह राय है कि प्रकटन का अन्वेषण किए जाने की आवश्यकता है तो वह संगठन या प्राधिकरण के विभागाध्यक्ष संबंधित बोर्ड या निगम या संबंधित कार्यालय से ऐसे समय के भीतर, जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, टिप्पणी या स्पष्टीकरण या रिपोर्ट मांगेगा ।

(4) उपधारा (3) में निर्दिष्ट की गई टिप्पणियों या स्पष्टीकरणों या रिपोर्ट को मांगते समय सक्षम प्राधिकारी, शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान प्रकट नहीं करेगा और संबंधित संगठन या संबंधित कार्यालय के विभागाध्यक्ष को यह निदेश करेगा कि वह शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान प्रकट न करे :

परंतु यदि सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि लोक प्रकट के आधार पर उपधारा (3) के अधीन उनसे टिप्पणी या स्पष्टीकरण या रिपोर्ट मांगने के प्रयोजन के लिए संगठन या प्राधिकरण, बोर्ड या संबंधित निगम या संबंधित कार्यालय के विभागाध्यक्ष को शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान प्रकट करना आवश्यक हो गया है तो सक्षम प्राधिकारी, शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पूर्व लिखित सहमति से संगठन या प्राधिकरण या बोर्ड या संबंधित निगम या संबंधित कार्यालय के ऐसे विभागाध्यक्ष को शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान उक्त प्रयोजन के लिए प्रकट कर सकेगा :

परंतु यह और कि यदि शिकायतकर्ता या लोक सेवक, विभागाध्यक्ष को अपना नाम प्रकट किए जाने से सहमत नहीं होता है तो उस मामले में, यथास्थिति, शिकायतकर्ता या लोक सेवक अपनी शिकायत के समर्थन में सभी दस्तावेजी साक्ष्य सक्षम प्राधिकारी को उपलब्ध कराएगा ।

(5) संगठन या संबंधित कार्यालय का विभागाध्यक्ष ऐसे शिकायतकर्ता या लोक सेवक की, जिसने प्रकटन किया है, पहचान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट नहीं करेगा ।

(6) यदि जांच करने के पश्चात् सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि –

(क) प्रकटन में अंतर्विष्ट तथ्य और अभिकथन तुच्छ या तंग करने वाले हैं; या

(ख) जांच के संबंध में कार्यवाही करने के पर्याप्त आधार नहीं हैं,

तो वह मामले को बंद कर देगा ।

(7) उपधारा (3) में निर्दिष्ट टिप्पणियों या स्पष्टीकरणों या रिपोर्ट के प्राप्त होने के पश्चात् यदि सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि ऐसी टिप्पणियों या स्पष्टीकरणों या रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि या तो जानबूझकर शक्ति का दुरुपयोग या जानबूझकर विवेकाधिकार का दुरुपयोग किया गया है या भ्रष्टाचार के अभिकथन सिद्ध हो गए हैं तो वह लोक प्राधिकारी को निम्नलिखित एक या अधिक उपाय करने की सिफारिश करेगा, अर्थात् :–

(i) संबंधित लोक सेवक के विरुद्ध कार्यवाहियां आरंभ करना;

(ii) यथास्थिति, भ्रष्ट आचरण या पद के दुरुपयोग या विवेकाधिकार के दुरुपयोग के परिणामस्वरूप सरकार को हुई हानि के प्रतितोष के लिए समुचित प्रशासनिक कदम उठाना;

(iii) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, यदि आवश्यक हो, तो तत्समय प्रवृत्त सुसंगत विधियों के अधीन दांडिक कार्यवाहियों को आरंभ करने के लिए समुचित प्राधिकारी या अभिकरण को सिफारिश करेगा;

(iv) दोष निवारक उपाय करने की सिफारिश करेगा;

(v) खंड (i) से (iv) के अधीन न आने वाला ऐसा कोई अन्य उपाय जो इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए आवश्यक हो ।

(8) वह लोक प्राधिकारी, जिसे उपधारा (7) के अधीन कोई सिफारिश की जाती है, उस सिफारिश की प्राप्ति के तीन मास के भीतर या तीन मास से अनधिक की ऐसी विस्तारित अवधि के भीतर, जो सक्षम प्राधिकारी, लोक प्राधिकारी द्वारा किए गए अनुरोध पर अनुज्ञात करे, उस सिफारिश पर कोई विनिश्चय करेगा :

परंतु यदि लोक प्राधिकारी सक्षम प्राधिकारी की सिफारिश से सहमत नहीं होता है तो वह ऐसी असहमति के कारणों को अभिलिखित करेगा ।

(9) सक्षम प्राधिकारी, जांच करने के पश्चात्, शिकायतकर्ता या लोक सेवक को शिकायत पर की गई कार्रवाई और उसके अंतिम निष्कर्ष के बारे में सूचित करेगा :

परंतु ऐसे किसी मामले में, जहां सक्षम प्राधिकारी जांच करने के पश्चात् मामले को बंद करने का विनिश्चय करता है, वहां वह मामले को बंद करने का आदेश पारित करने से पूर्व, यदि शिकायतकर्ता ऐसी वांछा करे तो शिकायतकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा ।

6. सक्षम प्राधिकारी द्वारा जांच न किए जाने वाले विषय – (1) यदि किसी प्रकटन में विनिर्दिष्ट विषय या उठाए गए किसी विवाद्यक का अवधारण प्रकटन में विनिर्दिष्ट विषयों या उठाए गए विवाद्यक पर विचार करने के पश्चात् किसी ऐसे न्यायालय या अधिकरण द्वारा किया गया है, जो कि ऐसे विवाद्यक का अवधारण करने के लिए प्राधिकृत है, तब सक्षम प्राधिकारी प्रकटन के संबंध में उस सीमा तक विचार नहीं करेगा जिस सीमा तक ऐसे प्रकटन में ऐसे विवाद्यक पर पुनः विचार करने की मांग की गई हो ।

(2) सक्षम प्राधिकारी ऐसे किसी प्रकटन को ग्रहण नहीं करेगा या उसके संबंध में जांच नहीं करेगा –

(क) जिसकी बाबत लोक सेवक (जांच) अधिनियम, 1850 (1850 का 37) के अधीन औपचारिक और लोक जांच किए जाने का आदेश किया गया है; या

(ख) ऐसे किसी विषय की बाबत जिसे जांच आयोग अधिनियम, 1952 (1952 का 60) के अधीन जांच के लिए निर्दिष्ट किया गया है ।

(3) सक्षम प्राधिकारी ऐसे किसी प्रकटन का अन्वेषण नहीं करेगा जिसमें ऐसा अभिकथन अंतर्ग्रस्त हो जिसके संबंध में शिकायत करने की तारीख से सात वर्ष के पश्चात् कार्रवाई किए जाने का अभिकथन किया गया है ।

(4) इस अधिनियम में किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया

जाएगा कि सक्षम प्राधिकारी को इस अधिनियम के अधीन किसी कर्मचारी द्वारा अपने कर्तव्य का निर्वहन करते हुए यदि कोई सद्भाविक कार्रवाई या सद्भाविक विवेकाधिकार (जिसके अंतर्गत प्रशासनिक और कानूनी विवेकाधिकार भी है) का प्रयोग किया है उसके विरुद्ध जांच करने के लिए सशक्त किया गया है ।

अध्याय 4

सक्षम प्राधिकारी की शक्तियां

7. सक्षम प्राधिकारी की शक्तियां – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन सक्षम प्राधिकारी को प्रदत्त की गई शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, सक्षम प्राधिकारी, जांच के प्रयोजन के लिए, किसी लोक सेवक या किसी अन्य व्यक्ति को जो कि उनकी राय में जानकारी देने या जांच के लिए सुसंगत दस्तावेजों को प्रस्तुत करने या जांच में सहायता के लिए समर्थ है तो वह उसे उक्त प्रयोजन के लिए ऐसी जानकारी देने या ऐसे दस्तावेज, प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकेगा, जो आवश्यक हो ।

(2) निम्नलिखित विषयों की बाबत किसी ऐसी जांच (जिसके अन्तर्गत आरम्भिक जांच भी है) के प्रयोजन के लिए सक्षम प्राधिकारी को वे सभी शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय किसी सिविल न्यायालय की होती हैं, अर्थात् :–

(क) किसी साक्षी को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना;

(ख) किसी दस्तावेज का प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करना;

(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की मांग करना;

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कोई कमीशन निकालना;

(च) ऐसे अन्य विषय, जो विहित किए जाएं ।

(3) सक्षम प्राधिकारी, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के प्रयोजन के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा और सक्षम प्राधिकारी के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही धारा 193 और धारा 228 के अर्थान्तर्गत तथा भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 196 के प्रयोजनों के लिए न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी ।

(4) धारा 8 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, सरकारी या किसी भी लोक सेवक द्वारा अभिप्राप्त या उसको दी गई जानकारी की गोपनीयता बनाए रखने या अन्य निर्बन्धन की किसी बाध्यता का दावा, चाहे शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 (1923 का 19) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अधिरोपित हो, सक्षम प्राधिकारी या लिखित रूप में उसके द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति या अभिकरण के समक्ष कार्यवाहियों में किसी लोक सेवक द्वारा नहीं किया जाएगा और सरकारी या कोई भी लोक सेवक किसी ऐसी जांच के संबंध में दस्तावेज पेश करने या साक्ष्य देने की बाबत ऐसे किसी विशेषाधिकार का हकदार नहीं होगा जो किसी अधिनियमिति द्वारा या उसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों द्वारा अनुज्ञात है :

परंतु सक्षम प्राधिकारी, सिविल न्यायालय की ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते समय यह सुनिश्चित करने के लिए यथा आवश्यक कदम उठाएगा कि शिकायत करने वाले व्यक्ति की पहचान प्रकट नहीं की गई है या उसे जोखिम में नहीं डाला गया है ।

8. कतिपय मामलों की प्रकटन से छूट – (1) किसी व्यक्ति से इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के आधार पर ऐसी कोई सूचना देने या ऐसा कोई उत्तर देने या कोई दस्तावेज या जानकारी पेश करने या इस अधिनियम के अधीन जांच में कोई अन्य सहायता देने की अपेक्षा नहीं की जाएगी या उसे प्राधिकृत नहीं किया जाएगा, यदि ऐसे प्रश्न या दस्तावेज या जानकारी से भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्य के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या नैतिकता के हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है या न्यायालय का अवमान, मानहानि या किसी अपराध के उद्दीपन के संबंध में, जिसमें –

(क) संघ सरकार के मंत्रिमंडल या मंत्रिमंडल की किसी समिति की कार्यवाहियों का प्रकटन अंतर्वलित हो;

(ख) राज्य सरकार के मंत्रिमंडल या उस मंत्रिमंडल की किसी समिति की कार्यवाहियों का प्रकटन अंतर्वलित हो,

और इस उपधारा के प्रयोजन के लिए, यथास्थिति, भारत सरकार के सचिव या राज्य सरकार के सचिव या केन्द्रीय या राज्य सरकार द्वारा इस प्रकार प्राधिकृत किसी प्राधिकारी द्वारा यह प्रमाणित करने के लिए जारी कोई प्रमाणपत्र, कि कोई जानकारी, उत्तर या किसी दस्तावेज का भाग खंड (क) या खंड (ख) में विनिर्दिष्ट प्रकृति का है, आबद्धकर और निश्चायक होगा ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी व्यक्ति को, इस अधिनियम के अधीन जांच के प्रयोजनों के लिए कोई ऐसा साक्ष्य देने या कोई ऐसा दस्तावेज पेश करने के लिए विवश नहीं किया जाएगा, जिसके लिए उसे किसी न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों में देने या पेश करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता ।

9. समुचित तंत्र पर सक्षम प्राधिकारी का अधीक्षण – (1) प्रत्येक लोक प्राधिकारी, धारा 5 की उपधारा (3) के अधीन उसे भेजे गए प्रकटनों के संबंध में विचार करने या जांच करने के प्रयोजनों के लिए एक समुचित तंत्र सृजित करेगा ।

(2) सक्षम प्राधिकारी, प्रकटनों पर विचार करने या जांच करने के प्रयोजनों के लिए उपधारा (1) के अधीन सृजित तंत्र के कार्यकरण का अधीक्षण करेगा और समय-समय पर इसके उचित कार्यकरण के लिए ऐसे निदेश देगा, जो वह आवश्यक समझे ।

10. सक्षम प्राधिकारी द्वारा कतिपय मामलों में पुलिस प्राधिकारी आदि की सहायता लेना – संबंधित संगठन से सावधानीपूर्वक जांच करने या जानकारी अभिप्राप्त करने के प्रयोजन के लिए सक्षम प्राधिकारी, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन या पुलिस प्राधिकारी या किसी अन्य प्राधिकारी, जिसे आवश्यक समझा जाए, से सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्राप्त प्रकटन के अनुसरण में विहित समय के भीतर जांच पूरी करने के लिए सभी प्रकार की सहायता प्राप्त करने के लिए प्राधिकृत होगा ।

अध्याय 5

प्रकटन करने वाले व्यक्तियों का संरक्षण

11. उत्पीड़न के विरुद्ध रक्षोपाय – (1) केन्द्रीय सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि कोई व्यक्ति या लोक सेवक, जिसने इस अधिनियम के अधीन प्रकटन किया है, मात्र इस आधार पर किन्हीं कार्यवाहियों के आरंभ द्वारा या अन्यथा उत्पीड़ित न किया जाए, कि ऐसे व्यक्ति या लोक सेवक ने इस अधिनियम के अधीन जांच में कोई प्रकटन किया था या जांच में सहायता दी थी ।

(2) यदि किसी व्यक्ति को इस आधार पर उत्पीड़ित किया जा रहा है या उत्पीड़ित किए जाने की संभावना है कि उसने इस अधिनियम के अधीन कोई शिकायत फाइल की थी या प्रकटन किया था या जांच में सहायता की थी, तो वह मामले में प्रतितोष के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष आवेदन फाइल कर सकेगा और ऐसा प्राधिकारी ऐसी कार्यवाही करेगा, जो वह ठीक समझे और ऐसे व्यक्ति को उत्पीड़ित होने से संरक्षित करने या उसे उत्पीड़न से बचाने के लिए, यथास्थिति, संबद्ध लोक सेवक या लोक प्राधिकारी को उपयुक्त निदेश दे सकेगा :

परंतु सक्षम प्राधिकारी, लोक प्राधिकारी या लोक सेवक को कोई ऐसा निदेश देने से पूर्व, शिकायतकर्ता और, यथास्थिति, लोक प्राधिकारी या लोक सेवक को सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा :

परंतु यह और कि ऐसी किसी सुनवाई में यह साबित करने का भार लोक प्राधिकारी पर होगा कि लोक प्राधिकारी की ओर से अभिकथित कार्रवाई उत्पीड़न नहीं है ।

(3) सक्षम प्राधिकारी द्वारा उपधारा (2) के अधीन दिया गया प्रत्येक निदेश उस लोक सेवक या लोक प्राधिकारी के विरुद्ध आबद्धकर होगा, जिसके विरुद्ध उत्पीड़न का अभिकथन साबित हो गया है ।

(4) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी अन्य बात के होते हुए भी किसी लोक सेवक के संबंध में उपधारा (2) के अधीन निदेश देने की शक्ति में यथापूर्व स्थिति बनाए रखने के लिए प्रकटन करने वाले लोक सेवक के प्रत्यावर्तन के निदेश देने की शक्ति होगी ।

(5) ऐसा कोई व्यक्ति, जो उपधारा (2) के अधीन सक्षम प्राधिकारी के निदेश का जानबूझकर अनुपालन नहीं करता है, ऐसी शास्ति के लिए, जो तीस हजार रुपए तक की हो सकेगी, दायी होगा ।

12. साक्षियों और अन्य व्यक्तियों का संरक्षण – (1) यदि सक्षम प्राधिकारी की शिकायतकर्ता या साक्षियों के आवेदन पर या एकत्रित की गई जानकारी के आधार पर यह राय है कि या तो शिकायतकर्ता या लोक सेवक या साक्षी या इस अधिनियम के अधीन जांच के लिए सहायता देने वाले किसी व्यक्ति को संरक्षण की आवश्यकता है तो सक्षम प्राधिकारी संबद्ध सरकारी प्राधिकारी (पुलिस सहित) को समुचित निदेश जारी करेगा, जो ऐसे शिकायतकर्ता या लोक सेवक या संबद्ध व्यक्तियों के संरक्षण के लिए अपने अभिकरणों के माध्यम से आवश्यक कदम उठाएगा ।

13. शिकायतकर्ता की पहचान का संरक्षण – (1) सक्षम प्राधिकारी तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन जांच के प्रयोजनों के लिए तब तक शिकायतकर्ता की पहचान और उसके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों या जानकारी को इस अधिनियम के अधीन यथा अपेक्षित छिपाएगा, जब तक स्वयं सक्षम प्राधिकारी द्वारा अन्यथा इस प्रकार विनिश्चय नहीं किया जाता या न्यायालय के आदेश के आधार पर इसका प्रकट किया जाना या पेश किया जाना आवश्यक नहीं हो जाता ।

14. अंतरिम आदेश पारित करने की शक्ति – (1) सक्षम प्राधिकारी, शिकायतकर्ता या लोक सेवक द्वारा प्रकटन करने के पश्चात् किसी भी समय, यदि उसकी यह राय है कि उक्त प्रयोजन के लिए किसी जांच के जारी रहने के दौरान किसी भ्रष्ट आचरण को रोकना आवश्यक है तो ऐसे अंतरिम आदेश पारित कर सकेगा, जो वह ऐसे आचरण को तत्काल रोकने के लिए ठीक समझे ।

अध्याय 6

अपराध और शास्तियां

15. अपूर्ण या गलत या भ्रामक टिप्पणियां या स्पष्टीकरण या रिपोर्ट देने के लिए शास्ति – जहां सक्षम प्राधिकारी की, संगठन या संबंधित पदधारी द्वारा प्रस्तुत की गई शिकायत पर रिपोर्ट या स्पष्टीकरण या धारा 5 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट रिपोर्ट की परीक्षा

करते समय, यह राय है कि संगठन या संबंधित पदधारी ने, किसी युक्तियुक्त कारण के बिना विनिर्दिष्ट समय के भीतर रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है या असद्भाव से रिपोर्ट प्रस्तुत करने से इंकार किया है या जानते हुए अपूर्ण, गलत या भ्रामक या मिथ्या रिपोर्ट दी है या ऐसे अभिलेख या सूचना को नष्ट किया है, जो प्रकटन की विषयवस्तु थी या रिपोर्ट प्रस्तुत करने में किसी रीति में बाधा पहुंचाई है, तो वह, –

(क) जहां संगठन या संबंधित पदधारी ने किसी युक्तियुक्त कारण के बिना विनिर्दिष्ट समय के भीतर रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है या असद्भाव से रिपोर्ट प्रस्तुत करने से इंकार किया है वहां ऐसी शास्ति अधिरोपित करेगा, जो रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने तक प्रत्येक दिन के लिए दो सौ पचास रुपए तक की हो सकेगी, तथापि, ऐसी शास्ति की कुल रकम पचास हजार रुपए से अधिक नहीं होगी;

(ख) जहां संगठन या संबंधित पदधारी ने, जानते हुए अपूर्ण, गलत या भ्रामक या मिथ्या रिपोर्ट दी है या ऐसे अभिलेख या सूचना को नष्ट किया है, जो प्रकटन की विषयवस्तु थी या रिपोर्ट प्रस्तुत करने में किसी रीति में बाधा पहुंचाई है, वहां ऐसी शास्ति अधिरोपित कर सकेगा, जो पचास हजार रुपए तक की हो सकेगी :

परंतु किसी व्यक्ति पर तब तक कोई शास्ति अधिरोपित नहीं की जाएगी, जब तक उसे सुनवाई का अवसर नहीं दे दिया गया हो ।

16. शिकायतकर्ता की पहचान प्रकट करने के लिए शास्ति – कोई व्यक्ति, जो उपेक्षापूर्वक या असद्भाव से किसी शिकायतकर्ता की पहचान प्रकट करता है, इस अधिनियम के अन्य उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसी अवधि के कारावास से, जो तीन वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से भी, जो पचास हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

17. मिथ्या या तुच्छ प्रकटन के लिए दंड – कोई व्यक्ति, जो असद्भाव से और जानते हुए कोई प्रकटन करता है कि यह गलत या मिथ्या या भ्रामक था तो वह ऐसी अवधि के कारावास से, दो वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी जो तीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

18. कतिपय मामलों में विभागाध्यक्ष के लिए दंड – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध सरकार के किसी विभाग द्वारा किया जाता है, वहां विभागाध्यक्ष को तब तक अपराध का दोषी माना जाएगा और उसके विरुद्ध कार्रवाई की जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने का दायी होगा, जब तक वह यह साबित नहीं कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या कि उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सभी सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध सरकार के किसी विभाग द्वारा किया जाता है और यह साबित हो जाता है कि अपराध किसी अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उसके द्वारा किया गया समझा जाता है तो ऐसा अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और अपने विरुद्ध कार्रवाई किए जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने का दायी होगा ।

19. कंपनियों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है, वहां ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी, ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने के दायी होंगे :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को दंड का दायी नहीं बनाएगी यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है, वहां ऐसा

निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने का दायी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए –

(क) "कंपनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम भी है; और

(ख) फर्म के संबंध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

20. उच्च न्यायालय को अपील – धारा 14 या धारा 15 या धारा 16 के अधीन शास्ति अधिरोपित करने से संबंधित सक्षम प्राधिकारी के किसी आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, उस आदेश की तारीख से, जिसके विरुद्ध अपील की जानी है, साठ दिन की अवधि के भीतर उच्च न्यायालय को अपील कर सकेगा :

परंतु उच्च न्यायालय, साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी को समय के भीतर अपील करने से पर्याप्त कारण से निवारित किया गया था ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए "उच्च न्यायालय" से ऐसा उच्च न्यायालय अभिप्रेत है जिसकी अधिकारिता के भीतर वाद हेतुक उद्भूत हुआ है ।

21. अधिकारिता का वर्जन – किसी सिविल न्यायालय को, किसी ऐसे विषय की बाबत अधिकारिता नहीं होगी जिसको इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन सक्षम प्राधिकारी अवधारित करने के लिए सशक्त है, और इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में की गई या की जाने वाली किसी कार्रवाई की बाबत किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी द्वारा कोई व्यादेश मंजूर नहीं किया जाएगा ।

22. न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जाना – कोई भी न्यायालय सक्षम प्राधिकारी या उसके द्वारा प्राधिकृत किसी अधिकारी या व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत के सिवाय इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के अधीन दंडनीय किसी अपराध का

संज्ञान नहीं लेगा ।

(2) मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय से निम्नतर कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का विचारण नहीं करेगा ।

अध्याय 7

प्रकीर्ण

23. प्रकटीकरणों पर रिपोर्ट – (1) सक्षम प्राधिकारी, ऐसी रीति में जो विहित की जाए, अपने क्रियाकलापों को करने के बारे में एक समेकित वार्षिक रिपोर्ट तैयार करेगा और उसे, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार को अग्रेषित करेगा ।

(2) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार उपधारा (1) के अधीन वार्षिक रिपोर्ट प्राप्त होने पर, उसकी एक प्रति, यथास्थिति, संसद् या राज्य विधान-मंडल के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी :

परंतु जहां तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में सक्षम प्राधिकारी द्वारा ऐसी वार्षिक रिपोर्ट के तैयार करने के बारे में उपबंध किया गया है वहां सक्षम प्राधिकारी द्वारा उक्त वार्षिक रिपोर्ट में उस अधिनियम के अधीन क्रियाकलापों को करने के बारे में पृथक् भाग अंतर्विष्ट किया जाएगा ।

24. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात की बाबत कोई वाद या अन्य विधिक कार्यवाहियां सक्षम प्राधिकारी या उसकी ओर से कार्य कर रहे किसी अधिकारी, कर्मचारी, अभिकरण या किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होंगी ।

25. केन्द्रीय सरकार की नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 4 की उपधारा (4) के अधीन लिखित रूप में या

समुचित इलेक्ट्रानिक साधनों द्वारा प्रकटीकरण की प्रक्रिया;

(ख) वह रीति, जिसमें और वह समय, जिसके भीतर धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन सक्षम प्राधिकारी द्वारा सावधानीपूर्वक जांच की जाएगी;

(ग) ऐसे अतिरिक्त विषय, जिनकी बाबत सक्षम प्राधिकारी, धारा 7 की उपधारा (2) के खंड (च) के अधीन सिविल न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा;

(घ) धारा 23 की उपधारा (1) के अधीन वार्षिक रिपोर्ट का प्ररूप;

(ङ) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाना अपेक्षित है या विहित किया जाए ।

26. राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति – राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए नियम बना सकेगी ।

27. विनियम बनाने की शक्ति – सक्षम प्राधिकारी, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे सभी विषयों के लिए, जिनके लिए इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने के प्रयोजनों के लिए उपबंध करना समीचीन है, उपबंध करने के लिए ऐसे विनियम बना सकेगा जो अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों से असंगत न हों ।

28. अधिसूचनाओं और नियमों का संसद् के समक्ष रखा जाना – इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी प्रत्येक अधिसूचना और बनाया गया प्रत्येक नियम और सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाया गया प्रत्येक विनियम, जारी की जाने या बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखी जाएगी या रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस अधिसूचना या उस नियम या विनियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो

तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगी/होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह अधिसूचना या नियम अथवा विनियम नहीं बनाई, बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगी/जाएगा । तथापि, अधिसूचना या नियम अथवा विनियम के ऐसे परिवर्तन या बातिलकरण से उसके अधीन पहले गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

29. राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना और बनाए गए नियमों का राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाना – इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा जारी प्रत्येक अधिसूचना और राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम तथा सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाया गया प्रत्येक विनियम जारी किए जाने या बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखी जाएगी/रखा जाएगा ।

30. कठिनाइयां दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार ऐसे आदेश द्वारा, जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हो, उस कठिनाई को दूर कर सकेगी :

परंतु ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ से तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

31. निरसन और व्यावृत्ति – (1) तारीख 29 अप्रैल, 2004 के समसंख्यांक संकल्प द्वारा यथा संशोधित, भारत सरकार, कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन (कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग) का संकल्प संख्यांक 371/12/2002-एवीडी-III, तारीख 21 अप्रैल, 2004 द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी उक्त संकल्प के अधीन की गई कोई बात या कार्रवाई इस अधिनियम के अधीन की गई समझी जाएगी ।

———